सरदार पृथ्वीसिंह

[एक क्रान्तिकारी जीवनी]

राहुल सांकृत्यायन

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.
नयी दिल्ली

क्रम

सरदार पृथ्वीसिंह

★

अध्याय १

बचपन

सत्रहवीं सदी का मध्य या अंत था। जैसलमेर (राजपूताना) से दस, बारह भट्टी राजपूत सवार अकाल के मारे निकल पड़े। कितने ही दिनों तक मारे मारे फिरते वे लालड़ू गाँव से गुज़र रहे थे। देखा गेहूं की फसल लहलहा रही है। मुँह में पानी भर आया। उन्होंने कुछ ख्याल करके किसानों से पूछा। जवाब मिला—ये हमारे खेत हैं। जवाब शायद नर्मी के साथ दिया गया था। सवारों की हिम्मत बढ़ी। उन्होंने किसानों को डाँट कर कहा—जब तक हम लौट कर न आएं, तब तक फ़सल को न काटना। कुछ दिन आस-पास घूम कर जब वे लौटे, तो देखा कि फ़सल वैसी ही खड़ी है। भट्टी सवार फ़सल और गाँव के मालिक बन गये। तबसे लालड़ू भट्टी राजपूतों का गाँव हो गया। किस-किसके शासन में से होते हुए पटियाला के भट्टी वंश के राज्य में आ जाने से लालड़ू के भट्टियों की अवस्था कुछ विशेष उन्नत हुई, इसका तो पता नहीं लगता लेकिन गाँव के हर्ता-कर्ता बराबर वही रहे। उन्नीसवीं सदी के अन्त में लालड़ू ४००० की अच्छी खासी बस्ती थी, जो दुकानें, थाना, पुलिस आदि के कारण छोटा-मोटा कस्बा सा दीख पड़ता था। लेकिन राजपूतों की जीविका एक मात्र खेती थी। गाँव का फाड़िया ८० घर राजपूतों में सम्माननीय समझा जाता था, काठ-कोड़ों यहीं रहता था, जहाँ गाँव में पकड़े गये चोर को काठ मारा जाता या कोड़े से पीटा जाता। उस वक्त फाड़िया परिवार में १३, १४ व्यक्ति और उसके पास ८० एकड़ खेत थे।

लालड़ू अम्बाला से कालिका जाने वाली रेल पर तीसरा स्टेशन है।

जन्म

१५ सितम्बर, १८९२ ई०.को चौधरी शादीराम और उनकी

पत्नी को—जो टाबर के चौहानों की लड़की थी—सबसे बड़ा पुत्र पैदा हुआ, नाम रक्खा गया—पृथ्वीसिंह। भट्टियों के रिवाज के मुताबिक उसे भी खञ्जा की घुट्टी दी गयी। लेकिन इस चरणामृत की लाज को इतनी बहादुरी से बहुत कम ही ने निबाहा होगा।

फाड़िया परिवार खुशहाल था, लेकिन तभी तक जब तक कि आसमान उस पर मेहरबानी करता। उसके खेतों को सींचने के लिए वहाँ न नहर थी, न कुँआ। मेह बरस गया, तो फसल हो गयी और परिवार के १५ व्यक्तियों की दाल-रोटी और कपड़े का इन्तज़ाम हो जाता। साल के बाद कुछ बचा लेना घर के लिए मुश्किल था।

पृथ्वीसिंह उस वक्त पांच साल से कुछ ऊपर के थे, लेकिन उनका छोटा भाई डिपटी अभी दूध पीने वाला बच्चा ही था। इसी वक्त सं. ५६' (१८९८ ई०) का महाकाल आया। फ़सल नहीं हुई। लोग दाने दाने के लिए तड़पने लगे। पृथ्वीसिंह को अभी भी वह दिन याद है, जब कि उनके चचेरे दादा (निहाल सिंह) जहाँ तहाँ से जुगाड़ करके घर में गाजर लाते, कुछ आटा डालकर उसे उबाला जाता और भूखे ही सो गये लड़कों को उठाकर उनकी जीवन-रक्षा के लिए लेई दी जाती।

चौधरी शादीराम ज्यादा दिन घर नहीं रह सके। घर के एक भाई वर्मा में पुलिस की नौकरी करते थे। चौधरी शादीराम भी घर छोड़ बर्मा का रास्ता पकड़ने के लिए मजबूर हो गये। चौधरी शादीराम छै फुट के खूब लम्बे, चौड़े, स्वस्थ, बलिष्ठ जवान थे। लेकिन उन्होंने पुलिस की नौकरी का ख़्याल छोड़कर दूध बेचने का रोज़गार पसन्द किया।

पृथ्वीसिंह और उनके भाई को उनके मामा अपने गाँव ले गये। वहाँ खाने पीने की तकलीफ़ न थी। गाँव में पाठशाला न थी, इसलिए पढ़ने का कोई इन्तज़ाम न हो सकता था। हाँ गोरू चराना, लड़कों के साथ खेलना कूदना यही काम था। मामा, चार भाई, अच्छे शिकारी थे। अक्सर रात-रात बन्दूक लिये सूअरों का शिकार करने निकल पड़ते। पृथ्वीसिंह बराबर उनके साथ रहते और कितनी ही बार तो उन्हें मामा की बगल में भाला लिये खड़ा रहना पड़ता। मामा के साथ की इन शिकार-यात्राओं ने पृथ्वीसिंह के दिल से भूत और जंगली जानवरों का भय ख़तम कर दिया।

पृथ्वीसिंह अपनी बाल–सेना के निर्भीक सेनापति थे। पड़ोसी गाँव वाले चरवाहों से जब कभी भिड़न्त हो जाती, तो वे उनके भीतर घुस कर लाठियाँ छीन लाते। कभी-कभी प्रतिद्वन्द्वियों की संख्या अधिक होती और पिटना भी पड़ता। पेड़ों पर चढ़ने के खेल में कितनी ही बार गिरते और शरीर में जहाँ तहाँ घाव हो जाते। पृथ्वीसिंह को बचपन से ही स्कूल में नहीं बैठने दिया गया, लेकिन वे उससे भी बड़े स्कूल में बैठे थे, जहां उन्होंने निर्भयता, नेतृत्व और बहादुरी का पाठ पढ़ा, साथ ही उनका शरीर भी मज़बूत बना।

बर्मा में पिता का दूध का रोजगार चल पड़ा था और कुछ ही दिनों में उन्होंने सारा कर्ज़ अदाकर दिया। पिता के लिखने के अनुसार पृथ्वीसिंह को अब अपने गाँव (लालड़ू) के स्कूल में दाखिल कर दिया गया। उनके दर्जे के लड़के छोटे-छोटे थे' इसलिए पृथ्वीसिंह को उनके साथ बैठने में शरम आती। लेकिन उन्हें बहुत दिनों तक वहां रहने का मौक़ा न मिला।

बर्मा में (१९०१–७)

ताया शादी करने के लिए घर आये थे। वह अपने साथ ही दोनों भतीजों को भी बर्मा लेते गये। चौधरी शादीराम रंगून से बहुत दूर अपर बर्मा में मोन्येवा में रहते थे। इरावती में नाव के द्वारा उन्हें जाना पड़ा था।

चंद दिनों बाद पृथ्वीसिंह स्थानीय मिशन स्कूल में दाख़िल कर दिये गये। यहां भी उन्हें अपने से बहुत कम उमर के सहपाठियों के साथ बैठना पड़ता। पृथ्वीसिंह के साथी विद्यार्थी अधिकतर बर्मा के और बस्ती के निवासी भी बरमी ही थे। इसीलिए उन्होंने बहुत जल्दी बरमी भाषा सीख ली।

पृथ्वीसिंह छै साल तक बर्मा में रहे। पिता स्वयं पढ़े लिखे नहीं थे, लेकिन उन्हें लड़कों के पढ़ाने की बड़ी इच्छा था। पिता इतने धनी नहीं थे कि खाना पकाने के लिए नौकर रखते। दूसरे कामों को देखने के बाद वह खुद ही खाना बनाते, जिसमें पृथ्वीसिंह भी सहायता करते। उनके लिए घर का काम इतना ज़्यादा होता, कि स्कूल के बाद किताब में हाथ लगाने का मौका नहीं मिलता। पिता धार्मिक श्रद्धालु व्यक्ति

थे। वे अक्सर बौद्ध भिक्षुओं के सत्संग में जाते। पृथ्वीसिंह भी कितनी ही बार पिता के साथ होते और उन्हें भिक्षुओं का जीवन आकर्षक मालूम होता। एक बार वह स्वयं जंगल में तपस्या करने के लिये भाग निकले। लेकिन वहां कोई परिचित लकड़हारा मिल गया, जिसने बतलाया कि इस जंगल में डाकू छिपे हैं और तुम्हारे चचा नारायण सिंह दूसरे सिपाही को लेकर उनके पीछे पड़े हैं। पृथ्वीसिंह को चचा का क्रोधपूर्ण मुंह याद आया। तपका ख्याल छूटा, वापिस चल पड़े। इधर लड़के को लापता देखकर पिता अलग चिंता में पड़े थे। कितने ही लड़के लड़कियों की टोली उन्हें ढूँढ़ने निकली थी। चार लड़कियों ने पृथ्वीसिंह को पहाड़ में भागते देखा। उन्होंने घेर लिया और घसीटते पिता के पास ले गयीं। पृथ्वीसिंह डर रहे थे कि पिता जी ज़रूर उन पर गुस्सा उतारेंगे, लेकिन चौधरी शादीराम ने एक शब्द भी नहीं कहा।

१९०६ में पृथ्वीसिंह १५ साल के हो गये थे। उस वक्त प्रदेश में राजनीतिक आन्दोलन जारी था। पंजाब–केसरी लाला लाजपत राय को देश से लाकर मांडले किले में बन्द कर दिया गया था। लेकिन पृथ्वीसिंह अख़बार तो पढ़ते नहीं थे कि उन्हें कुछ मालूम होता। इसी वक्त उनको स्कॉट की एक कविता पढ़ने को मिली—

"वह आदमी मृतात्मा सा साँस ले रहा है, जिसने कभी अपने तई नहीं कहा—यह मेरी अपनी, मेरी मातृभूमि है।"

चौथे स्टैंडर्ड को पास कर लेने के बाद पृथ्वीसिंह को देश से दूर रहना मुश्किल हो गया। पहले पिता ने समझाया, लेकिन फिर कहने पर घर जाने की इजाजत दे दी।

फिर भारत के स्कूल में

पृथ्वीसिंह अब अम्बाला शहर के एक स्कूल में दाखिल हो गये। उनके बरमी भाषा के ज्ञान का यहां कोई मूल्य न था और वह कोई हिन्दी या उर्दू जानते न थे। यद्यपि उनके पास पांचवें दर्जे का सर्टीफिकेट था, लेकिन भाषा की दिक्कत से मजबूर होकर चौथे दर्जे से पढ़ाई शुरू की। अंग्रेजी अच्छी थी और यहां गाय, भैंस देखने या खाना पकाने की झंझट भी नहीं थी; उन्होंने खूब मन लगाया और एक ही साल में चौथी, ५वीं, ६ठी, तीनों दर्जों को पास कर डाला। सातवें दर्जे में जाने के

बाद उन्होंने आठवें दर्जे की पढ़ाई ख़तम करनी चाही। लेकिन अध्यापक चाहते थे कि एक वर्ष और पढ़ने के बाद वह मिडिल में अपनी सफलता से स्कूल का नाम करेंगे। पृथ्वीसिंह इससे असन्तुष्ट थे। उसी समय अध्यापक ने जापान और रूस के बारे में लड़कों को एक निबन्ध लिखने को कहा। पृथ्वीसिंह ने अपने निबन्ध में और बातों के साथ यह भी लिखा कि अगर जापान जैसा छोटा सा मुल्क रूस को हरा सकता है, तो हिन्दुस्तान ऐसे बड़े मुल्क का इंग्लैण्ड जैसे मुल्क को हराना बिल्कुल छोटी बात है। पृथ्वीसिंह अक्सर अपने निबन्धों के लिए अच्छे नम्बर पाया करते थे, लेकिन उस दिन अध्यापक ने कहा—तुमने बड़ा बुरा निबन्ध लिखा है, तुम्हें इसके लिए सज़ा मिलेगी। उन्होंने कापी उठा के देखा, तो वहां कोई हिज्जे या वाक्य-रचना की ग़लती न थी। ऊपर के दर्जे के लड़के ने लाल पेंसिल लगी हुई पाँतियोंको देखकर बतलाया कि पृथ्वीसिंह ने क्या ग़लती की। वह राजनीति से बिलकुल कोरे थे, लेकिन विदेशी शासन के प्रति घृणा उन्होंने अपने राजपूती खून में पायी थी।

पृथ्वीसिंह का मन अब वहाँ से उचट गया। उनके गांव के कुछ लड़के राजपुर स्कूल में पढ़ते थे। मालुम हुआ, उस स्कूल में जाकर वह एक ही साल में दोनों दर्जों को पास कर सकते हैं। बहुत दौड़-धूप करने के बाद ट्रांसफर (तबादले) का सर्टीफिकेट मिला और तीन ही महीने बाद सातवें दर्जे से आठवें में जाकर उन्होंने मिडिल पास किया।

फिर बर्मा में

१९०९ आया। पृथ्वीसिंह १७ सालके खूब लम्बे डील-डौल वाले मजबूत नवयुवक थे। उनके मनमें बड़ी बड़ी उमंगें थीं। उसी समय राजपुर में प्लेग आया, ऊपरसे पिताने ३ महीनेसे पैसा क्या, चिट्ठियोंका जबाव तक नहीं भेजा था। उन्हें बहुत चिंता हुई। यद्यपि बिरादरीके कुछ लोग सहायता करना चाहते थे, लेकिन उन्होंने पिताके पास जाना ही पसंद किया। एक दिन वह पिताके पास पहुंच गये। देखा कि महामारीमें सारी गायें, भेंड़ें मर चुकी हैं और पिताजी चारपाई पर पड़े हैं।

चौधरी शादी राम को पढ़ाई छोड़कर चला आना पसंद न आया। उन्होंने कहा—क्यों नहीं खेत पर रुपया लेकर अपनी पढ़ाई जारी रक्खी।

अब बीती बात पर सोच करने से काम नहीं चल सकता था, रुपया था नहीं कि वे कोई रोजगार—बात देखते। इष्टमित्रों ने सलाह दी कि पुलिस की इन्सपेक्टरी के लिए ट्रेनिङ्ग स्कूल में दाखिल हो जाओ। अर्जी भी भेज दी गयी, लेकिन यह सब हुआ था पिता से बिना पूछे ही। जब उन्हें मालूम हुआ तो उन्होंने एकदम मना कर दिया। और किसी काम के लिए उन्हें एतराज नहीं था। पिता-पुत्र की इच्छा में वैसे कभी बाधा नहीं उपस्थित करते थे। पृथ्वीसिंह ने अब डाकखाने की नौकरी कर ली, यद्यपि वह इससे सन्तुष्ट न थे। इसी समय चौधरी साहब के सम्बन्धी लड़के का ब्याह कर देने पर ज़ोर दे रहे थे। लेकिन वह अभी से लड़के को फंदे में डाल देने की बात को पसंद नहीं करते थे।

पृथ्वीसिंह के बड़े-बड़े मन्सूबे थे। और वह देख रहे थे अपने को डाकखाने की एक छोटी नौकरी में। कहाँ जाना था और कहां जा रहे हैं, यह सोच कर उनके कलेजे में सुई-सी चुभती थी। पिता तैयार थे कि पृथ्वीसिंह उनके काम में लग जायें तो वह हाथ खर्च के लिए ३० रु. मासिक देंगे। मगर पृथ्वीसिंह को वहाँ कोई भविष्य नहीं दिख रहा था। लड़का अपनी धुन का है, यह वह अच्छी तरह जानते थे और साथ ही यह भी कि बर्मा ऐसे स्वतन्त्र सामाजिक देश में रहकर भी तरुणाई के बहुत से दोषों से उसने अपने को बचा रक्खा है।

पृथ्वीसिंह की मानसिक विकलता इतनी बढ़ गयी थी कि उनके लिए एक दिन काटना मुश्किल था। उनके पिता के एक दोस्त मेम्यो के रमणीक शहर में रहते थे। किसी तरह पृथ्वीसिंह के बारे में उन्हें मालूम हुआ। उन्होंने चिट्ठी लिखी। पिता ने समझा, मेम्यो में जाने पर सुन-समझ कर शायद लड़के की तबियत बदल जाए, लेकिन पृथ्वीसिंह जानते थे, कि मेरी समस्या का हल मेम्यो में नहीं हो सकता।

अध्याय २

अमेरिका के रास्ते पर

घर का पैसा-कौड़ी पृथ्वी सिंह के पास ही रहता था। उन्होंने सौ रुपये जेब में रक्खे और मेम्यो जाने के लिए पिता से विदाई ली। वह कहाँ जाएँगे, इसका उन्हें पता नहीं था; हाँ वह मेम्यो जाने के लिये तैयार नही थे। यद्यपि मोनेवासे उन्होंने मेम्यो का टिकट लिया था, लेकिन रास्ते ही में रंगून की गाड़ी पकड़ ली। पृथ्वीसिंह को नाच-तमाशे, ऐशोइशरत का शौक नहीं था, इसलिए रंगून में भी वह शहर की ओर नहीं गये। कितने ही पंजाबी मुसाफिर अपना सामान सर पर लादे किसी ओर जा रहे थे। १७ साल के पृथ्वीसिंह भी उनके साथ हो लिये। वहाँ उनकी दो पंजाबी नौजवानों से भेंट हुई, जो नौकरी की खोज में देश से निकले थे और तारबाबू की परीक्षा दे रहे थे। उन्होंने पृथ्वीसिंह को भी समझाया। स्टेशन मास्टरी बड़ी आमदनी की नौकरी थी इसमें शक नहीं, लेकिन हमारे तरुण को रुपये का आकर्षण हो तब न।

पंजाबी किसानों के लड़के चीन तक नौकरी की तलाश में जाया करते थे। एकाएक पृथ्वीसिंह के मन में आया, क्यों न चीन चला जाऊँ। पृथ्वीसिंह ने पिनांग [मलाया] का टिकट कटाया। पिनाँग में उन्हें दूसरे मुसाफिरों के साथ १५ दिन कोरंटीन में बंद रहना पड़ा। रसद पानी स्टीमर कंपनी देती, खाना लोग आप बना लेते। कोरंटीन का समय समाप्त होने के बात वह शहर में गये। छोटी मोटी नौकरियां थीं, लेकिन वह उन्हें पसन्द न थीं, और न उन्हें अभी नौकरी करने की मजबूरी थी। सिंगापुर में भी उनका रास्ता रोकने वाली कोई चीज नहीं मिली।

जून (१९०९) का महीना था। जहाज १५०० चीनियों और १०० हिन्दुस्तानियों को लेकर हांगकांग के लिए रवाना हुआ। मुसाफिर भेड़-बकरियों की तरह जहाज में ठूंसे हुए थे। इतना दम घुट रहा था कि कमजोर आदमियों का बैठना मुश्किल था। आमतौर से जहाज छै दिनों में हाँगकाँग पहुंच जाता है; मगर वह ऐसे तूफान में पड़ गया, कि बड़ी-बड़ी विपत्तियों के बाद १५वें दिन हांगकांग पहुंच सका। जहाज इतना हिल

रहा था कि सिवाय चिर अभ्यस्त नाविकों के कोई खड़ा नहीं रह सकता था। डेक पर मुसाफिर रस्सियों को पकड़े खड़े रहते, रस्सी छूटी कि साथ ही अथाह समुद्र में। इस प्रकार कइयों ने अपनी जान खोई। कप्तान भी इतना निराश हो गया था कि उसने लोगों से कह दिया-अब हमारे हाथ में कुछ नहीं है। तरुण पृथ्वीसिंह का उत्साह कुछ ढीला पड़ने लगा, खास कर जबकि पाँच दिन बाद उपवास करने की नौबत आयी। भूख के मारे लोग इतने निर्बल हो गये थे कि रस्सी को भी कड़ाई के साथ न पकड़ पाते और तूफान उन्हें पानी में ढकेल देता। पृथ्वीसिंह का भी बिस्तरा-उस्तरा समुद्र में चला गया, सिर्फ एक छोटा सा ट्रंक बचा था, जिसमें कुछ कपड़े रह गये थे। आठ दिन के उपवास के बाद शरीर बिलकुल दुर्बल हो गया था, तभी जहाज हांगकांग बंदर में लगा।

हांगकाँग में

हांगकांग में पृथ्वीसिंह का किसी से परिचय नहीं था। उसके पास यद्यपि ६५ रु. बच रहे थे। लेकिन वह कम से कम खर्च में रहना चाहते थे, इसीलिये दूसरे मुसाफिरों के साथ वह भी सिख गुरुद्वारा में चले गये। सभी लोग गुरुद्वारा के बड़े हाल में अपना लटा-पटा रखकर रात को बाहर खुले आसमान के नीचे सोया करते। पृथ्वीसिंह को अभी चोरों का तजरबा था नहीं, उन्होंने रुपयों को ट्रंक में रखकर हाल के भीतर छोड़ दिया। सवेरे उठकर देखते हैं, तो रुपया गायब। अब एक पैसा भी उनके पास न था। वह पथ के भिखारी थे। किसी तरह गुरुद्वारा वालों को मालूम हुआ। वह खाने के लिए बुला भेजा करते। यहीं उनकी मुलाकात दो पंजाबी नौजवानों से हुई। दोनों ही सुशिक्षित थे और साथ ही उनमें देशभक्ति की पक्की लगन थी। उनके सत्संग से पृथ्वीसिंह के सामने एक नयी दुनिया दिखलायी देने लगी, और उन्हें मालुम होने लगा कि वैयक्तिक सुख और आराम से ऊपर देश की आजादी भी कोई चीज है। प्यारेलाल का रुपया कुछ ही दिनों में आ गया और वह अमेरिका के लिए रवाना हो गये; लेकिन बलवन्त सिंह को अभी रुकना था।

गुरुद्वारा के ग्रन्थी (पुजारी) सरदार भगवानसिंह के हृदय में भी बड़ी तीव्र राष्ट्रीय भावना थी। उनकी वाणी में भी बहुत शक्ति थी और सिक्ख उन्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उनके भी भाषण ने पृथ्वीसिंह

की राष्ट्रीय भावना को जगाने में बहुत काम किया। उसी समय कनाडा के सिक्खों का एक डेप्युटेशन अपनी तकलीफों को सुनाने के लिए वायसराय के पास हिंदुस्तान जा रहा था। सरदार भागसिंह और सरदार बलवन्त सिंह दोनों प्रतिनिधि गुरुद्वारा में ठहरे थे। उनकी बातचीत ने आग में घी का काम किया।

पृथ्वीसिंह १८ साल के नवयुवक होने पर भी अब वही पृथ्वीसिंह नहीं थे, जो मेम्यो के लिए रवाना हुए थे। उन्होंने अपने दोस्त बलबन्त सिंह से कहा कि मैं भारत जाकर अपने जीवन को देशसेवा में लगाना चाहता हूं। बलवन्तसिंह ने सलाह दी, किसी तरह अमेरिका पहुंचकर भारतीय क्रान्तिकारियों से मिलो, वे तरुणों को क्रान्ति के लिए तैयार कर रहे हैं। पृथ्वीसिंह ने भी अब अमेरिका जाने का निश्चय कर लिया। यह निश्चय वह उस वक्त कर रहे थे जब कि उनके पास एक कौड़ी भी नहीं थी।

इधर-उधर करने के बाद उन्हें एक सोडावाटर फैक्टरी में १५ रु. की दरबानी मिली। मुखिया दरबान की मेहरबानी से वह रोज़ आठ आने का खाने का सामान दूकान से ले सकते थे। बलवंत सिंह के पास भी एक पैसा नहीं था। उसी सामान में दोनों एक शाम खाते थे। यह नौकरी भी ज़्यादा दिन नहीं चली। मुखिया दरबान को डर लगने लगा कि कहीं इस चुस्त नौजवान को ही उसकी जगह न दे दी जाए, इसलिए १५ दिन बीतते-बीतते ही उसने पृथ्वीसिंह को वहां से निकलवा दिया।

गुरुद्वारे में छावनी से कितने ही हिन्दू और सिक्ख सिपाही आया करते थे। कुछ राजपूत सिपाहियों को इस तरुण राजपूत का पता लगा। वह अपने साथ पृथ्वीसिंह को छावनी ले गये, कितने ही राजपूत सैनिकों से परिचय कराया। उनके आग्रह पर पृथ्वीसिंह रोज खाने के लिए छावनी जाने लगे, नाव का किराया भी वे ही दे दिया करते थे। पृथ्वी-सिंह खाना खाकर कुछ रोटियां बलवतसिंह के लिए लाते थे।

हांगकांग का चौरस्ता

एक साल बीत गया। सन् १९११ का कोई महीना था। पृथ्वी-सिंह ने बड़े आश्चर्य से देखा कि हांगकांग के चौरस्तों पर जगह-जगह लम्बी-लम्बी चोटियों का ढेर लगा है। चीनी पुरुष अपनी लम्बी चोटियों

को मंचू राजवंशियों की गुलामी का चिन्ह समझते थे। यह चीनी क्रांति की प्रथम सूचना थी। चीनियों की इस क्रान्ति का क्या उद्देश्य है, पृथ्वीसिंह को यह मालूम नहीं था। लेकिन, उन्होंने देखा कि एकाएक चीनियों के भाव में भारी परिवर्तन आ गया। जहां हाँगकांग में ज़रा-सी बात पर कान्सटेबिल चार-चार, पांच-पांच चीनी कुलियों की चोटी पकड़े थाने में घसीट लाता, वहां अब हवा ही बदल गयी है। चीनी कुली ज़रा-सी भी "तूं-तें" करने पर हिन्दुस्तानी कॉन्सटेबिल पर झपट पड़ते और कान्सटेबिल को पिट-पिटाकर पगड़ी संभाले भागना पड़ता। चंद घण्टों के भीतर निरीह चीनियों के भीतर ही इस उग्र आत्म-सम्मान का भाव पैदा हो जाना, एक आश्चर्य की बात थी। वह सोच रहे थे, क्या हिन्दुस्तानी भी इसी तरह किसी दिन अपनी सदियों की गुलामी का तौक़ उतार फेंकेंगे ?

फिलीपाइन में (१९११-१२)

उस वक्त अमेरिका का द्वार हिन्दुस्तानियों के लिए बंद था। सिवाय विद्यार्थियों और यात्रियों के कोई भारतीय उस भूमि पर उतर नहीं सकता था। पृथ्वीसिंह को पता लगा कि मनीला से अब भी अमेरिका पहुंचा जा सकता है। लेकिन उसके लिए ४०० रु. की जरूरत है। भाई रतनसिंह चीन की किसी जगह से आकर गुरुद्वारा में ठहरे थे। वह मनीला के रास्ते अमेरिका जाने वाले थे। पृथ्वीसिंह को एक देशभक्त मनस्वी तरुण के तौर पर सभी गुरुद्वारा वाले जानते थे और उनकी क़दर करते थे। भाई रतनसिंह को भी यह बात मालूम हुई। उन्होंने पृथ्वीसिंह से कहा—हम तुम्हें मनीला पहुंचा देंगे, यदि पैसा हाथ में आए तो लौटा देना।

१९११ के अंत में पृथ्वीसिंह भाई रतनसिंह के साथ मनीला पहुंचे। मनीला में हिन्दुस्तानी ज़्यादा न थे। १०० के करीब दरबान थे, और कुछ सिन्धी रेशम के दूकानदार शहर में रहते थे। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी हिन्दुस्तानी थे, जो सारे टापू में घूम कर फेरी किया करते। हिन्दुस्तानी दरबानों की अच्छी क़दर थी और उन्हें वेतन भी अच्छा, ८० रु. मासिक मिलता था।

भाई रतनसिंह और पृथ्वीसिंह ने दरबानी न पसन्द कर फेरी शुरू
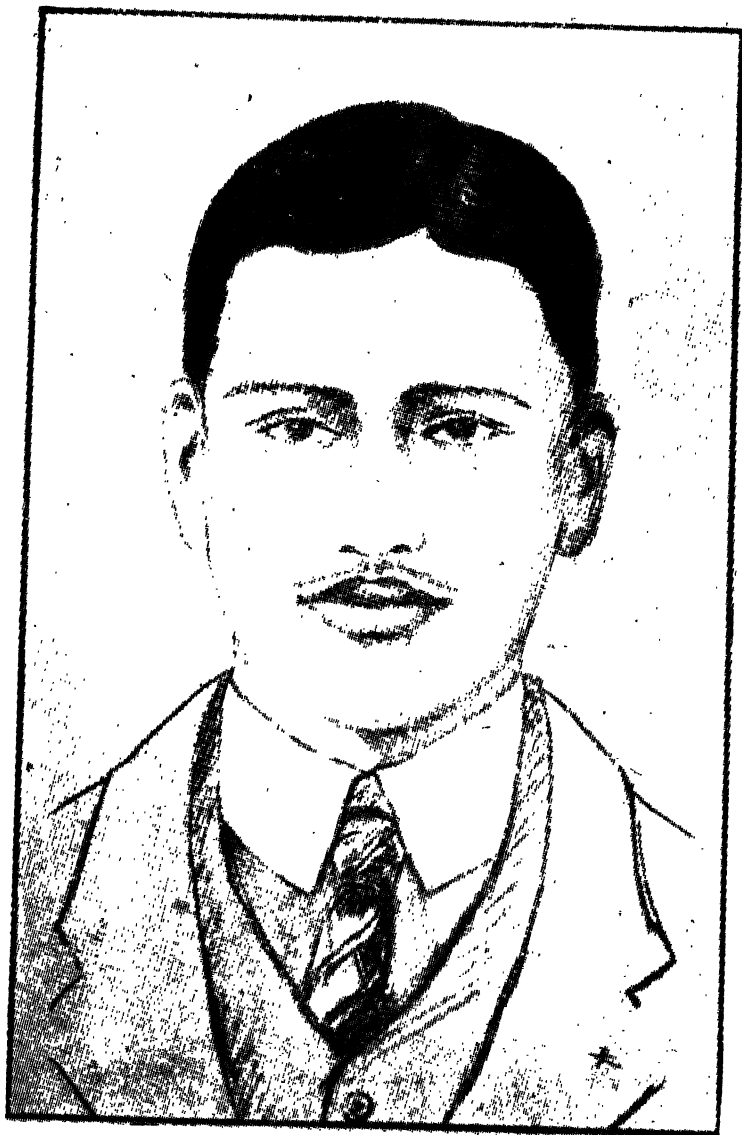
सरदार पृथ्वीसिंह (१८ वर्ष की अवस्था में)

सरदार पृथ्वीसिंह

की। सरदार लालसिंह एक दूसरे भारतीय ने सौदा मोल लेने में रुपये पैसे की मदद की। कुछ ही महीनों में पृथ्वीसिंह ने इतना रुपया कमा लिया कि भाई रतनसिंह का रुपया लौटा दिया और वह पहले ही जहाज़ से अमेरिका के लिए रवाना हो गये।

पृथ्वीसिंह अब उस देश से परिचित हो गये थे। अब उनका सारा ध्यान रुपया कमाने में लगा हुआ था; जिससे कि वह अमेरिका के लिए रवाना हो सकें।

पृथ्वीसिंह दो एक और हिन्दुस्तानी फेरी वालों के साथ अपने व्यवसाय में जाते थे। जैसा देश वैसा भेष न होने से मुश्किल होती ही है। बड़ी-बड़ी पगड़ी और लम्बी-लम्बी दाढ़ी देख कर लड़कों को शरारत सूझती। एक दिन उन्होंने पत्थर मारना तथा गाली देना शुरू किया। पुलिस के सिपाही से कहने पर वह भी लडकों के साथ शामिल हो गया। चन्द ही मिनटों बाद दो-तीन और कान्सटेबिल आये और वे भी उन्ही के साथ मिलकर गाली-गलौज करने लगे। साथी ठंडे पड़ गये। उन्होंने जमाना देखा था और आत्म-सम्मान की गहरी नहीं छानी थी। लेकिन पृथ्वीसिंह अपने को काबू में नहीं रख सके। उन्होंने भी दो की चार सुनानी शुरू की। कान्स्टेबिल इसे क्यों बर्दाश्त करने लगे, वे मार पर उतर आये। लेकिन पृथ्वीसिंह २० साल के पंजाबी पट्ठे थे, उनके सामने उनकी कोई पेश न आयी। और मार पीट में दो को चोट आयी। थाने में खबर पहुंचने पर पुलिस की टोली पहुंच गयी और पृथ्वीसिंह को पकड़ कर हवालात में बंद कर दिया गया। पुलिस वाले पहले तो जोश में थे, लेकिन अब समझने लगे कि ग़लती उनकी ओर से हुई है। चोट भी ज्यादा नहीं थी। कस्बे के प्रेसीडेंट का लड़का मनीला के किसी कालेज का विद्यार्थी था, उसने बीच-बचाव करना चाहा, और पृथ्वीसिंह को सलाह दी कि माफी मांग लो, लेकिन वे इसके लिए तैयार न थे। गिरफ्तारी की ख़बर जब मनीला के राजपूत भाई चौधरी बरकत अली को मिली तो वे शहर के एक वकील को लेकर वहाँ पहुंचे। पुलिस वाले घबड़ा गये। उन्होंने माफ़ी मांगी और पृथ्वीसिंह हवालात से बाहर चले आये।

अध्याय ३

अमेरिका में (१९१२-१४)

सरदार लालसिंह फेरी के सौदे के लिए पृथ्वीसिंह की मदद किया करते थे। ईमानदार साहसी के सभी जगह दोस्त पैदा हो जाते है। उनका तरुण पर बहुत विश्वास था। उन्होंने देखा कि पृथ्वीसिंह को यात्रा के लिए पर्याप्त रुपया जमा करने में बहुत देर लगेगी। उन्होंने टिकट के लिए १५० डालर (५०० रुपये) दिये। एक दूसरे दोस्त ने अच्छी पोशाक प्रदान की और तीसरे दोस्त ने भी ५० डालर दिये, जिन्हें अमेरिका में उतरने पर अधिकारियों को दिखाना पड़ता।

अमेरिका को (१९१२)

३५००० टन का एक बड़ा जहाज अमेरिका जा रहा था। इसी पर पृथ्वीसिंह और उनके ५० हिन्दुस्तानी (ज्यादातर पंजाबी) साथी सवार हुए। कपड़े-लत्ते रोब-दाब में पृथ्वीसिंह ज्यादा भद्र मालूम पड़ते थे। लोगों ने इन्हीं को अपना मुखिया चुना। जहाज ४० दिन में प्रशान्त महासागर को चीर कर सियेटल (ओरगन रियासत) के बंदर पर लगा। जाड़ों का दिन था, जहाज़ की यात्रा अच्छी तरह कटी। सबके स्वास्थ्य में उन्नति हुई। बंदरगाह में पहुंचने पर अधिकारियों ने पृथ्वीसिंह को भारतीय मुसाफिरों के लिए दुभाषिया बनाया। उनके सभी साथी सीधे सादे किसान थे। उन्हें यह भी नहीं मालूम था कि अधिकारियों के सवाल का क्या जबाव दिया जाय। पृथ्वीसिंह अमेरिकन के सवाल का अनुवाद करके बतलाते, तो वे सब पृथ्वीसिंह से कह उठते—"मैनूकी पता, तू ही दस दे" (अर्थात् मुझको क्या मालूम, तू ही बतला दे) सभी को उतरने की इजाज़त मिल गयी।

अब पृथ्वीसिंह की बारी आयी। अफसर ने पूछा—"तुम किसलिए आये हो ?" पृथ्वीसिंह ने ज़रा भी रुके बिना साफ़ शब्दों में कह डाला—"मैं आया हूं तुमसे यह सीखने कि कैसे हम अपने देश को आज़ाद कर सकते हैं ?" अफसर पृथ्वीसिंह के मुंह की ओर ताकता रहा। पूरे ५ मिनट तक न वह एक शब्द बोला न उसने एक अक्षर कागज़ पर लिखा।

पृथ्वीसिंह ने समझा कि सर्वनाश हो गया। इसी वक्त अफसर कुर्सी से खड़ा हो गया और मुस्कराते हुए हाथ मिलाया और पीठ ठोंकते हुए बोला —"जाओ।"

अमेरिका में मजदूर

अमेरिका की स्वतन्त्र भूमि में पहली बार पैर रखने पर दिल में क्या-क्या भाव पैदा हो रहे थे। हांगकाग में आज का दिन आना असम्भव मालूम देता था! छदामों के लिए मोजताज तरुण के दिल में एक दृढ़ संकल्प ही ऐसा था जिसने उसे यहाँ तक पहुंचाया। पृथ्वीसिंह और उनके साथियों ने पहले होटल में जा खूब पेट भर कर भोजन किया, और घूम-घूमकर नयी दुनिया के नये शहर को आंख भर के देखा। हांगकांग और फिलीपाइन तक अभी एशियाई चेहरे ही ज्यादा दिखायी पड़े थे, और यहाँ सभी गोरे ही गोरे। उनके कौतूहल में सारी रात शहर की सैर में ही बिता दी।

साथियों के कितने ही सम्बन्धी और मित्र अमेरिका के इस पश्चिम तट पर पहले से मौजूद थे। दूसरे लोगों के साथ पृथ्वीसिंह भी केली-फोर्निया में स्टाक्टन के लिए रवाना हो गये। हिन्दुस्तानी मजदूर ज्यादा-तर वहां खेतों में काम करते थे। इस वक्त आलू की फसल तैयार थी। आठ घण्टे के काम के लिए दो डालर (प्रायः सात रुपया) रोजाना मज़दूरी बड़ी चीज़ थी। पृथ्वीसिंह का शरीर खूब मजबूत और स्वस्थ था। मगर यहां खेत में लगातार फावड़ा चलाने और लादने का काम था। दिनों तक तो पंजाब और वर्मा याद आते रहे, मगर अभ्यास आदमी को सब कुछ बना देता है। परिश्रम न करने पर सोने-सी दीखने वाली काया भी वस्तुतः मिट्टी है। एक पखवाड़े के बाद अब शरीर मेहनत के बिल्कुल अनुकूल हो गया, और दूसरे साथियों के साथ वह भी अपने काम में प्रसन्नतापूर्वक लग गये। शायद सात आने की मजदूरी होती तो उसमें कभी मन न लगता, मगर सात रुपये की मजदूरी थी। जानते थे कि आठ घण्टे के बाद उनके पास सात रुपये और उनके उपभोग के लिए अपना समय रहेगा। दूसरे हिन्दुस्तानी मजदूर हट्टे-कट्टे सिक्ख थे। पृथ्वीसिंह का समय अच्छी तरह कटने लगा। कुछ ही समय में उन्होंने

क़र्ज का रुपया फिलीपाइन भेज दिया, और छः सौ रुपये पिता के पास भेजने में भी सफल हुए।

हिन्दुस्तानी समाज और पश्चिमी समाज में कितनी ही बातों का अन्तर है। हिन्दुस्तान का समाज जिन सैकड़ों रूढ़ियों से बँधा हुआ है, पश्चिमी समाज में उनमें से बहुतों का अभाव है। बँधा हुआ प्राणी जैसे खुलते ही बेतहाशा दौड़ने में आनन्द अनुभव करता है, वही हालत महीने की कमाई एक दिन में कमाने वाले हिन्दुस्तानी मजदूर की होती! ऊपर से परिश्रमी बाजारों में ठगों, लुच्चे—लफंगों की कभी नहीं है! पृथ्वीसिंह ने अपने साथियों की गत बनते देखी थी। वह अपने को उस अवस्था में नहीं जाने देना चाहते थे, आत्म-सम्मान के साथ-साथ उनमें राष्ट्रीय भावना भी पैदा हो गयी थी। उन्होंने अपने लिए तीन नियम बनाये—

(१) शहर जाते वक्त फैशनवाली पोशाक न पहिनूंगा और न खरीदूंगा;

(२) खास अवस्थाओं को छोड़कर सदा मजदूरों की पोशाक में रहूंगा;

(३) शराब के सैलून, थियेटर, बाइस्कोप या नाच-घर में न जाऊंगा।

पृथ्वीसिंह इन नियमों का कड़ाई से पालन करने लगे। लेकिन उनके सभी साथी तो उनके ऐसे नियमों को नही मानते थे। छः दिन काम करने के बाद छुट्टी का दिन—इतवार—आता और साथ ही मजदूरी के चालीस-पचास रुपये। बेकाम का इतवार बिताना आसान काम न था, ख़ासकर जबकि शहर में बहुत से प्रलोभन थे। वे शहर जाते और सैलून में जाने से अपने को रोक नहीं पाते। जेब में डालर होने पर एक-दो ग्लास से संतोष कहाँ होता। वह खूब डट कर पीते, और नशे में लड़-खड़ाते जब बाहर निकलते, तो शरीर ठग, और पुलिस वाले झपट पड़ते! पृथ्वीसिंह और उनके एक-दो आदर्शवादी साथी जब उन्हें खींच कर घर लाने की कोशिश करते तो शराबियों के थप्पड़ों और मुक्कों को सहना पड़ता। जब उन साथियों को होश आता, तो वे पृथ्वीसिंह की कदर करते।

ग़दर पार्टी में

अमेरिका जाने पर उन्हें बाबा सोहनसिंह और बाबा ज्वालासिंह का पता लग गया था, लेकिन पृथ्वीसिंह की टोली दूसरी जगह काम कर रही थी। हाँगकाँग के मित्र बलवन्तसिंह भी अमेरिका पहुंच चुके थे। ओरगन में उनसे मुलाकात हुई फिर राजनीतिक चर्चा चली। "ग़दर" अखबार निकलने लगा था। पृथ्वीसिंह उसे नियमपूर्वक पढ़ने ही नहीं लगे, बल्कि वह हिन्दुस्तानी मज़दूरों में आजादी के खयाल को फैलाने लगे।

आखिरी समय, पृथ्वीसिंह और उनकी टोली चुकन्दर के खेतों में काम कर रही थी। यह जगह शहर से दूर थी, इसलिए मज़दूर हर रविवार को शहर न जा सकते थे। लेकिन जब जाते तो फिर वही बात। एक दिन आधी रात का वक्त था जब कि कुछ गुंडों ने एक नौजवान हिन्दुस्तानी से छेड़—छाड़ शुरू की। पृथ्वीसिंह और बलवंतसिंह इसको बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उन्होंने मना किया, लेकिन बेकार। अमेरिका में पिस्तौल रखने की कोई रुकावट नहीं है। दोनों साथी बराबर जेब में पिस्तौल रक्खा करते थे। उन्होंने भरी पिस्तौलों को निकाल कर बदमाशों की ओर किया, देखते ही गुण्डे ठंडे पड़ गये। अब पृथ्वीसिंह को इस जीवनचर्या से घृणा हो गयी। हरनामसिंह और वह दोनों इस ख़याल से लासएंजलस चले गये कि वहाँ छोटे-छोटे किसानों के यहाँ मज़दूरी करेंगे।

हिन्दुस्तानी मज़दूर अमेरिका गये थे सिर्फ़ मज़दूरी के लिए। पंजाबी मजूर कलकत्ते से रंगून में ज्यादा मजूरी सुनकर वहाँ के लिए चल पड़ते। जब उन्हें पता लगता, कि पिनाङ्ग और सिंगापुर में मज़दूरी और भी ज्यादा है, तो वे वहाँ पहुँच जाते। वह अच्छी मजूरी की तलाश में हांगकांग और शंघाई और अन्त में अमेरिका पहुँचे। अमेरिका में मजूरी भी अच्छी मिलती, खाते-पीते भी अच्छी तरह, और घर भी हज़ारों रुपया भेजते। यह देख दूसरे मज़दूर भी खेत बेच, क़र्ज़ ले सारी रुकावटों को पार करते अमेरिका पहुँचने लगे। अमेरिकाके स्वतंत्र वायुमंडलमें रहते-रहते कुछ ही समयमें उन्हें मालूम होने लगता कि हम गुलाम हैं। हमें पैसा मिलता है मगर किसीसे सम्मान नहीं मिलता। इन बातोंका अब उन पर असर पड़ने लगा। बाबा सोहनसिंह अधिक संस्कृत तथा शिक्षित थे, उन्होंने अपने घर में काफ़ी सुखी जीवन बिताया था। बाबा ज्वालासिंह और बाबा विशाखा

सिंह मजूरीसे पैसे बचाकर अपनी खेती खड़ी कर चुके थे। उन्हें भी "सबसे अधिक जाति अपमाना" अखरने लगा। इस तरह ये लोग थे, जिन्होंने पहले-पहल देशकी परतंत्रताको अनुभव किया। लेकिन दूसरे हिन्दुस्तानी मजूर भी अछूते नहीं रह सकते थे। यद्यपि केलिफोर्नियामें वे अलग-अलग से रहते थे, तो भी उन्हें खेतों या कारखानोंमें काम करते वक्त अमेरिकन मज़दूरोंके संपर्कमें आनेका मौका मिलता। वे देखते थे कि सफेद मजूरोंसे वे किसी बातमें कम नहीं हैं, फिर उन्हें क्यों नीची निगाहसे देखा जाता है। यह जाननेमें उन्हें देरी नहीं लगी कि यह हिन्दुस्तानकी गुलामी है, जिसकी छाया अमेरिका तक उनका पीछा नहीं छोड़ती। फिर वे सोचते "क्यों मुट्ठीभर गोरोंने हमारे मुल्कको गुलाम कर रक्खा है, हम किस बात में उनसे कम हैं? हमारे लिए यह लज्जाकी बात है।" फिर वे स्वतंत्र भारत का स्वप्न देखने लगते और सोचते,—सात रुपये रोजकी मजूरीसे बढ़कर कोई और चीज़ भी है, वह है देशका आत्म-सम्मान! उसे तभी पाया जा सकता है जब कि हम अपने देशको स्वतंत्र करने में सफल हों।

बाबा ज्वालासिंह ने केलिफोर्नियाके मज़दूरोंमें राष्ट्रीय जागृति पैदा करनेमें बहुत काम किया। जात-पाँत और धर्मका बिना ख़याल किये उन्होंने बहुतसे हिन्दुस्तानी विद्यार्थियोंको इस मतलबसे बुलाया कि उनमें क्रांतिकारी भावना पैदा करनेका अवसर मिले। वह अपनी सारी कमाई हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों और मज़दूरोंमें जागृति पैदा करनेमें ख़र्च करने में लगे। जिस वक्त कनाडामें भारतीय मज़दूर अपने प्रति होते बर्तावको देखकर असन्तोष प्रकट करने लगे थे, जिस वक्त संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में नयी जागृति फैल रही थी, उसी समय वहाँ लाला हरदयाल पहुँचे। तुर्की, ईरान और चीन में एक नयी जागृति दिखलायी पड़ रही थी। हिन्दुस्तान को पीछे नहीं रहना है यह बात लाला हरदयाल जैसे भारतीय क्रांतिकारी समझने लगे थे। अब प्रारम्भिक कार्य उस अवस्थामें पहुँच चुका था, जब कि एक संगठनकी जरूरत थी। प्रमुख भारतीयों ने एक सम्मेलन बुलाया जिसमें बाबा ज्वालासिंह, बाबा सोहनसिंह, ऊधमसिंह, तरुणोंका लाड़ला तरुण कर्तारसिंह, पंडित जगतराम आदि सम्मिलित हुए। यहीं पर हिंदुस्तानी क्रांतिकारी संगठन—ग़दर पार्टी—की नींव पड़ी। भारतमें और भारतके बाहरके भारतीयोंके अन्दर क्रांतिकारी विचारोंका प्रचार करनेके

लिए "ग़दर" पत्रको निकालना भी तै हुआ। सम्मेलनकी ख़बर पाते ही लोगोंने दिल खोलकर रुपया देना शुरू किया और आत्मसम्मान और देशाभिमानका भाव और तेज़ीसे बढ़ने लगा। कनाडा या अमेरिकामें इससे पहले यदि कोई गोरा आदमी कह उठता "ओह! कलकत्ता, बम्बई, करांची, मद्रास, दिल्ली" तो हिन्दुस्तानी फूले न समाते और कहते "ओह! ये तो साडा साहेब है" (यह तो हमारा साहेब है) और वह उससे हाथ मिलाये सैलूनमें शराबकी दावत देने चले जाते। लेकिन "ग़दर" पत्रके प्रचार के साथ ही हिन्दुस्तानियोंके भाव बदल गये। अब यदि कोई गोरा "कलकत्ता, बम्बई" कहता तो हट्टे-कट्टे पंजाबी उसे सैलूनमें ले जाते, ज़रासी पिलाकर झगड़ेका बहाना ढूंढ लेते, फिर सब पीटते चन्द ही हफ्तों बाद शहरकी सड़कों पर "कलकत्ता, बम्बई" कहनेवाले गोरोंका कहीं पता न रहा।

"ग़दर" के छापनेके लिए सेन्फ्रांसिस्कोमें एक प्रेस कायम किया गया। एक दर्जन उत्साही और स्वार्थ-त्यागी तरुणोंने उसके लिए अपना जीवन दिया। लाला हरदयाल पत्र के मुखिया थे। "ग़दर" की गूंज स्कॉटलैण्ड यार्ड (अंग्रेजी खुफिया विभाग) और अमेरिकाके ब्रिटिश दूतावास तक पहुंची। वह इसे बर्दास्त करनेके लिये तैयार नहीं थे। ब्रिटिश प्रभुओंके शह देने पर लाला हरदयाल पकड़ लिये गये और बड़ी मुश्किलसे जमानत पर छुड़ाकर उन्हें योरप भेज दिया गया। "ग़दर" के लिए यह बड़ा धक्का था, लेकिन तरुणोंने उसे संभाला। ग़दर पार्टीके प्रेसीडेण्ट बाबा सोहनसिंह प्रचारके लिए एक बार पृथ्वीसिंह के इलाकेमें भी आये। पृथ्वीसिंह ने इस प्रकार की यह पहली बड़ी सभा देखी।

लाला हरदयालकी गिरफ्तारीके साथ ही यह भी मालूम हुआ कि शायद सभी पकड़ लिये जाएँ, इसलिए दूसरोंको भी उनका स्थान लेने के लिए तैयार रहना चाहिए। पृथ्वीसिंह खबर पाते ही तैयार हो गये और दूसरे दिन वह लॉस्एंजिलससे सेन्फ्रांसिस्कोके लिए रवाना हो गये। उन्होंने प्रेस घुमानेका काम सीख लिया। उन्हें बड़ी खुशी हुई, जब देखा कि मनीला में सहायता करनेवाले उनके दोस्त, भाई रतनसिंह वहीं प्रेसमें काम कर रहे हैं। ग़दर पार्टीका विचार पहले-पहले हिन्दुस्तानी मजदूरों-विशेषकर सिक्खोंमें आया था, उन्होंने ही अपने दिलका ख़ून देकर इस पौधे को सींचा। वे देशभक्ति और उत्साहमें लासानी थे। लेकिन उन्हें अभी तजर्बा

बहुत कम था। राजनीतिक शिक्षाके अभावके कारण वे अपने शत्रुओं के दाँवपेंच को अच्छी तरह समझ न पाते थे। इन कारणों से स्काटलैण्ड यार्ड (अंग्रेजी खुफिया विभाग) अपने एजेन्टोंको उनके संगठन के भीतर भेजने में सफल हुआ। रामचन्द्र उन्हीं में से एक था। मजूर उसकी लम्बी-लम्बी बातोंको सुनकर समझने लगे कि यह क्रान्तिका अवतार है।

यदि ग़दर पार्टी के पास अपने अनुभवी क्रान्तिकारी होते,तो अवस्था दूसरी होती। उन्हें यह भी पता नहीं था कि हिन्दुस्तानके रंग मंचपर क्या-क्या चालें चली जा रहीं हैं। पृथ्वीसिंह जैसे कितनों ही ने सन् '५७ के "भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध" (सावरकरकी पुस्तक) को पढ़ा था। उसने पढ़ने-वालोंके दिलमें जोश भर दिया। कुछ लेख या कविता भी लिख सकते थे, लेकिन राजनीतिक शिक्षाकी कमीके कारण वे यह सोच-समझ नहीं पाते थे कि इतने संगठित और शक्तिशाली राज्यके विरुद्ध किस तरहसे सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सकता है। पृथ्वीसिंहने ग़दरके वीरोंके आत्म-त्यागके बारे में पढ़ा था। उन्होंने हाँगकाँगमें राजपूत सिपाहियोंको नजदीकसे देखा था। वे सोचते थे कि एक बार हिन्दुस्तान पहुंच जाना चाहिये, फिर तो जहाँ राजपूत सिपाहियोंसे मैंने कहा, "भाइयो! मातृ-भूमिके नामपर एक राजपूत तुमसे प्रार्थना करता है, उठ खड़े हो, ब्रिटिश शासनको चकनाचूर करो और उसकी जगह अपनी हुकूमत कायम करो।" बस इतने ही से वारा-न्यारा हो जाएगा। उनके दूसरे साथी भी इसी तरह विचारते थे।

"ग़दर" में बहुत जोशीले लेख-कविताएं छपती थीं। अमेरिका के भारतीय मजूरोंने उससे बहुत कुछ सीखा-समझा। लेकिन, पत्रने उनकी राजनीतिक शिक्षा या संघटन करनेकी ओर ध्यान नहीं दिया। वे यह तो जरूर समझते थे कि हम अपने शक्तिशाली शत्रु का शक्तिशाली हथियारों द्वारा ही मुकाबला कर सकते हैं इसलिए उन्होंने आधुनिक युद्ध के हथियारों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया। कर्तारसिंहने विमान-संचालन में दक्षता प्राप्त की। दूसरे कितनों ही ने सैनिक विद्या सीखी। पृथ्वीसिंह का ध्यान ऐसी शिक्षाकी ओर नहीं था। उन्होंने सोचा कि हिन्दुस्तानमें सीखे सिखाये सैनिक तो पहले ही से बहुत हैं।

सम्भव है ग़दर पार्टीको दो वर्ष नहीं, और कितने ही वर्षों का

तजर्बा होता, तो वह अपनी ग़लतियोंसे बहुत कुछ सीखती। मगर इसी बीच में "कोमागातामारू" की घटना घटी और १९१४-१५ का महायुद्ध छिड़ गया। दुधमुंही ग़दर पार्टी को सर्वस्वकी बाजी लगाकर मैदान में कूदना पड़ा।

कोमागातामारू की घटना सन् १९१४

मजूरीकी तलाशमें युक्तप्रान्त और बिहार के लाखों स्त्री-पुरुष अफ्रीका, फीजी, मार्सेस, ट्रिनिडाड और गायना तक पहुंचे, मगर स्वतंत्र मजूरके तौर पर नहीं। वे शर्त-बन्द कुली या अर्द्ध दास थे और उन्हें बहुत बुरी परिस्थितियोंसे गुजरना पड़ा। लेकिन १९१० ई० से पहले ही हजारों पंजाबी जो कनाडा में बस गये थे, वे कुली बनकर नहीं गये थे। वे थे खेतों, जंगलों, कारखानों और खानों में काम करनेवाले स्वतंत्र मजदूर। कनाडा वालोंको हिन्दुस्तानी मजूरोंकी बाढ़से भय लगने लगा; कम मजूरी पर काम करनेके लिए तैयार हो जानेके कारण दूसरे मजूर भी उनसे घृणा करने लगे। कनाडाकी सरकार ने ऐसा कानून बनाना चाहा, जिसमें कि पहले से बस गये हिन्दुस्तानियों को भी कनाडासे निकाल दिया जाए। कनाडा, अमेरिका और हिन्दुस्तान में जबरदस्त आन्दोलन हुआ, जिससे वह कानून नहीं बन सका।

कनाडा में बस गये हिन्दुस्तानी अपने परिवारोंको पास बुलाना चाहते थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार और भारतीय सरकार के पास डेपुटेशन भेजे। कनाडाकी सरकारने प्रार्थना नहीं सुनी। बहाना यह किया कि हिन्दुस्तान से कनाडाके लिए कोई सीधा जहाज नहीं आता। यदि आता तो हम परिवार को ही नहीं, नये मजूरोंको भी आने देते।

कनाडियन सरकारने समझा था कि "न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।" लेकिन बाबा गुरुदत्तसिंह ने शर्तको पूरा करके दिखाना चाहा। उस समय वे सिंगापुरमें एक अच्छे ठेकेदार थे। उन्होंने "कोमागातामारू" नामक जापानी जहाजको ठेकेपर लिया। कलकत्तामें चार सौ पंजाबी बङ्कोवर जानेके लिए चढ़े। आखिर एक दिन "कोमागातामारू" कनाडाके तट पर पहुँचा। कनाडियन सरकारने मुंहसे चाहे कुछ भी कहा हो, पर इस दिनके लिए वह तैयार न थी। उसने साम-दाम-दन्ड-भेद सभी हथियार प्रयोग किये और चाहा कि "कोमागातामारू" लौट जाए। लेकिन, बाबा

गुरुदत्तसिंह और उनके साथी कच्ची मिट्टी के पुतले नहीं थे, वे समझते थे कि यह देश की आन और सम्मानका प्रश्न है। कनाडियन सरकार ने जहाज का सम्पर्क तुड़वा दिया–न बाहरका कोई आदमी उस पर जाने पाता न उसका कोई आदमी बाहर। धीरे धीरे जहाजकी खाद्य–सामग्री और मीठा पानी भी खतम हो चुका। पुलिसने नेताओंको गिरफ्तार करनेकी कोशिश की, लेकिन वहाँ चार सौ आदमी जान देने पर तुले हुए थे। कनाडियन सरकार ने युद्ध पोतके बल पर "कोमागातामारू" को जबरदस्ती निकालना चाहा। जब इसकी खबर कनाडाके भारतीयों को हुई तो यह उनके लिये बर्दाश्त करने की बात नहीं थी। कनाडियन मज़दूरों ने भी हिन्दुस्तानियों की वीरताकी एक झलक देखी, वे भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। हजारों गोरे मजदूर हिन्दुस्तानियों के साथ मिल गये। सबने मिलकर कनाडियन सरकारके पास चेतावनी भेजी–यदि जहाज के विरुद्ध हथियार इस्तेमाल किये गये तो हम सारे वैंकोवर शहरमें आग लगा देंगे। पाँच हजार हिन्दुस्तानी मजदूरों ने देशकी इज्जत बचाने के लिए प्राण देनेकी ठान ली।

सरकारने हथियार तो नहीं इस्तेमाल किये लेकिन "कोमागातारू" के आदमियों को कनाडा में उतरने नहीं दिया। "कोमागातामारू" को आखिर हिन्दुस्तान लौटना पड़ा।

इस घटनाका प्रभाव बहुत दूर तक पड़ा। जब अमेरिका के हिन्दुस्तानियों को पता लगा, तो उनकी आँखों में खून उतर आया। "गदर" के विशेषांक में जब खबर छप रही थी, तो उसे पढ़कर पृथ्वीसिंह को मशीन पर काम करना मुश्किल हो गया। क्रोध के मारे उनका सारा शरीर काँप रहा था। मुश्किल से उन्होंने काम खतम किया। उनके मित्र, जगतराम और दूसरे पृथ्वीसिंह को इस अवस्था में देखकर बहुत घबड़ाए और समझाने लगे लेकिन पृथ्वीसिंह ने साफ साफ कह दिया, अब मैं अमेरिका में नहीं रह सकता! उन्होंने यह भी कहा कि मैं अपने कुछ विश्वसनीय साथियों के साथ हिन्दुस्तान जाना चाहता हूँ, और वहाँ अपने देश की आन बचानेके लिए जो कुछ भी हो सकेगा, करूँगा। दोस्तों ने बहुत तरह से समझाने की कोशिश की, लेकिन सब फिजूल। पार्टी ने एक कान्फ्रेंस करने का निश्चय किया और पृथ्वीसिंह हिन्दुस्तानी मजूरों में घूम-घूमकर देशके अपमान का बदला लेने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करने लगे। भरे

पिस्तौल को जेब में रक्खे वे ग़दर पार्टी का संदेश लोगों तक पहुंचाने में सफल हुए। कितने ही मजूरों ने रुपये पैसे से सहायता की, और कितने ही युद्ध-क्षेत्र में चलने के लिए तैयार हो गये। उन्हें यह ख्याल भी नहीं आया कि आठ नौ रुपए राज की मजदूरी छोड़कर वे कहाँ जा रहे हैं। अन्त में सेकरामेण्टो में कान्फ्रेन्स हुई। बाबा केशरसिंह जिन छब्बीस नौजवानों के साथ शामिल हुए इनमें सभी छैं फुटे थे, और सभी शहादत के लिए उतावले थे। हजारों लोग इस कान्फ्रेंन्स में सम्मिलित हुए और उन्होंने खुल्लमखुल्ला इंगलैण्ड के राजा और भारत के सम्राट के खिलाफ युद्ध घोषित किया। इस कान्फ्रेन्स में हजारों अमेरिकन मजदूर भी आये थे। जिनमें कितने ही भारत की आजादी के प्रति सहानुभूति रखते थे और कुछ सिर्फ तमाशा देखने आये थे। अंग्रेजीचर एक एक बात को नोट कर रहे थे। उन्हें मालूम हो गया कि कौन कौन राज से लड़ने के लिए हिन्दुस्तान जा रहे हैं। कान्फ्रेन्स के लोगों में बहुत जोश था, और उतना ही ज्यादा आत्मविश्वास। खूब गरम गरम व्याख्यान हुए और हिन्दुस्तान की जनता से अपील की गयी कि वह राजा-सम्राट के शासन को उलट दे। जिस शासन में हमें इतना अपमान सहना पड़े, उसे रहने देना पाप है।

अध्याय ४

असफल संग्राम

भारतके रास्तेमें

कान्फ्रेन्समें एक हजार आदमियोंने स्वतंत्रताका सैनिक बनाने के लिए अपने को पेश किया। एक सौ आदमी हिन्दुस्तान जाने के लिए तैयार हुए। सबके पास अच्छी अच्छी पिस्तौल, रिवाल्वर और काफी गोली बारूद थी। इन सौ आदमियोंने महाबली अंग्रेज सरकार के साथ लड़ने का बीड़ा उठाया था। अब वे युद्ध-क्षेत्रके लिए रवाना हुए। इसे खुदकशी कहा जा सकता था। शायद ही ऐसे पागलपनके कार्यके लिए लोगोंने इतिहासमें कभी कोशिश की हो। उन्हें यह भी मालूम नहीं था कि उनके साथ कितने ही सरकारी भेदिये चल रहे हैं। ५ अगस्त, १९१४ को लोग जहाज पर चढ़े। लोगोंने वहाँ अपनी युद्ध समिति चुनी। समितिने जवाबदेह आदमियोंको काम करने के तरीके और भिन्न-भिन्न इलाकों पर नियंत्रण रखने की शिक्षा देनी शुरू की। पृथ्वीसिंहको भी कितनी ही बार व्याख्यान देना पड़ता था। उन्होंने एक बार कहा :

"हम स्वतंत्रताकी लड़ाई लड़ने हिन्दुस्तान जा रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि स्वतंत्रता हमें मिलेगी या नहीं, लेकिन एक बात निश्चित है, कि हम भारतीय जनताको स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ायेंगे और दिखलायेंगे कि कैसे देश की आजादी के लिए प्राण दिये जाते हैं।"

सेनफ्रान्सिस्कोसे ही सारी दुनियाँमें खबर फैल गयी कि हिन्दुस्तानी क्रांतिकारियोंका एक जत्था ब्रिटिश सरकारसे लड़ने हिन्दुस्तानके लिए रवाना हो गया है। जहाज जब होनोलूलू [हवाई] पहुँचा, तो सैकड़ों आदमी आश्चर्यभरी दृष्टिसे इन मतवालों का तमाशा देखने आये थे। इस वक्त तक महायुद्ध पूरे जोरसे शुरू हो गया था। एक शिक्षित अमेरिकन किसी को समाचार पत्र पढ़ते हुए देखकर उसकी ओर लपका और अखबार छीन कर बोला, "अखबारोंके पढ़ने का कोई काम नहीं। हिन्दुस्तान जाओ, क्रान्ति करो, अंग्रेजोंको निकाल बाहर करो, उनका चिन्ह तक वहां न रहने दो, हम जल्दी ही हिन्दुस्तान से ऐसी खबर सुननेके लिए उत्सुक हैं।

जब ऐसी खबर दुनियाके अखबारोंमें छपेगी तो हम उसे पढ़ेंगे और कहेंगे, शाबाश, बच्चो, खूब किया।"

पृथ्वीसिंहके साथियोंने समझा कि वह कोई शराबी ! या पागल है लेकिन पीछे उन्हें मालूम हुआ कि वह एक प्रसिद्ध पुरुष तथा द्वीप के शासन का अध्यक्ष है।

दस दिन और चलने के बाद जहाज योकोहामा [जापान] पहुंचा। स्वतंत्रताके सैनिक इसके लिए बहुत उत्सुक थे कि वहाँ हिन्दुस्तानियोंमें मिलकर उन्हें विद्रोहका संदेश दें। यहीं पर झाँसीवाले पंडित परमानन्द मिले। उन्हें जब सब बातों का पता लगा, तो वह भी अमेरिका जानेका ख्याल छोड़ इसी टोलीमें मिल गये। वे अच्छे वक्ता और गायक थे, अपने व्याख्यानों और गानों से लोगोंमें उत्साह का संचार करते थे। कोबे और नागासाकी होते जहाज अब हाँगकांगके पास पहुँच रहा था। समुद्रकी लम्बी यात्रा और ठण्डी हवा ने दिमाग को ठण्डा करनेमें सहायता की थी। अब वह समझने लगे थे कि हम मुट्ठी भर आदमी अंग्रेजके दुर्ग हांगकांग में जा रहे हैं। अमेरिकन जहाज यहीं तक के लिए किया गया था, यहांसे अब दूसरे जहाज को लेना था। पृथ्वीसिंहके साथियोंने आपसमें विचार किया। हथियार लेकर उतरते ही वे जरूर गिरफ्तार कर लिये जाते; फिर हिन्दुस्तानमें नहीं, यहीं रहना पड़ता; इसलिए तै हुआ कि हथियारोंको समुद्रमें फेक देना चाहिए। फेंकते वक्त कितनों ही की आंखोंमें आंसू थे। सभी कड़े अनुशासनको मानने वाले थे, इसलिए हथियार फेंकने में देर नहीं हुई।

आगे उन्होने हांगकांगकी हिन्दुस्तानी फ़ौजसे भी बातचीत की और वह भी उनका साथ देनेके लिए तैयार थी। उस समय जिस तरह सारी सेना खींचकर फ्रांसके मैदानमें जमा की जा रही थी, उससे बहुत कुछ सम्भव था कि वह हांगकांगको एक बार अपने अधिकारमें कर लेते। लेकिन, उन्हें अंग्रेजी जंगी जहाजों और दूसरे हथियारोंका ज्ञान था और वे यह भी जानते थे कि यहां की चीनी जनता को उनसे कुछ भी लेना देना नहीं है। जो कुछ भी हो, हांगकांगमें युद्ध करनेका ख्याल छोड़ दिया गया।

उस वक्त जर्मन युद्ध-पोत एम्डेन इधरके समुद्रमें तहलका मचाये हुए था। बहुत कम जहाज बन्दरगाहमें आते थे। जहाज को देखनेके लिये

बहुतसे लोग किनारे पर पहुँचे थे। मुसाफिरों को शहर जाने की इजाजत हो गयी, मगर पृथ्वीसिंहके साथियोंको नहीं। कोई अंगरेज अफ़सर उन्हें देखनेके लिए भी नहीं आया। उनके बर्तावसे मालूम होता था कि इन यात्रियोंके बारेमें वे कुछ भी जानना नहीं चाहते थे। आखिर जाननेकी बातें तो वे पहले ही से जानते थे। लोगोंके दिलमें तरह तरह के संदेह उठने लगे। शायद पकड़कर जेलमें डाले जाएँगे अथवा फ़ौजी अदालतमें फैसला करके गोली मार दी जायेगी। लेकिन किसीके दिलमें जरा भी डर नहीं समाया। सभी मृत्यु के आलिंगनके लिए तैयार थे। शायद उनका रंगढंग मालूम हो गया और ब्रिटिश अधिकारियोंने उन्हें शहरमें जानेकी इजाजत दी। वे उधर दस-दस पाँच-पाँचकी टोलीमें जाते। उनका मुख्य काम था—पार्टीका संदेश सभी जगह पहुँचाना। हिन्दुस्तानी सैनिक और पुलिस उनके साथ सहानुभूति रखती थी। लेकिन उन्होंने उसे प्रयोगमें लाना नहीं चाहा। कुछ दिनों तक इन्तज़ार करनेके बाद जापानी जहाज "तोशा मारू" मिला। एम्डेनका खतरा हर वक्त सर पर था। हाँगकाँगसे निकलनेके बाद किसी वक्त भी उसके आ धमकनेका डर था। जहाजके दूसरे मुसाफिर भगवान-से त्राहि-त्राहि मना रहे थे। लेकिन जहाज सुरक्षित तौरसे सिंगापुर पहुँच गया। यहाँ पर भी उनके सामने सिंगापुरके सिपाहियोंकी सहानुभूतिका प्रलोभन था, मगर उन्होंने हिन्दुस्तानसे पहले कुछ भी न करनेका निश्चय कर लिया। सिंगापुरके उत्साही सैनिकोंको उन्होंने वही संदेश दिया कि तैयार रहो। रास्ते में जहाजसे अण्डमान दिखलायी पड़ा, उस वक्त उनके हृदयमें सम्मानकी भावना उमड़ आयी, जब कि खयाल आया कि कितने ही देशभक्त वीर बेड़ियोंमें जकड़े यहाँ बन्द हैं। उन्होंने खड़े खड़े अभिवादन करते शपथ ली—"या तो इन वीरोंकी बेड़ियोंको तोड़ेंगे, या खुद बेड़ियां पहिने उनके पास आवेंगे।" साल भरके भीतर ही उनमेंसे कितने ही अण्डमानमें पहुँच गये।

जहाज रंगून पहुँचा। उस वक्त बरमा ब्रिटिश भारतका एक अंग था। यहाँ भी वे बैरकोंमें गये। सिपाहियोंसे मिलकर उनका हौसला इतना बढ़ गया कि शहरकी सड़कों पर भी विद्रोहकी बातें करने लगे। रंगूनमें पहले पहल उन्हें पता लगा कि, "कोमागातामारू" के यात्रियों पर क्या-क्या गज़ब ढाये गये। बजबजमें जहाज़से उतरनेके बाद वे अपनी दुःखगाथाको जत्था बाँधकर देशके भाइयोंको सुनाने जा रहे थे, उसी समय बिना सूचना दिये

उनपर गोलियाँ बरसने लगीं; बीसियोंकी जानें गयीं और बहुतोंको गिरफ्तार किया गया; कितने निकल भागे और जंगलोंमें जाकर छिप गये। पृथ्वीसिंह और उनके साथियोंने जब इस तरहकी खबरें सुनीं तो उनके हृदय को भारी आघात लगा। उन्होंने बदला लेनेकी प्रतिज्ञा ली, लेकिन बुद्धि उन्हें बतला रही थी कि उनके भाग्यमें भी वही बदा है।

जहाज़ कलकत्ताके बन्दरगाह पर पहुँचा। पुलिस डाक्टरका भेष बनाकर जाँच करनेके बहाने जहाज़ पर सवार हो गयी। एक एक चीजकी खूब अच्छी तरह तलाशी ली गयी। कोई हथियार नहीं मिला। पुलिसने जिन्हें खूब मजबूत साफ सुथरे कपड़ोंमें देखा और जो ख़तरनाकसे मालूम हुए उन्हें स्पेशल ट्रेनमें पहुँचाया गया। ट्रेनमें पंजाबकी सी. आई. डी. काफ़ी संख्यामें विराजमान थी। गुरखा सिपाही गारद बनकर चल रहे थे। सी० आई० डी० वाले जाननेकी बहुत कोशिश करते रहे लेकिन वहाँ कौन बतलाने के लिये तैयार था।

पंडित जगतराम जहाजसे उतरते ही पुलिसके हाथसे ग़ायब हो गये थे। वे मुग़लसरायमें आकर अपने साथियोंकी स्पेशल ट्रेनसे मिले। मुड़े सिर और फटे चीथड़ोंमें वे बिलकुल दूसरेही मालूम होते थे। सभी उन्हें देखकर हँसने लगे। उन्हें यह देखकर सतोष हुआ, कि उनमें से एक बाहर जनताके भीतर है। ग़दरपार्टी के मजदूर क्रांतिकारी वस्तुतः आतंकवादपर नहीं, बल्कि भारतीय सेनाकी मदद पर विश्वास रखते थे, जिसे कि अपना खून मांस समझ वो अपनेमें मिलानेकी आशा रखते थे।

पुलिसकी हिरासतसे लापता

पंजाबकी सी. आई. डी. को सेन्फ्रान्सिस्को ही से बहुत सी बातोंकी सूचना मिल चुकी थी। उसके पास पूरा नाम और पता मौजूद था। लेकिन कितने ही क्रांतिकारियों ने अपने नाम और पते दूसरे ही लिखाये, और वे उन स्टेशनोंसे निकल गये। पृथ्वीसिंहने भी अपना नाम और पता बदला था। लेकिन उनका बाईस वर्षका पुष्ट और स्वस्थ शरीर और ऊपरसे साफ सुथरा वेष ऐसा था कि पुलिसने उन्हें बाहर नहीं जाने दिया। लेकिन उनके ख़िलाफ़ कोई इल्ज़ाम नहीं था। गाड़ी रावलपिंडी स्टेशन पर पहुँची। कम्पार्टमेंटके सारे आदमी एक-एक-कर चले गये। लेकिन उनको इजाजत नहीं मिली। सी० आई० डी० के अफसर वर्षासे बचनेके लिये

छाता लगाये खड़े थे। खिड़की खुली थी। पृथ्वीसिंहके शरीर और दिमाग़ दोनोंमें ही फुर्ती थी। एक मिनटमें ही उन्होंने अपने कर्तव्यका निश्चय कर लिया। वे तेजी से निकल कर प्लेट फार्म की भीड़ में मिल गये और इधर-उधर करते सी. आई. डी. की पहुंचके बाहर हो गये। शायद सी. आई. डी. ने किसी दूसरे को पकड़कर अपनी गिनती पूरी करली। दूर खड़े-खड़े उन्होंने देखा कि ट्रेन स्टेशनसे रवाना हो गयी। शहरमें जाकर दूसरे कपड़ोंको खरीद पहले उन्होंने अपना भेष बदला, फिर स्टेशन पहुंच उन साथियोंसे मिल गये, जिन्हें ट्रेनसे जानेकी इजाज़त मिली थी।

पृथ्वीसिंह उनके साथ लाहौर आये जहाँ सबने भविष्यका प्रोग्राम तै किया। पृथ्वीसिंह राजपूत लोगों में विद्रोह का संदेश पहुँचाने के लिए उतावले थे। जातिके बड़े-बूढ़े इस कोमल तरुण की बातों की क्या कदर करते। उस वक्त पृथ्वीसिंहको अफसोस होता कि आज यदि मेरे भी दाढ़ी-मूंछ होती! वह अकल की बात करते लेकिन दूसरे ध्यान नहीं देते थे क्योंकि अभी वह कच्चे छोकरे थे।

सवा महीने तक इस तरह छिपे रहकर वह अपना काम करते रहे। अपनी जाति के कुछ लोगोंको खींचनेमें सफलता जरूर मिली, उससे भी ज्यादा आसानीसे सफलता मिली अपने पुराने स्कूलके सहपाठियों को समझाने में। वे उनके पीछे चलनेके लिए तैयार थे। पुलिस बड़ी तत्परता से पीछा कर रही थी, किन्तु विद्यार्थियों की चौकसी और सहायताके कारण वह पकड़ न सकी। अम्बाला स्टेशन और लालडू स्टेशन की ओर जाने वाली सड़क पर सभी जगह पुलिसकी जबर्दस्त निगरानी थी, मगर पृथ्वीसिंहको आँख बचाकर निकल जाने में कभी दिक्कत नहीं हुई।

एक रात सभी साथी अम्बाला शहरके पास एक खेतमें जमा हुए। सबने अपने काम की रिपोर्ट दी और उनके ज़िम्मे नया काम दिया गया। तीन घंटे की बैठकके बाद लोग अपनी अपनी जगह लौट गये।

दूसरी बैठक एक छोटेसे स्टेशन पर की गयी। जान पड़ता था पंजाबी गँवार कहीं जाने के लिए गाड़ी का इन्तजार कर रहे हैं। सभी लोग पैसेके अभाव की शिकायत कर रहे थे। कुछ लोगोंने महाजनों या सरकारी खज़ानों के लूटने का प्रस्ताव किया। सरकारी खज़ाने के

लूटनेके लिए उनके पास न साधन थे, न शक्ति। लेकिन महाजनों के लूटने के बारे में काफी लोग सहमत थे। लेकिन सभी जवाबदेह नेता, खासकर बाबा निधानसिंह इसका सख्त विरोध करते रहे। बाबा निधान सिंह ने इस तरहके प्रस्तावको मुंह पर लाने के लिए भी लोगों को खूब फटकारा। आखिर में प्रस्ताव त्याग दिया गया। बाबा निधान सिंह साठ वर्ष की उमर में क्रांन्तिकारी सेना में शामिल हुए थे। वह बहुत ही हिम्मत-वाले और पाक दिल आदमी थे। सभी उन्हें बड़ी सम्मानकी दृष्टि से देखते थे।

एक दिन अखबार पढ़ा कि पंडित जगतराम पेशावर में गिरफ्तार हो गये। वह सीमाप्रान्तमें काम करनेके लिए भेजे गए थे। उनके ऐसे योग्य साथी की गिरफ्तारी बड़ी हानिकी बात थी। इसके कुछ दिन बाद की बात है, कुछ क्रान्तिकारी ताँगों पर बैठ देहातमें एक बैठक करने जा रहे थे। रास्ते में पुलिस की एक टोलीने उन्हें रोक कर उतारना चाहा; इस पर झगड़ा हो उठा। यद्यपि सरकारी अफसरों पर भी गोली चलानेकी सख्त मनाही थी, मगर आत्म-रक्षा के लिए पार्टी ने पूरी स्वतंत्रता दे रक्खी थी। सभीके पास हथियार थे। लड़ाईमें पुलिसका एक आदमी गोली खाकर वहीं मर गया। दूसरे और सहायता लाने के लिए भाग निकले। पृथ्वीसिंह के साथियों के लिए दूर निकल भागने का रास्ता न था। उन्होंने झाड़ियों में प्रतीक्षा करते हुए पुलिस से मुकाबला करने की ठानी। पुलिस के आने पर उठकर लड़े और अंत में सभी पकड़ लिये गये।

इतनी अधिक संख्या में साथियों का पकड़ा जाना, खासकर के पार्टी के तीन विशेष व्यक्तियोंका अभाव, कार्यकर्ताओंके दिमाग पर बुरा असर करने लगा। उनका उत्साह ढीला पड़ गया और वे पृथ्वीसिंह को भी सलाह देने लगे, कि अब कोशिश करना बेकार है। लेकिन, पृथ्वीसिंह मैदान छोड़नेका ख़याल दिमागमें भी लाने के लिए तैयार नहीं थे। चाहे जो कुछ भी हो, वह अपने पथ से विचलित नहीं होंगे।

गिरफ्तारी

पार्टीकी तीसरी बैठक होनेवाली थी। पुलिस जरा जरा से संदेह पर लोगोंकी गिरफ्तारी कर रही थी। अम्बाला शहर पृथ्वीसिंहके कार्यका केन्द्र

था। सूचना पाने के बाद में उन्होंने अपना भेष बदला और बैठक की जगह जानेके लिए तैयार हुए थे। पुलिस जानती थी कि पृथ्वीसिंह राजपूत हैं और कोई राजपूत उन्हें धोखा देने के लिए तैयार नहीं था। आखिर में अम्बालाके पुलिस सुपरिन्टेण्डेन्टने सरदार लहनासिंह (एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर) को इस पापके लिए तैयार किया। सरदार लहनासिंह विद्यार्थीकालसे पृथ्वीसिंह को जानते थे। पृथ्वीसिंह अपने काम के लिए जाति के बहुत से मुखियोंसे मिलते रहते थे, लेकिन लहनासिंह पर उनका कभी भी विश्वास न था। उस दिन पृथ्वीसिंह राजपूत बोर्डिंग हाउस में थे, किसी लड़केने बच्चोंके उत्साहमें लहनासिंहसे कह दिया। लहनासिंह पृथ्वीसिंह के कमरे में चले आये। मीठी मीठी बातें करने लगे और कुछ दिनोंके लिए अपने गाँवमें ले जानेके लिये बहुत आग्रह करने लगे। पृथ्वीसिंहने असमर्थता प्रकट की। लहनासिंह चले गये।

यद्यपि पृथ्वीसिंह कभी आशा नहीं रखते थे कि लहनासिंह उनके उद्देश्यसे सहानुभूति दिखलाएँगे; लेकिन उन्हें यह आशंका न थी कि एक उच्च उद्देश्यमें लगे तरुण के साथ वह विश्वासघात करेगा। लहनासिंह सीधे पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्टके पास गये। लड़के सभी स्कूल चले गये थे। बोर्डिंगमें उनके सिवा कोई नहीं था। वह बाहर जाने के लिये कोट पहिनना ही चाहते थे कि किसीने द्वार पर दस्तक दी। दरवाजा खोला। देखा नागरिक भेषमें एक सिक्ख सज्जन खड़े हैं। आगन्तुकने घबड़ाये हुये स्वरमें पूछा—"क्या यह सिक्ख बोर्डिंग हाउस है ?"

"नहीं, यह राजपूत बोर्डिंग है।"

"आहे, अफसोस, क्या आप कृपा करके सिक्ख बोर्डिंग हाउस ढूंढ़नेमें मेरी मदद कर देंगे ?"

"हाँ, जरूर मदद करूँगा। आइये बैठिये, मैं तैयार हो जाता हूं।" आगन्तुक अब भी घबड़ाया हुआ था और उसके तौर तरीकेको देखकर अचरज होता था। लेकिन एकही क्षणमें पृथ्वीसिंहने उसका कुछ और ही रूप देखा, उसने अपनी जेबसे रिवाल्वर निकाल कर जोरसे कहा, "मेरे साथ आओ, नहीं तो मैं गोली मार दूंगा।" वहाँ सोचनेके लिये एक मिनट का भी समय नहीं था। पृथ्वीसिंह तुरन्त रिवाल्वर की ओर झपटे और

उसकी नलीको पकड़ लिया। आगन्तुक घोड़े पर अंगुली रख चलानेकी अनुकूल स्थिति ढूंढ़ रहा था और पृथ्वीसिंह उसकी पीठ पर जाकर उसे ज़मीनपर दबा देना चाहते थे। अँधेरे कोनेमें यह सब कुछ हो रहा था। पृथ्वीसिंह तै नहीं कर पाये थे कि यह पुलिसमैन है या कोई गुण्डा। यह पुलिसका आदमी है तो अकेले क्यों, और सादी पोशाकमें क्यों ? यदि वह बदमाश है, तो किसने ख़बर दी कि पृथ्वीसिंहके पास रुपये हैं। पृथ्वीसिंह मददके लिये किसी को पुकार नहीं सकते थे और आगन्तुक भी चुपचाप हाथा-पाई कर रहा था। उन्होंने समझा, यह ज़रूर कोई बदमाश है। उन्होंने निश्चय किया कि उसे दबाकर रिवाल्वर छीन लें, फिर कोठरीमें बन्द कर रफ़ू-चक्कर हो जाएँ।

यह ज़िन्दगी और मौतका सवाल था। आगन्तुक भी नौजवान और खूब मज़बूत आदमी था। काफ़ी संघर्षके बाद कुछ मिनिटोंमें वह पिस्तौल छीननेमें सफल हुये। उन्होंने उसे दूर फेंक दिया। इसी समय नौजवानने अपने जेबसे छुरा निकाला और पृथ्वीसिंहके ऊपर कई चोटें की। उस उत्तेजनामें पीड़ाका कोई ख़याल न था। पृथ्वीसिंहने कूदकर छुरेकी धार को पकड़ लिया। धार हथेलीमें काफ़ी धँस गयी, मगर उन्होंने उसे छोड़ा नहीं। घायल शेरकी तरह पृथ्वीसिंह खूंख्वा· हो उठे थे, मगर उन्होंने अपने ऊपर संयम रखा और छुरेको अलग फेंक दिया। उन्होंने उस आदमी को कई मर्तबे उठा-उठाकर दीवाल से रगड़ा। थोड़ी देरमें वह मुर्दासा बन गया और उन्होंने उसे छोड़ दिया। उधर वह उठक-पटकके कारण बेहोश हो गया था और इधर अधिक लहूके बहनेसे पृथ्वीसिंह बेहोश हो गये।

अध्याय ५

मौतका इन्तज़ार

पृथ्वीसिंहने जब आँख खोली तो देखा, वह खाट पर पड़े हैं और नंगी तलवार लिये चार पुलिसके सिपाही पहरा दे रहे हैं। थोड़ी दूर पर दो आदमी बैठे थे, जिनमें एक था पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट और दूसरा शहरका मजिस्ट्रेट। आँख खुली देखकर दोनों उनके पास आये और बयान लिखाने के लिये कहा। पृथ्वीसिंह पूरे होशमें आगये थे, लेकिन घावमें दर्द नहीं मालूम होता था। उन्होंने पिछली घटना पर विचार करना शुरू किया। थोड़ी देरमें उन्हें सारी बातें साफ़ मालूम देने लगीं। अब वह अतीत नहीं, भविष्यके बारेमें विचारने लगे। मजिस्ट्रेटने अपराध और इलज़ामको कह सुनाया। पृथ्वीसिंहने पूछा कि रिवाल्वर लेकर हमला करनेवाला वह सिक्ख कहाँ है? जवाब मिला, "मृत्यु शय्यापर।" पृथ्वीसिंहको अच्छी तरह स्मरण था कि वे उस आदमीको मारना नहीं चाहते थे, न उन्होंने छूरे या रिवाल्वर का इस्तेमाल किया था। उन्होंने दूसरा सवाल पूछा, "वह मृत्यु-शय्या पर कैसे है?" उन्हें इसका उत्तर नहीं मिला। लेकिन, पीछे पता लग गया कि वह आदमी भला चंगा एक आराम कुर्सी पर बैठा है। मजिस्ट्रेट और सुपरिन्टेण्डेण्ट मृत्यु शय्याकी बात कहकर डराना चाहते थे, जिससे पृथ्वी-सिंह कुछ बातें बतलानेको तैयार हो जाएँ। फिर सवाल जवाब शुरू हुआ। पृथ्वीसिंह बुरी तरहसे घायल थे, लेकिन वह दबनेवाले नहीं थे। अफसरोंने लिख पढ़ कर उन्हें छुट्टी दे दी।

नयी चालें

अब खूनकी कमी और दर्दका असर होने लगा। उस वक्त वहां कोई उनकी सुधि लेनेवाला नहीं था। पहरेवाले सिपाहियोंके रूखे चेहरेको देख-कर उन्होंने बात करना भी पसन्द नहीं किया। उसी समय एकाएक स्कूलके दिनोंके परिचित चेहरेवाला एक तरुण उनके पास आया। उनका ध्यान इधर नहीं गया कि कैसे पुलिसके पहरेके भीतर वह आ सका। उसने बड़ी सहानुभूति दिखलायी और कुछ नारंगियाँ दीं। जाते वक्त उसने सिपाहियों से विनती करते हुये कहा, "मैं अपने मित्रसे मिला हूँ, सुपरिन्टेन्डेण्ट को यह ख़बर न होने पाये।"

शहरमें तरह तरहकी अफ़वाहें उड़ रही थीं। कोई बड़ा क्रांतिकारी पकड़ा गया है और पुलिस पर ज़बरदस्त हमला होनेवाला है। पुलिस की ज़रूरतसे ज़्यादा मुस्तैदीने लोगोंमें घबराहट पैदा कर दी थी, और उस दिन समयसे पहले ही शहरकी सारी दूकानें बन्द हो गयीं।

पृथ्वीसिंह को ज़बरदस्त बुख़ार था और वह ज़िन्दगी और मौतके बीच लटक रहे थे।

वे ८ अक्तूबरको पकड़े गये थे। लेकिन पुलिस इतनी घबड़ायी हुई थी कि उन्हें चार दिन भी अस्पतालमें रखना मुश्किल मालूम हो रहा था। १२ तारीखको रातके सन्नाटेमें वह अम्बालाके सेन्ट्रल जेलमें पहुँचा दिये गये।

कैदी अफ़वाहें सुनकर कह रहे थे कि क्रांतिकारियों ने शहरपर आक्रमण कर दिया है। घमासान लड़ाई हो रही है और किसी समय भी जेल पर हमला हो सकता है। पृथ्वीसिंह अपनी कालकोठरीमें अकेले पड़े थे। वह भीषण पीड़ा से कराह रहे थे, मगर उनकी सुधि लेने वाला कोई नहीं था। कैदी आशा लगाये हुये थे कि क्रांतिकारी अब जेलका फाटक तोड़ने ही वाले हैं, उन्हें मुक्ति मिल जाएगी। उन्हें यह पता न था कि इन सारी अफ़वाहों का कारण वह क्रांतिकारी मरणासन्न होकर यहीं पड़ा है।

सवेरे जब सेलका दरवाज़ा खुला तो छ फुट लम्बा कोयलेसे भी काली डरावनी सूरतका एक भंगी भीतर आया। पृथ्वीसिंहको जेलके बारेमें सुनी बचपन की कथाएँ सच्ची मालूम होने लगी। पृथ्वीसिंहको खानेकी तो बात ही क्या, पीनेके लिये पानी तक नहीं दिया गया था। जेलके अधिकारी उस आदमीको देखना चाहते थे जिसकी वजहसे सारे शहरमें खलबली मची हुई है। इनका बर्ताव अच्छा था। जेलके सुपरिन्टेण्डेण्टने जिसे सिविल सर्जनके तौर पर अस्पतालमें पृथ्वीसिंहने क्रूरताका अवतार समझा था, उसने भी पहली धारणाको गलत साबित किया, वह वस्तुतः वैसा क्रूर न था। असिस्टेन्ट सर्जन क्रूर भी अधिक मृदुल स्वभावका था उसने घावके वर्णन पढ़नेके बाद कहा, "बच्चे, तुम बड़े खुश क़िस्मत हो, तुम्हारी गर्दन के दोनों ओर की नसोंमें जैसा गहरा घाव है, उससे बच निकलना आश्चर्य की बात है।"

पृथ्वीसिंह अभी विचाराधीन क़ैदी थे। उन्हें अपने या अपने संबंधियों के द्वारा भेजे भोजन को खाने का हक़ था। लेकिन वहाँ हक़को कौन पूछता

था। कोई सम्बन्धी भी उसके पास नहीं पहुँच सकता था। शायद अधिकारियोंने इस तरहके बर्तावसे हिम्मत तोड़नी चाही थी, लेकिन परिणाम उलटा हुआ। चंद दिनोंके बाद पुलिसने आत्माराम नामक एक आदमीको लाकर पासकी सेलमें बन्द कर दिया। रोज़ पुलिस उसे पीटनेका अभिनय करती, और पृथ्वीसिंह उसके चिल्लानेको सुनते रहते। अभिनयसे पहिले पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट उस आदमीको जेलके द्वार पर खड़ा होकर बुरी-बुरी गालियाँ देता और धमकाकर कहता, "साले, यदि सभी बातें सच सच नहीं बतायीं, तो गोलीसे मार दिये जाओगे। सोच लो, फिर मुझे बुलाकर सारी बातें कह दो; नहीं तो पृथ्वीसिंहकी तरह किस्मतका फैसला सुननेके लिए तैयार रहो।

जाड़ों के दिन थे। सेलके भीतर और भी ज्यादा सर्दी थी। जेलरने मेहरबानी करके पृथ्वीसिंहको चन्द मिनट धूपमें बैठने की इजाजत दी। गाली—मार सुनकर उनकी सहानुभूति नवागन्तुक के साथ हो गयी थी। उन्हें आश्चर्य हुआ जब कि देखा कि वह आदमी वही आत्माराम है। उस आदमीके पास न गरम पोशाक थी, और न बदन ढाकनेके लिए कोई कम्बल। वह जाड़ेके मारे काँप रहा था। भगवान और धर्म की दोहाई देकर वह सिपाहियों के सामने गिड़गिड़ा रहा था। लेकिन, वे उसे धूप में जाने नहीं देते थे।

कितने ही दिनों तक पुलिस सुपरिण्टेन्डेन्ट उसी तरह आकर गंदी गालियां देता, और पिटाईका अभिनय होता। धीरे-धीरे सिपाहियोंने दया दिखलाते हुए आत्माराम को धूप में बैठने के लिए इजाजत दी, फिर एक ही दुःख के दुखी दोनोंकी आपसमें बातचीत होने लगी। तीसरे दिन आत्माराम ने क्रान्तिकारियों की बातें करनी शुरू कीं। उसकी बातें और बढ़ती गयीं। उसने कहा, यदि आप किसी तरह एक रिवाल्वरका प्रबन्ध कर दें, तो मैं सुपरिन्टेण्डेन्टसे बदला ले लूं। आत्मारामने बड़े-बड़े क्रान्तिकारियोंसे अपने सम्बन्ध की बातें शुरू कीं। एक दिन वह कह बैठा—"पंडित जगतरामने मुझे क्रान्तिके पथपर आरूढ़ किया। उन्होंने मुझसे प्रार्थना की कि तुम भारतीय क्रांतिके मुखिया बनो।" पृथ्वीसिंह ने पूछ दिया—कब तुमने पंडित जगतराम को देखा ?"

"यही कोई चार महीने हुए।"

जान पड़ता है आत्मारामको अच्छी तरह पढ़ाया नहीं गया था। उसे यह भी मालूम नहीं था कि चार महीने पहले तो जगतराम अमेरिकामें थे। अभी तो उन्हें हिन्दुस्तान आये दो महीने भी नहीं बीते। पृथ्वीसिंह ने रंगे-गीदड़को पहचान लिया। मनमें आया तो कि लगाएँ दो-चार थप्पड़। लेकिन उन्होंने अपने को रोक लिया। पाँचवें दिन उसने बम बनाने का नुस्खा बतलानेके लिए प्रार्थना शुरू की। पृथ्वीसिंहने कहा, "कागज़ पेन्सिल ले आओ, नुस्खा लिखे देता हूँ।" कागज़ पेन्सिल भी आ गयी। पृथ्वीसिंह ने कहा, तुम मैट्रिक पास हो, गंधक जैसी भड़कने वाली चीजोंको तो जानते ही हो ?"

"जानता तो हूं, मगर मिलेगी कैसे ?"

"इसके बारे में मैं नहीं जानता, तुम यदि सुपरिन्टेण्डेण्ट को मारना चाहते हो, तो उन्हें जमा करना होगा।"

"अच्छा, मैं तदबीर करूँगा।"

पृथ्वीसिंहने कहा, "इन सभी चीजोंको इकट्ठा करके एकान्त कोठरी में जाओ, ऐसी कोठरी में जहाँ तुम्हें कोई देखने न पाये। एक अच्छा स्टोव और एक बड़ी कड़ाही भी ले जाना। दरवाजे को खूब बन्द कर देना और भीतर से ताला लगा देना। स्टोव को जलाकर ठीक करना। तब कड़ाही को उस पर रख देना। सभी सामग्री को खूब मिला देना। जब कड़ाही लाल हो जाए, तो सामग्री को उसमें डाल देना। एक बढ़िया बम तैयार हो जाएगा। उसी से सुपरिन्टेन्डेण्ट को मार देना।

"आप तो मज़ाक कर रहे हैं, इस तरह तो मैं भी मर जाऊँगा।"

"दोस्त, मैं माज़क नहीं करता, मज़ाक तुम कर रहे हो। बिना अपने को खतरे में डाले तुम दूसरे को कैसे मार सकते हो ?"

दिल में गुस्सा तो बहुत आ रहा था, लेकिन और कुछ नहीं कहा। दूसरे दिन आत्माराम वहां से लापता हो गया था। उसी दिन काहनसिंह नामका एक राजपूत तरुण बगल की सेल में डाल दिया गया। पृथ्वीसिंह के समय वह भी उसी स्कूल में पढ़ता था, दोनों में दोस्ती थी। गिरफ़्तारी केदिन काहनसिंह भी मौजूद था। उसे भी पृथ्वीसिंह का साथी समझकर पकड़ा था। काहनसिंह को क्या पता था कि यह दोस्ती इतनी महँगी पड़ेगी। एक इज्ज़तदार धनी परिवार का लड़का और अब बाग़ियों के साथ सेलमें बन्द।

पृथ्वीसिंह ने उसे समझाना शुरू किया और एक ही दो दिन में उसकी हिम्मत मजबूत हो गयी ।

न्याय का ढोंग

दो हफ्ते तक पृथ्वीसिंह खुलकर हिल-डुल तक नहीं सके । जब घाव कुछ भर गया तो मुक़दमा शुरू हुआ । एक फर्स्ट–क्लास हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेट जेल में भीतर ही मुकदमा करने आया । उस वक्त मालूम हुआ कि सब-इन्स्पेक्टर सिक्ख सिर्फ़ नज़र रखने के लिए भेजा गया था जिसमें कि पुलिस की भारी टोली लेकर आने से पहले मुलज़िम भाग न जाए । लेकिन सब इन्स्पेक्टर घबड़ा गया । पृथ्वीसिंह के ऊपर इलज़ाम था हत्या करने के प्रयत्न का और काहनसिंह पर डकैती का । कहा गया था कि जिस वक्त गुत्थम-गुत्था हो रही थी, उसी वक्त काहनसिंह बाहरसे आया और सब-इन्स्पेक्टरकी जेब से मनी-बेग लेकर चम्पत हो गया । एक प्रतिष्ठित धनी खानदान के लड़के पर यह इलज़ाम और अदालत ने इसे मान लिया । एक शिक्षित मज़दूर तरुण राजपूत जिन्दगी और मौत की लड़ाई लड़ते अपने दोस्तकी मदद करने नहीं, बल्कि कुछ रुपल्लियोंको छीनने के लिए आया ! और गवाह ? वही अकेला सब-इन्सपेक्टर और जज ? एक अंग्रेज । १९१४ में भारतकी राजनीतिक और अदालती अवस्था क्या थी, इसे यह घटना अच्छी तरह बतलाती है । सब-इन्सपेक्टर न अपने इज़हार में पृथ्वीसिंह के बारे में कहा कि इसने मेरा रिवाल्वर छीन लिया और मुझपर गोली चलाना चाहता था, मगर घोड़े के नीचे एक छोटासा टुकड़ा टीन का मैंने रख दिया था जिससे वह मार नहीं सका । सब-इन्सपेक्टर ने कानका एक टुकड़ा पेश करके बतलाया कि मुलजिम ने छुरे से हमला किया लेकिन सब-इन्सपेक्टर बाल–बाल बच गया । पृथ्वीसिंह को न्याय की आशा क्या हो सकती थी, जबकि हर जगह उन्हें पुलिस का हाथ दिखलायी पड़ता था ।

चौधरी शादीराम को जब बेटे की गिरफ्तारी की खबर बर्मा में मिली, तब वे दौड़े-दौड़े अम्बाला पहुँचे । मजिस्ट्रेट की इजाज़त से कोर्ट ही में मुलाकात हुई । मुलाकात के वक्त कागज–पेन्सिल लिये हुए सी. आई. डी. का आदमी टपक पड़ा । इस पर बाप बेटे बरमी भाषा में बात करने लगे । पृथ्वीसिंह को यह देखकर संतोष हुआ कि पिता के चेहरे पर न दीनता

थी और न आँखों में आँसू, यद्यपि उनका कलेजा भीतर से फटा जा रहा था। पैर छूने के बाद उन्होंने कहना शुरू किया, "अच्छा हुआ होता यदि तुम बर्मा में मेरे ही पास रहे होते, लेकिन भगवान की इच्छा दूसरी ही थी। अच्छा, जो उसकी मर्जी।"

पुलिस ने ज्यादा बातें मालूम करने के लिए न जाने कितने निरपराध आदमियों को बड़ी-बड़ी तकलीफें दी। कितने ही राजपूत विद्यार्थियों को गिरफ्तार कर जेल में तरह-तरह की सांसत दी गयी। स्कूल के अधिकारियों को मजबूर किया गया कि वह इन लड़कों की हाजरी लिखते जाएँ जिससे पुलिस के खिलाफ कोई इल्जाम न लगाया जा सके। कितने ही सम्भ्रांत राजपूत मुखिया भी पकड़े गये और कई दिनों तक उन पर जुल्म होता रहा, लेकिन उन्हें मालूम ही क्या था जो बतलाते। चौधरी हंसराज के ऊपर जुल्म की हद कर दी गयी थी। लगातार कई दिनों तक उन्हें सोने नहीं दिया गया। लेकिन एक बहादुर राजपूत की तरह उन्होंने साफ साफ कह दिया, "सांसत करते-करते चाहे मार डालो, मगर मैं झूठा बयान नहीं दूँगा।"

जिन विद्यार्थियों ने डरके मारे पुलिस की सिखायी कुछ बातें कह भी दी थीं, उन्होंने भी जजके सामने पुलिस का भण्डा फोड़ दिया।

सेशन जजके तीन असेसरों में दो बनिये थे और एक मुसलमान राजपूत। असेसरोंसे राय पूछी गयी, तो वे बाहर जाकर आपसमें राय करके एक चिट लिखकर लाये, "मुल्जिम निरपराध हैं, इन्हें छोड़ देना चाहिए।" योरोपियन जज आग बबूला हो गया। उसने कहा, "तुम्हें अलग-अलग अपनी राय का कारण लिखना पड़ेगा।" पहिले असेसर से कहा गया तो वह मुँह से बिना एक अक्षर निकाले खड़ा होकर कांपने लगा। दूसरा भी चुपचाप खड़ा रहा। जजने पुलिस को कमरे से बाहर जाने के लिए कह दिया। जजने फिर असेसरों के सामने अपनी बात दोहराई। दो असेसर फिर बाघ के सामने बछिया बन कर चुप खड़े रहे। जजने तीसरे असेसरसे पूछा, तो उसका चेहरा सुर्ख हो आया, वह अपने साथियोंके बर्तावसे बहुत क्षुब्ध था। उसने खड़े होकर साफ-साफ कहा, "इल्जाम सिद्ध नहीं हुआ, मेरी राय में मुल्जिम निरपराध है। अदालत को छोड़ देना चाहिए।"

जजने और सवाल नहीं किये। दूसरे असेसरोंको भी कुछ हिम्मत हुई। उनमें से एक ने कहा, "साहब हम दो आगो के बीच में हैं, एक तरफ नर्क की आग है, दूसरी तरफ पुलिस की। अगर हम निरपराध मुल्जिमों के खिलाफ कहते हैं, तो मरने के बाद नर्क की यातना सहनी होगी और यदि पुलिस के खिलाफ जाने का साहस करते हैं, तो हमारी पीठपर पुलिस का डंडा होगा। हम पुलिस के डंडे ही को सहना पसन्द करते हैं।"

दूसरे असेसर ने भी इसी बात की पुष्टि की। जजने उस दिन फैसला नही दिया। सरकारी वकील समझता था कि मुकदमा कमजोर है। उसने जजका ध्यान खींचते हुए कहा, "चाहे अपराध न भी प्रमाणित हुआ हो, किन्तु पृथ्वीसिंह रिहा होनेके काबिल नही है।"

जज तीन दिन तक पशोपेशमें रहा। बराबर उसपर दबाव डाला जाता रहा। आखिर मालिकोंकी मर्जीके सामने उसे झुकना पड़ा। जजने पृथ्वीसिंहको १० साल और काहनसिंह को १५ माह की सजा दी। जनता के पास इसकी कोई खबर नहीं पहुंचने पायी। किस की मजाल थी कि अखबारों में इसका हाल छापता? यह १९१४ का भारत था।

क़ैदी जीवन का पहला अनुभव

पृथ्वीसिंहने पहले ही देख लिया था कि कैदियोंको कैसे २०–२० सेर गेहूं पीसना पड़ता है और न पीस सकने पर उनपर मार पड़ती है। उनके हाथ नरम थे। उन्होंने दरवाजे की छड़ों में रगड़-रगड़ कर २० दिन में अपने हाथों को खूब कड़ा कर लिया। सजा सुनकर जब वह दोपहर को लौटे तो देखा कि २० सेर अनाज सेलके बाहर उनकी प्रतीक्षा कर रहा है, जिसके साथ जेलके कपड़े भी हैं—पुराने बिना धुले कपड़े, जिन्हें आज ही सबेरे छूटे कैदी ने अपने बदन से उतारा था। कपड़ोंमें जूयें भरी हुई थीं। जब पृथ्वीसिंह ने कुछ कहा, तो जवाब मिला, "बाबू नखरा छोड़ो।" जूयें वाले कपड़े पहनने के लिए वे तैयार नहीं थे। उन्होंने लँगोट को उठा लिया। उसमें से जितने जूयें निकाल सके, निकाले और धोकर पहिन लिया। बाकी कपड़े वैसे ही पड़े रहे। फिर चक्कीपर पिल पड़े और समय से पहिले ही पीसकर रख दिया। लेकिन वह बुरी तरह थक गये थे। जहां तक चक्की पीसनेका काम था, पृथ्वीसिंह उसे पूरा करते रहे। सुपरिन्टेण्डेण्टको

यह पसन्द नहीं आया। सरकार का दुश्मन इस तरह बचकर निकलता जाये, यह उसे क्यों पसन्द आने लगा! पृथ्वीसिंह ने एक दिन देखा कि खड़े होकर पीसी जाने वाली चक्कीकी जगह बैठकर पीसने की चक्की आ गयी है। दूसरे दिन जब सुपरिन्टेन्डेन्ट से उन्होंने कहा तो उसने उत्तर दिया, "मुश्किल है? यही मैं चाहता हूं।"

पृथ्वीसिंहने कहा—"अच्छी बात, तो तुम कभी अब इसकी शिकायत न सुनोगे!"

अमेरिकामें पृथ्वीसिंहको जब देश-प्रेम और आजादीका खयाल आया, तब वह गदर पार्टीमें शामिल हुए। उनके दिलमें विदेशी शासनके प्रति घृणा थी, लेकिन सरकारी अफसरों के प्रति नहीं। १९१४-२२ से ८ साल के बन्दी जीवन में उनके साथ जो पशुवत् बर्ताव किया गया, उसने उन्हें सारी नौकरशाही-व्यवस्था का घोर शत्रु बना दिया।

पृथ्वीसिंहको फांसीवाले कैदियों के साथ एक ही सेल-पाँती में रक्खा गया। वहां किसी दूसरे कैदी को जाने की इजाज़त नहीं थी। वह सिर्फ वार्डर और भंगीके चेहरों को देख पाते थे। नहाना-धोना छोड़कर सेल की कोठरी से बाहर नहीं निकाला जाता था। खाना-पानी सीखचों के भीतर से दिया जाता था।

क्रांति का गर्भ-स्राव

जिस वक्त पृथ्वीसिंह अम्बाला जेल के भीतर बैठे-बैठे चक्की पीस रहे थे, उस वक्त उनके साथी बाहर चुप नहीं बैठे थे। पहली टोली के बाद और बहुत से हिन्दुस्तानी बहुत से रास्तों से हिन्दुस्तान लौटे थे और अपने काममें लग गये थे। विदेश से लौटे हुए सभी क्रांतिकारी गाँवों के किसान थे। उनमें से कोई ऐसा न था, जिसके गाँव या दूर-नजदीक के सम्बन्ध का कोई आदमी सरकारी सेना में न हो। इस तरह हिन्दुस्तानी फौज के साथ सम्बन्ध जोड़ना आसान था। सैनिकों के सम्पर्क में आने पर उन्हें मालूम हुआ कि वह क्राँतिकारियोंके साथ हाथ मिलाने को तैयार हैं। महायुद्ध उग्र रूप धारे हुए था। सिपाही बराबर हिन्दुस्तान की सीमा पार कर किसी अज्ञात दिशा की ओर भेजे जा रहे थे। देश-भक्ति का भाव उनमें भरा नहीं गया था और वह विदेशी सरकार को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। जब उनसे कहा गया कि मरना ही है

तो क्रांतिके झंडे ही के नीचे क्यों न मरो, विदेशी झंडे के नीचे पराए देश में मरने से क्या फायदा, तो उनपर बड़ा असर पड़ा। बहुत से सिपाही क्रान्तिकारियों के साथ सहमत हो चले। १९१४ में भारत में अंग्रेज सिपाहियों की संख्या १०,००० से ज़्यादा नहीं थी और यह संख्या हिन्दुस्तानी फ़ौज, मध्यम-वर्ग और किसानों के सामने बहुत ज्यादा न थी। उस समय कारख़ानों के मजदूरों की संख्या कम थी और उनमें राजनीतिक चेतना भी न थी। क्रान्तिकारियों को संगठित मज़दूर-वर्ग का महत्व मालूम नहीं था, इसलिए उन्होंने क्रान्ति की सफलता के लिए मजदूरों के संगठन की ओर ध्यान नहीं दिया। जिन क्रान्तिकारियोंने हिन्दुस्तानी फ़ौज को अपनी तरफ़ खींचने में सफलता पायी थी, उसमें कर्तारसिंह और पिंगले की चतुराई और बहादुरी अद्वितीय थी। उस वक्त भी सिपाहियों की बैरकोंमें बाहरी आदमियों का जाना आसान कार्य नहीं था, लेकिन कर्तारसिंह और पिंगले सिपाहियों में मिल जाने में बड़े सिद्ध-हस्त थे। उन्होंने बहुत सी छावनियों में मिलकर समझाया। सिपाहियों की भारी संख्या साथ देने के लिए तैयार थी। विद्रोह शुरू करनेका दिन भी निश्चित हो चुका था, लेकिन अंग्रेज सरकार भी सोयी नहीं थी। वह यह भी जानती थी कि १०,००० अंग्रेज सिपाहियों का किसी ऐसे तूफ़ान से मुक़ाबला करना आसान काम नहीं है। सरकार ने इसके लिए ख़ुफ़िया-विभाग के विश्वास पात्र नौकरों पर भरोसा किया। ख़ुफ़िया-विभाग जानता था कि क्राँति करने के उद्देश्य से सैकड़ों आदमी विदेशों से आये हैं। लेकिन उनका पता लगाना आसान काम नहीं था। उन्होंने भेद जानने के लिए अपने बहुत से गोइन्दे छोड़े, मगर सफलता नहीं मिली। अन्त में वह क्रान्तिकारियों में से एक को ख़रीदने में सफल हुए। कृपालसिंह अमेरिका में रह चुका था। वह क्रान्तिकारी आन्दोलन में काम करने वाले कर्मियों के दोषोंको जानता था। ख़ुफ़िया विभाग ने उसे अपना बनाया। पहले के सम्बन्ध के कारण वह बड़ी जल्दी ही क्रान्तिकारी नेताओं का विश्वास-पात्र बन गया। क्राँति आरम्भ करने की सारी योजना बन गई और संदेशवाहक भिन्न भिन्न केन्द्रों के लिए छूटने वाले थे कि कृपालसिंह को इसका पता लग गया। वह तुरन्त अपने मालिकों के पास दौड़ गया। सरकार को २४ घंटे पहले ख़बर लग गयी

और उसके लिए इतना समय काफी था। सरकारी सारी मशीन फौरन चालू हो गयी। जितने भी कर्मठ क्रांतिकारी थे, वे सब पकड़ जेल में डाल दिये गये। क्रान्ति की लहर उठने से पहले ही दबा दी गयी। कितने ही सिपाही तैयारी करते पकड़े गये और उन्हें गोली का शिकार होना पड़ा लेकिन किसी ने उन्हें कभी याद नहीं किया और न उनके लिए कभी आंसू की एक बूंद ही गिरायी।

सुपरिन्टेण्डेन्ट-पुलिस को जैसे ही ख़बर मिली, वह बहुत तड़के ही पृथ्वीसिंह की सेल में पहुंचा। उसने कहा, 'पृथ्वीसिंह, अब तुम्हारे लिए कोई आशा नहीं। जिन साथियों पर तुम आशा बांधे थे उन सबको हम हथिया चुके। अगर तुम अपनी जान बचाना चाहते हो, अब भी समय है।'

लेकिन पृथ्वीसिंह ऐसे कच्चे आदमी थोड़े ही थे। सुपरिन्टेण्डेन्ट कितने ही दिनों तक पीछे पड़ा रहा। कभी कहता, "देखो, हम तुम्हारे ही फ़ायदे के लिए कहते हैं। हम एक नौजवान की जिन्दगी बरबाद नहीं करना चाहते। आज रात सोचो और किसी निश्चय पर पहुंचना और कल सवेरे हम फिर आएंगे। दूसरे दिन फिर वह पहुंचा और कहने लगा, "तुम एक बहुत बड़े साहसी नौजवान हो। तुम राजपूत हो, तुम्हारे ख़ानदान में सैनिक भाव चला आया है। हम सेना में तुमको एक अच्छा दर्जा देने का वचन देते हैं। तुम क्यों नहीं तैयार होते!"

पृथ्वीसिंह ने बड़ी शान्ति के साथ कहा, "मैं तैयार हूं, युद्ध-क्षेत्र में अपनी राजपूती बहादुरी दिखलाने के लिए बहुत उत्सुक हूं। मैं एक तेज निशानेबाज़ हूं और उसमें अपनी दक्षता दिखला सकता हूं। मैं तैयार हूं, आप मुझे मोर्चे पर भेज दीजिए।"

अफ़सर बहुत चिड़चिड़ा गया। उसने जाते हुए कहा, "अच्छा, तो तुम इसका फल ज़िन्दगी भर भोगोगे।"

लाहौर षड्यंत्र जेल में

लाहौर में पुलिस को जिस षड्यंत्र का पता चला था, उसमें ८५ आदमियों का नाम था, लेकिन गिरफ्तार सिर्फ ६५ हो सके थे। इन ६५ में से ९ सरकारी गवाह बन गये थे और उन्होंने अमेरिका में पृथ्वीसिंह क्या-क्या करते थे, यह सब बतला दिया था। बंगाल की सी. आई. डी. के

सुपरिन्टेन्डेन्ट और भारत सरकार के भेदिया-विभाग के सर्वोच्च अफ़सर सारी बातों के लिए पृथ्वीसिंह के पास पहुंचे। जेलर ने दोनों अफ़सरों से परिचय कराया! पृथ्वीसिंह को अभी यह पता नहीं था कि गिरफ्तारियों की इतनी अधिक संख्या है और इतने आदमियों ने पुलिस को सारा भेद बतला दिया। अफ़सर बहुत मीठी मीठी बातें कर रहे थे। उन्होंने तरह तरह के प्रलोभन दिये। पृथ्वीसिंह को तल-विचल न देखकर उन्होंने कहा, "अच्छा, अगर तुम बेकसूर हो, तो अपनी सारी कहानी सुनाओ। क्यों अमेरिका गये और कैसे गये? तुम वहां क्या करते रहे और वहां तुम्हारे कौन कौन सहकारी थे?" इत्यादि इत्यादि। पृथ्वीसिंह को अभी यह न मालूम था कि सरकारी गवाह उनके खिलाफ अपना बयान दे चुके हैं। उन्होंने अपनी कहानी लिखानी शुरू की। सी. आई. डी. अफसर २ घंटा नोट लेते रहे। अंत में जाते वक्त उन्होंने कहा, "तुमने अच्छी कुत्ते-बिल्ली की कहानी सुनायी। हम तुम्हारे बारे में सब कुछ जानते हैं। अब अपने बारे में तुम खुद फैसला करो।" दूसरे दिन वह फिर पहुंचे। उन्होंने सवालों की झड़ी लगादी। दोनों ही सिद्धहस्त अफ़सर थे और हजारों क्रांन्तिकारियों का उन्हें तजर्बा था। पृथ्वीसिंह ने सोचा, सवालों के जवाब देने में शायद वह अपने मतलब की कोई बात निकाल लें। पृथ्वीसिंह ने एक "नहीं" को अपनी ढाल बनाया। उनका जवाब होता—"मैं नहीं जानता, महाशय, मुझे नहीं याद है महाशय। मैंने कभी नहीं देखा महाशय।" अफ़सर चुपचाप चले गये। पृथ्वीसिंह ने संतोष की साँस ली।

२० सेर आटा पीस डालना उस खराब चक्की में भी मुश्किल नहीं था। जेल की दूसरी यातनायें भी सह्य थीं, लेकिन पृथ्वीसिंह उन काइयाँ अफसरों के सवालों को सुनने के लिए तैयार नहीं थे। वह मना रहे थे कि वह फिर न आयें लेकिन देखा दूसरे दिन सवेरे उसी समय फिर दोनों हाजिर थे। उन्होंने कहा, हम यह तुम्हें आखिरी मौका देने आये हैं। कहो जो कुछ कहना हो। अगर तुम हमारी बात मानोगे, तो हम तुम्हें अभी छुड़वा देंगे, नहीं तो जिन्दगी भर चक्की पीसनी होगी। हो सकता है, फांसी के तख्तेपर झूलना पड़े।

पृथ्वीसिंह पहलेसे ही जवाब के लिए तैयार थे। उन्होंने कहा, "बहुत अच्छा महाशय, लेकिन मैं भाग्य में विश्वास करता हूं। जो भाग्य में लिखा

है, उसे कोई नहीं मिटा सकता। जिन्दगी भर चक्की चलाना बदा हो, कोई बात नहीं। अच्छी बात है, अगर किस्मत में फांसी बदी हो, तो उसके लिए भी मेरे पास काफी हिम्मत है। आपकी मेहरबानी के लिए मैं बहुत कृतज्ञ हूं! अब मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दें।" अफसरों ने अब उनका पिण्ड छोड़ दिया।

लाहौर जेल में

जिस वक्त पृथ्वीसिंह अम्बाला जेल में अग्नि परीक्षा दे रहे थे, उसी समय लाहौर में एक भीषण नाटक की तैयारी हो रही थी। भिन्न भिन्न जेलों में बन्द क्रांतिकारी लाहौर लाये गये। १९१५ के मार्च का महीना था। पृथ्वीसिंह भी अम्बाला से लाहौर पहुंचाये गये। जिस वक्त वह ट्रेन से लाये जा रहे थे, संयोग से उसी ट्रेन से उनके पिता उन्हीं के मुकदमें की अपील के लिए लाहौर जा रहे थे। ६० ही दिन पहले चौधरी शादीराम के सिरका एक भी बाल सफेद नहीं था, यद्यपि उनकी उम्र ५० से ऊपर थी। लेकिन अब पृथ्वीसिंह ने उन्हें एक दूसरी शक्ल में देखा। उनके सारे बाल सफेद हो गये थे और कमर झुक गयी थी। यद्यपि अपने २३ साल के पहलौते पुत्र के पैरों में उन्होंने भारी बेड़ियाँ देखीं, लेकिन उन्होंने अपने को संभाला। उन्होंने राष्ट्रीयता की बातें नहीं सुनी थीं और न शिक्षा पाने ही का अवसर पाया था, लेकिन उन्हें अपनी राजपूती का अभिमान था। पृथ्वीसिंह को इससे बहुत संतोष था।

लाहौर सेन्ट्रल जेल के १४ नम्बर वार्ड में उन्हें रक्खा गया। जेल वाले उनके बारे में ज्यादा नहीं जानते थे। इसलिए यहाँ उन्हें अमेरिका से लौटे हुए कितने ही दूसरे साथियों से मिलने का मौका मिला। दूसरे दिन जब वह अपने काम को पूरा करके हिसाब देने गये तो देखा कि बाबा सोहनसिंह (भकना) अपना बिस्तर लिए सेलों की तरफ से आ रहे हैं। पृथ्वीसिंह ने समझ लिया कि महायज्ञ की समिधायें इकट्ठा की जा रही हैं। बाबा सोहनसिंह को जहाज पर ही पकड़ लिया गया था। पृथ्वीसिंह पर उनका बहुत स्नेह था। उन्हें दुःख हुआ जब सुना कि पृथ्वीसिंह को हर रोज २०सेर आटा पीसना पड़ता है। कितनी ही बार वह छिपकर पृथ्वीसिंह के पास पहुंचते और उनकी हिम्मत को दूनी करते। चन्द ही दिनों में सारी सेलें भर गयीं। नम्बर १४ वार्ड में सबसे खतरनाक कैदियों को ही रक्खा

जाता था। लोग समझ रहे थे कि कैसा नाटक खेला जाने वाला है। लेकिन 'हम आज़ादी के लिए जान दे रहे हैं, इससे बढ़कर ज़िन्दगी की कीमत नहीं मिल सकती' यह सोचकर सभी बड़े प्रसन्न थे। पृथ्वीसिंह की तरह ही पंडित जगतराम को सज़ा हो चुकी थी, वह भी लाहौर लाये गये। जल्दी ही इन दोनों के कैदीवाले कपड़े ले लिये गये, आटा पीसना बन्द हो गया। अब वह प्रथम लाहौर षड़यंत्र केस के अभियुक्त थे।

पृथ्वीसिंह के वकील लाला दुनीचन्द (अम्बाला) ने चौधरी शादी राम को बतला दिया कि पृथ्वीसिंह को लाहौर षड़यंत्र केस में शामिल कर लिया गया है। वह फिर एक बार अपने पुत्र से मिलने लाहौर जेल में गये। पृथ्वीसिंह को पिता के धैर्य को देखकर संतोष हुआ। उन्होंने समझा था, "मेरे ऊपर जैसे संगीन जुर्म लगाये गये हैं, उनसे अब आप यही समझिए कि आपका बेटा मर चुका। मैं आपकी कोई सेवा नहीं कर पाया, इसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे और अब आपके यहां रहने में कोई फायदा नहीं, आप बरमा चले जाइए।"

अदालत और अभियुक्त

१८५७ के बाद वह अपने ढंग का पहला मुकदमा था, जिसमें इतने अधिक आदमी ग़दर के जुर्म में फँसे थे। जेल की एक बड़ी बैरक को एक बहुत ही बड़ा हाल बना दिया गया था, एक ओर ऊंचा चौतरा या प्लेट-फार्म तैयार किया गया था, जिस पर विशेष अदालत (स्पेशल ट्रिब्यूनल) के तीनों जजों के बैठने की जगह थी।' दाहिनी ओर सरकारी अफ़सरों के बैठने की जगह थी और बायीं ओर कैदियों का कटघरा था। तीनों जजोंमें दो अंग्रेज और एक हिन्दुस्तानी (शिवनारायण शर्मा) थे। तीनोंकी सहायता के लिए सी. आई. डी. के बड़े-बड़े होशियार अफसर और सरकारी वकील तथा फौजदारी के प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर पेटनम् थे। ६५ हिन्दुस्तानी अभियुक्तों के मुकदमें के लिए ७ वकील रखे गये थे, जिनमें एकको छोड़कर बाकी सभी ने अभी काला चोग़ा पहिना था। कुछ तो शायद यहीं पहली बार अदालत के सामने आये थे। मार्च में एक दिन सवेरे सभी अभियुक्तों को उनकी सेलोंसे निकालकर हाथों में हथकड़ियाँ लगा दी गयीं और फिर सिपाही उन्हें अदालत की बैरक की ओर ले चले। सभीबड़े प्रसन्न थे, क्योंकि सब एक ही साथ आखिरी घड़ी मौत का मुक़ाबला

करेंगे। उनके ख़िलाफ़ अभियोग था कि उन्होंने इंग्लैंड के राजा और भारत के सम्राट के ख़िलाफ युद्ध करने के लिए षड्यंत्र किया। अभियोग ग़लत था, क्योंकि उन्होंने छिपकर कोई षड्यन्त्र नहीं किया; उन्होंने डंकेकी चोट से घोषित किया था कि हम ऐसे शासन को कभी नहीं बर्दाश्त कर सकते जिसमें हमारे देशवासियों के साथ "कोमागातामारू" वाला बर्ताव किया जा सके।

६५ अभियुक्तों में मुश्किल से १ दर्जन ऐसे थे जो अंग्रेजी काफी समझ सकते थे। सिर्फ़ वे ही कचहरी की कार्रवाई को समझ सकते थे। बाबा सोहन सिंह, पं० जगतराम, कर्तारसिंह, पिंगले, केदारनाथ सहगल, भाई परमानन्द और थोड़े से और लोग ही अदालत में क्या बातचीत हो रही है और उनके भाग्य के साथ क्या खेल खेला जा रहा है, समझ सकते थे। सभी की उसमें कोई दिलचस्पी न थी। अभियुक्त इतने उदासीन थे कि ट्रिब्यूनल के प्रेसिडेण्ट को घंटी बजाकर उनके ध्यान को आकर्षित करना पड़ता। कितनी ही बार घंटी बजाने पर भी वे ध्यान न देते थे। फिर जज गुस्सा हो उठते, जिस पर सभी ठहाका लगाने लगते। नौ सरकारी गवाह उनके ख़िलाफ़ गवाही देने की लिए खड़े थे, जिसमें से नौवां दो महीने तक उनके साथ रहने के बाद सरकारी गवाह बना था। इन ६५ आदमियों में कई ऐसे थे जिनका क्रान्तिकारी कामों से कोई सम्बन्ध नहीं रहा था, मगर जोश में आकर बह गये थे। कितने ऐसे थे जिनकी सहानुभूति भर रही थी और इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं किया था। सारे कटघरे में सिर्फ ३ ही ऐसे थे जोकि गदर पार्टी के आजन्म सदस्य थे और जिनका सारा समय उसी के लिए अर्पित था। १५ सदस्य पुलिस के हाथ नहीं आये थे। वे बहुत जवाबदेह मेम्बर थे।

१९१४ में अभी असहयोग की हवा नहीं बही थी, इसलिए अदालत की सारी कार्रवाई के पूर्णतया बायकाटका सवाल नहीं था। वे मुकदमें की कार्रवाई में जो कुछ भी भाग लेते थे वह सिर्फ इसी ख़्याल से कि अंग्रेज सरकार उनके अपराध को सिद्ध नहीं कर सकती। मौत की उनको परवाह नहीं थी, उनको अगर परवाह थी तो यही कि हिन्दुस्तान की शान रहे। उन्होंने सोचा कि मरना तो है ही, फिर क्रान्ति के उद्देश्य और सन्देश को अपने सीने में छिपाये क्यों मरा जाए। अन्त में यह तै हुआ कि पार्टी के ६ सदस्य खुले तौर से सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लें। पृथ्वीसिंह,

यद्यपि उमर में बहुत छोटे (२३ साल के) थे, किन्तु उन्हें गर्व हुआ कि सात नामों में उनका नाम भी है। उन्हें क्या बयान देना चाहिए, यह भी तै कर लिया गया। "कोमागातामारू" के हिन्दुस्तानियों पर जो ज़ुल्म ढाये गये, जिससे हिन्दुस्तानियों के दिल में आग लग गयी, किस तरह हिन्दुस्तानी मज़दूरों को क्रांतिकारी संगठन के लिए मजबूर होना पड़ा और किस तरह खुलमखुल्ला विद्रोह का झंडा उठाया गया आदि बातें अपने बयान में उन्हें देनी थीं। वह जानते थे कि उनका बयान जेल की बैरक के बाहर नहीं जाने दिया जाएगा। मगर प्रभुताशाली ब्रिटिश सरकार को अपनी बातें वह सुना देना चाहते थे। पत्रों में वही खबर जाने पाती थी, जिसे सरकारी वकील पास करता था। अभियुक्तों के वकीलों को भी वहाँ की कोई बात बाहर कहने की इजाज़त नहीं थी। जनता का कोई आदमी अदालत में नहीं आ सकता था। अभियुक्तों के सगे संबंधियों को भी भीतर आने की इजाजत नहीं दी गई। अभियुक्तों ने लिखकर बयान अदालत में पेश किये। उनमें से एक शब्द भी पत्रों तक नहीं पहुँच सका। किस वीरता के साथ वे अंग्रेजी अदालत का सामना कर रहे हैं, इसकी सराहना करने वाला कोई नहीं था। पृथ्वीसिंह ने यह जानना चाहा कि सात शहीदों में उन्हें क्यों चुना गया, तो उन्हें इसके सिवा और कोई कारण नहीं मालूम हुआ कि वह एक निर्भय तरुण हैं। उन्होंने इसे अपना भारी सम्मान समझा।

सभी अभियुक्त एक अजब तरह का आनन्द अनुभव कर रहे थे, उनके दिलों में भयका नाम नहीं था। पृथ्वीसिंह बहुत खुश ही नहीं थे, बल्कि कोई भी मौका मिलने पर अपने विरोधियों को चिढ़ाये बिना नहीं रहते थे। जब वह अदालत के सामने अपना बयान दे रहे थे तो एक जगह उन्होंने कहा, "लाहौर की सड़क पर पंडित जगतराम मिल गये और हम दोनों खूब हँसे," यह कहते वक्त वह खुद हँस रहे थे और पंडित जगतराम भी उसमें शामिल थे। जज ऐसी ढिठाई को देख झुंझलाकर बोला, "तुम क्यों हँस रहे हो?"

"अमेरिका में हमारे साथी हमें समझाते थे कि तुम्हें हिंदुस्तानी सी. आई. डी. से हमेशा सावधान रहना होगा, वह बहुत काइयाँ होती है और एक नजर देखकर ही तुम्हारी सारी बातों को जान सकती है।" फिर जगत राम की ओर मुंह करते कहा, "पंडितजी, देखो—यह लोग कितने होशियार हैं। बेचारे सीधेसादे किसानों को पकड़कर बंदकर दिया और हम लोग मौज से काम करते रहे।"

पृथ्वीसिंहकी मज़ाकिया बातों का आनन्द उनके सभी साथी लेते और किसी-किसी वक्त ठठाकर हँसते हुए ताली पीटते। जज बौखला उठता और शोर बन्द करने के लिये देर तक घण्टी बजाता रहता।

पृथ्वीसिंह और जगतराम जैसे आदमी ग़दर आश्रममें बराबर काम करते रहे थे और हिन्दुस्तान लौटने पर वे और तत्परता से अपने कामों में लग गये थे। भारी खर्च पर रक्खी गयी जासूसी पुलिसको इनकी हवा तक न लग सकी, अम्बालामें पृथ्वीसिंह और पेशावरमें जगतराम के साथ विश्वास-घात करनेवाले दूसरे लोग थे। पुलिस इस तरह असफल हो बड़ोंके सामने मुंह कैसे दिखलाती, इसलिए कितने ही सीधे-सादे लोगोंको पकड़ कर उन्हें ही खतरनाक क्रांतिकारी बना दिया। स्वयं पृथ्वीसिंह भी बादके अपने जीवनमें १६ साल तक फरार रहकर काम करते रहे, मगर सी. आई. डी. खाली बगलें झांकती रही।

एक दिन खुफियाके इन्सपेक्टर जनरल पृथ्वीसिंह के पास आकर बोले, "खूब, एकही रातमें तुम क्रांतिकारी कैसे बन गये? अम्बालामें तो सभी बातोंसे तुम अपनेको अंजान बताते थे।"

"जरूर बतलाता, क्योंकि वहाँ तुम मुझसे भेद लेना चाहते थे, डरा-धमका और प्रलोभन देकर। वहाँ कुछ भी कहना कायरता और विश्वास-घात होता, यहाँ हम भय या प्रलोभन से कुछ नहीं कह रहे हैं। हम खुल-कर घोषित करते हैं जिसमें कि हमारे देश-भाई समझें कि हमें अपने देश-की स्वतंत्रता प्रिय थी और हमने अपनी जान देकर उसे आज़ाद करने की कोशिश की।"

यद्यपि अभियुक्तोंमें विशनसिंह पहलवान जैसे बड़े तगड़े आदमी थे, जिनके डील-डौल और बलको देखकर विरोधी काँप उठते। उन पर हत्या और डकैती का इलज़ाम था, लेकिन वे इतने खतरनाक नहीं समझे जाते थे जितने कि पृथ्वीसिंह। इतने दिनों जेल में रहते हुए उन्होने कोई कसूर नहीं किया और न अपना पूरा काम करनेसे जी चुराया, तो भी उन्हें सबसे ज्यादा खतरनाक क़ैदी समझा जाता था। उनके लिए पहले हीसे सेल चुन रक्खी गयी थी और हर रात उनकी सेल बदल दी जाती थी। हर रोज लोहेकी छड़ोंकी ठोंक-ठोंककर परीक्षा होती। पहिचानके लिए सफ़ेद रंगसे भरी एक हंडिया सेलके सामने रक्खी रहती थी। इतना भी काफ़ी नहीं समझा जाता था और हर दो-दो घंटे पर सिपाही आकर उन्हें खड़ा

करता। फिर ज़ोरसे चिल्लाकर खबर देता, "ऑल इज वेल" (सब ठीक है) जो सुननेमें "ऑल इज हेल्" (सब नरक है) मालूम होता।

गिरफ्तारीके वक्त पृथ्वीसिंहका वजन १६० पौण्ड था, लेकिन पिछली कड़ी मेहनत और यातनाओंसे वह १३० पौण्ड रह गया। लाहौरमें साथियों के साथ हो जाने पर उनका वज़न तेज़ीसे बढ़ने लगा और एक महीनेमें वह १४५ पौण्ड हो गये। फाँसीकी सज़ा सुनते वह १५० पौण्ड तक पहुंच गये।

कितनेही महीनों तक साखी-गवाही और जिरह-बहस चलती रही। ६५-६५ आदमियोंका मुक़दमा देखना जजोंके लिए खेल नहीं था। अब अपना फ़ैसला लिखनेके लिए उन्होंने किसी ठंडे पहाड़का रास्ता लिया और अभियुक्त ज़िन्दगी और मौतके बीचमें लटकते दो महीने तक अलग-अलग सेलोंमें बन्द कर दिये गये। ऊपरसे जुलाई और अगस्तकी लाहौर की गर्मी थी, सेलोंमें हवाका पता तक न था। अदालतके लिये यह छुट्टीके दिन हो सकते थे, मगर अभियुक्तोंके लिए नरक-यातनाके दिन थे। फ़ैसला फाँसी का हो सकता था या आजन्म कारावास का। फाँसीकी आशा रखनेवाले सबसे ज़्यादा खुश थे। पृथ्वीसिंह को भी यह समझनेका कोई कारण नहीं मालूम होता था कि उनका नाम फांसी की सूची से अलग होगा। वह उसी नावमें बैठना चाहते थे, खासकर पंडित जगतराम और कर्तारसिंह से वह अपने भाग्यको अलग नहीं रखना चाहते थे। कर्तार-सिंहकी भी वही उम्र थी और पृथ्वीसिंहके लिए वह एक आदर्श पुरुष थे, वह उन्हें पूर्ण पुरुष मालूम होते थे। हिम्मत तो उनमें कूट-कूट कर भरी थी। सातों आदमी शपथपूर्वक अपना बयान दे रहे थे, कर्तारसिंह मौतसे दबनेवाले नहीं थे। क्रान्तिकारियोंको एक बार पैसेकी कमी थी, पार्टीकी नीतिके विरुद्ध कुछ को इसके लिये डकैती करनी पड़ी जिसमें एक खून हुआ। कर्तारसिंहने कहा कि उस डकैतीका नेता मैं था और उस खून की जिम्मेदारी सिर्फ़ मेरे ऊपर है। उन्होंने यह भी कहा कि मैंने अपने एक निरपराध देश-भाईकी हत्या की और उसके दंडसे बचना नहीं चाहता। जज कर्तारसिंहके चेहरे, हिम्मत और सच्चाईसे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकते थे। उन्होंने कहा कि कर्तारसिंह ऐसा बयान न दें, मगर कर्तारसिंह तुले हुये थे; उन्होंने फिर उसेही दोहराया। जजोंने बड़ी हिचकिचाहटके साथ उनके बयानको लिखा।

१५ सितम्बर (१९१५) को पैंसठों अभियुक्तों को सेलोंसे निकाला गया और अदालतने फैसला सुनाया। पृथ्वीसिंह और उनके २४ साथियोंको फाँसीकी सजा सुनायी; २५ को आजन्म काला पानी, बाकी को भिन्न-भिन्न अवधिकी सज़ा दी गयी, ५ को छोड़ दिया गया; मगर जेलके दरवाजे तक पहुंचते-पहुंचते दूसरे अपराधमें गिरफ़्तार कर लिया गया। फाँसीकी सजा पाने वाले सबसे ज्यादा खुश थे। पंडित जगतरामने इस ख़ुशी को ज़ाहिर करते एक कविता लिखी।

१९१५ का पंजाब ओडायर शाहीके नीचे पिसा पंजाब था। किसीकी हिम्मत नहीं थी कि इस मज़ाके विरुद्ध कुछ लिखता या बोलता। पीछे पता लगा कि सरदार सुन्दरसिंह मजीठियाने सिक्खोंकी सभा की और उसमें सिक्खोंने बड़ी ज़ोरदार अपील की कि आप लोग सरकारसे प्रार्थना करें कि इन दुष्टोंको फाँसी चढ़ानेमें जरा भी देर न की जाये,क्योंकि इन्होंने सिक्खोंके नाम को बट्टा लगाया। इस तरह की खबरें (अफ़वाहें) अकसर उठा करती थीं, लेकिन उसमें कितना सच है, कितना झूठ है, यह कौन कह सकता था। जिन २५ आदमियोंको फाँसीकी सजा हुई थी,उनमें ३ ही ऐसे थे जो एक खूनमें शामिल थे, १५ तो सीधे जहाज़ पर ही पकड़ लिये गये थे और सरकारने उन्हें जेलोंमें बन्द रक्खा था। उनका अपराध यही था कि अमेरिकाके स्वतन्त्र वातावरणमें उन्होंने निश्चय किया था कि देशके कंधे से विदेशी जूए को हमें निकाल फेंकना है।

अध्याय ६

कालापानी

ट्रिब्यूनलके फैसलेकी अपील नहीं हो सकती थी। दूसरेही दिन सभी फाँसी पर चढ़ने वाले थे। आखिर देरका कोई कारण नहीं मालूम होता था। जेलकी खबरोंसे मालूम होता था कि एक-एक बार पाँच-पाँच आदमी तख्ते पर लटकाये जायेंगे। पृथ्वीसिंहके पासके पाँच साथी बड़ी गम्भीरता से बहस कर रहे थे कि देखें कि वे कौन पाँच भाग्यवान हैं जो पहले तख्ते पर पैर रखेंगे। सभी अपने पक्षमें कारण दे रहे थे। लेकिन मृत्युका नेता कौन बनेगा, इसका निश्चय उनके हाथोंमें नहीं था। सवेरे चार बजे हर सेलके दरवाजे पर पानीकी बाल्टी रक्खी गयी इसका अर्थ था, तैयार हो जाओ। सबने छड़ोंके भीतरसे हाथ डाला। छोटे बर्तनोंमें पानी लेके स्नान किया। फिर फर्शको धोया और आखिरी पूजा-प्रार्थनामें लग गये। पूजाके बाद वे सिपाहियोंके आनेका इन्तजार करने लगे। लेकिन वहाँ किसी का पता नहीं था। घंटे बीतते गये, लेकिन कोई खबर नहीं। कोई कहता, शायद सरकारने फाँसी देने का खयाल छोड़ दिया। अब वह पचीसों आदमियोंको लाहौरके किसी चौकपर ले जायेगी और लोगोंके सामने रस्सी से लटका देगी। शाम तक इसी तरह इन्तजार में बीता, कोई ख़बर नहीं मिली।

दूसरे दिन सवेरे जेलका अंग्रेज सुपरिन्टेण्डेण्ट फाँसी वालोंके पास आया। लोग समझ रहे थे कि वह फाँसीका समय बताने आया है; लेकिन लोगोंको आश्चर्य और क्षोभ हुआ, जब उसने कहा कि तुम वायसरायके पास क्षमा-प्रार्थना कर सकते हो। क्षमा-प्रार्थना, प्राणोंकी भीख! अपने क्रान्तिकारी जीवनकी संध्यामें शहीदोंका यह काम! पृथ्वीसिंह और उनके साथियोंने घृणा-पूर्वक इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। सुपरिन्टेण्डेण्ट बहुत तरहसे समझाने लगा, लेकिन कोई इसके लिए तैयार नहीं हुआ। जिनसे लड़ना, उन्हींसे क्षमा माँगना! सब तरह असफल हो उसने अभि-युक्तोंके वकीलों से क्षमा-प्रार्थना के लिए लिखने कहा। उन्होंने तरह तरह से समझाया और जीवन में दुबारा अवसर की बात कही। उधर

उड़ती खबर मिली कि बाहर से क्रान्तिकारी जेल पर हमला करके उन्हें छुड़ाने की बड़ी तैयारी कर रहे हैं। आखिर सब लोगों ने आखिरी अपील पर दस्तखत कर दिये। कर्तारसिंह ने किये या नहीं यह मालूम नहीं। अभियुक्तों को न एक दूसरे से सलाह लेने का मौका दिया गया, न खुद अपनी अपील आप लिखने का। पृथ्वीसिंह ने इस शर्त पर अपील भेजना कबूल किया कि मैं खुद उसे लिखूंगा और उसमें एक भी शब्द घटाना बढ़ाना नहीं होगा। अपील कुछ इस प्रकार की थी—

"मैंने जो कुछ भी किया, उसके परिणाम को खूब सोच समझकर ही वैसा किया। मैं यह भी समझता हूं कि मैंने जो कुछ भी किया, वह सभ्य समाज के खिलाफ कोई ऐसा अपराध न था, जिसके लिये मुझे फांसी दी जा रही है। मैंने अपने देश की आजादी से प्रेम किया और मैं उसे विदेशी गुलामी से मुक्त कराना चाहता था। अगर अपने देश से प्रेम करना ऐसा कसूर है जिसके लिए आदमी को फांसी पर चढ़ाया जाय, तो मेरी यही प्रार्थना है कि बिना देर किये तुरन्त उसकी आज्ञा दी जाय।"

पृथ्वीसिंह यह नहीं चाहते थे कि कोई दूसरा उनकी तरफ से अपने मन की अपील लिखे और फिर अंग्रेज सरकार दुनियां में घोषित करती फिरे कि हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारी फांसी से डरते हैं और क्षमा के लिये गिड़गिड़ाते हैं।

सुपरिन्टेण्डेण्ट ने जब अपील देखी तो वह पृथ्वीसिंह के पास आया—
"पृथ्वीसिंह यह तुम्हारी अपील है ? इसे तुम अपील कहते हो ?"
मुस्कराते हुये पृथ्वीसिंह ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया, "हां साहब, यदि आपको पसन्द नहीं है तो न भेजिये। अगर आप मेरे दस्तखत से भेजना चाहते हैं, तो उसमें एक शब्द को घटाना-बढ़ाना नहीं होगा।"

सुपरिन्टेण्डेण्ट बड़ा नर्म दिल आदमी था। एक संस्कृत नवयुवक को इस भोली उमर में फांसी पर भेजे जाते देखकर उसका हृदय विचलित हो गया। नहीं मालूम वह अपील भेजी गयी या नहीं।

आज कल करते हफ्ता बीत गया, लेकिन कोई खबर नहीं। उनके लिए दिन शताब्दियां बन रहे थे। मौत का डर पहिले ही दिल से निकल चुका था। अब तो दिन काटने की बेकरारी थी। आगे के लिए उन्हें सोचने के लिए भी जरूरत नहीं थी, क्योंकि उनका बही-खाता तो बन्द

हो चुका था। पढ़ने के लिए कोई वैसी पुस्तक भी नहीं थी। सभी आवा-गमन के मानने वाले थे, इसलिए समझते थे कि अब सोचना दूसरे जन्म में होगा, जब यहाँ फिर जन्म भूमि का उद्धार करने के लिये आयेंगे।

वह मरना चाहते थे, लेकिन मौत अभी रास्ते में है कहां, इसका पता नहीं था।

आखिर में २१ मई (१९१५) के दिन सुपरिन्टेण्डेण्ट उनके सेल के द्वार पर आकर खड़ा हुआ। उसके हाथ में एक कागज का टुकड़ा था। उसने एक-एक का नाम पुकारा, बारी-बारी से उन्हें सेल से बाहर निकाला गया, बेड़ियाँ काट दी गयीं और जेल के दूसरे वार्ड में ले जाया गया। पृथ्वीसिंह और उनके साथियों को सुपरिन्टेण्डेंट ने जीवित रहने का अधिकार पाने के लिये बधाई दी। उन्हें यह नहीं मालूम कि कौन पीछे छूट गये। नयी सेलों में अब वे जीने के लिये बन्द किये गये थे। इसलिये उनकी खुशी का ठिकाना न था। धीरे-धीरे उन्होंने जानने की कोशिश की कि कौन पीछे छूट गये। जब उन्हें मालूम हुआ कि अट्ठारह आदमी यहाँ लाये गये, तो सात आदमियों के पीछे छूट जाने से उनकी सारी खुशी गायब हो गयी। उनका दिल फटने लगा, जब एक-एक करके नाम मालूम हुआ :—(१) कर्तारसिंह सराभा (आयु बीस साल); (२) बी॰ जी॰ पिंगले; (३) जगत सिंह मुरसिंग; (४) हरनाम सिंह; (५) सरण सिंह (अमृतसर); (६) बख्शी सिंह और (७) पंडित काशीराम। कर्तारसिंह पृथ्वीसिंह के समवयस्क थे, ग़दर आश्रम में दोनों साथ रहे थे, साथ काम किया था। उनके दिल में कर्तार सिंह को शहादत का जाम पीते देख ईर्ष्या हुई और अपने लिए अफ़सोस! पिंगले एक सुन्दर महाराष्ट्री तरुण था। उसकी बुद्धि बहुत तीखी थी, लेकिन उसमें बनावट का नाम न था। कर्तार सिंह फांसी पर चढ़ेगा, यह सुनकर सारे जेल पर शोक छा गया। उसके साथी ही नहीं, जेल के साधा-रण कैदी तक उसकी ओर आकृष्ट हुए थे। यदि कर्तार सिंह के छुड़ाने की कोई भी सुगबुगाहट होती, तो जेल के साधारण कैदी तक उसमें शामिल हो जाते। पण्डित जगतराम ने उस वक्त एक कविता लिखी थी जिसकी कुछ पंक्तियाँ थीं—

"सन उन्नीस सौ बहत्तर माह मगहर दूसरी;
ग़दर की पलटन का दस्ता मुक्ति को जाता है आज;

है जगाया हिन्द को कर्तार तेरी मौत ने;
क़सम हर हिन्दी तेरे ही ख़ून की खाता है आज !"

सात शहीदों के ख़ून के साथ पहला नाटक ख़त्म हुआ।

अंडमान की राह में

कुछ दिनों बाद पृथ्वी सिंह और उनके कितने ही साथियों के पैरों में फिर भारी बेड़ी डाल चौदह नम्बर में भेज दिया गया। उनमें से दो-दो के एक-एक हाथ में हथकड़ी थी। सूर्यास्त के बाद उन्हें फ़ौजी लारी में बन्द किया गया और अंग्रेज सैनिकों के पहरे में मुगलपुरा स्टेशन पर एक अलग खड़े डिब्बे में डाल दिया गया। डिब्बा डाकगाड़ी से जोड़ दिया गया और वह एक अज्ञात दिशा की ओर चल पड़े। पूरे ६० घंटे उन्हें बैठे ही बिताने पड़े। पाखाना जाते वक्त भी हथकड़ियाँ वैसे ही पड़ी रहती थीं। लेकिन जो फाँसी और मौत से ज़रा भी विचलित नहीं हुये थे, वे हृदय अब भी वैसे ही निर्भय थे। स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी होती तो अठारहों जने कोई क्रान्तिकारी गीत गाने लगते। लोग उसे सुनने के लिए खड़े हो जाते। बन्दूक देखकर किसी को पास आने की हिम्मत नहीं होती, लेकिन वे एक दूसरे से इनके बारे में पूछते और तरह-तरह का क़यास दौड़ाते।

शाम को गाड़ी हावड़ा स्टेशन पर पहुँची। पुलिस के कड़े पहरे में घोड़ा गाड़ियों में बैठाकर उन्हें अलीपुर सेन्ट्रल जेल में पहुंचाया गया और अलग-अलग सेलों में बन्द कर दिया गया। शायद दूसरा दिन था, सुपरिन्टेन्डेण्ट आने वाला था। क़ैदी जमादार और सिपाही ने आकर उन्हें सिखलाया कि किस तरह सुपरिन्टेन्डेण्टके आते वक्त जमादार "सरकार, सलाम !" बोलेगा, फिर सब लोगों को दोनों हथेलियों को दिखाते कंधे से मिलाते हाथ को खड़ा रखना होगा, मुंह से जीभ निकालनी होगी। जेल के बड़े जमादार ने भी सभी बातें सिखायीं—पढ़ायीं।

"सरकार !" की आवाज़ सुनायी दी। क़ैदी ने पृथ्वीसिंह को खड़ाकर दिया। सिपाही ने आकर देखा कि पृथ्वी सिंह सीधे सादे खड़े हैं। उसने ग़ुस्से में आकर कहा, "ऐसे नहीं, ऐसे" और ढंग बतलाते हुये खड़ा हो गया। लेकिन फिर वही बात। बड़े जमादार ने देखा, वह बहुत ग़ुस्सा हुआ और बोला, "हूं, तुम नहीं जानता, ऐसा खड़ा है !" पृथ्वी सिंह ने हँसते

हुये कहा, "बहुत अच्छा।" अब जेलर के साथ सुपरिन्टेन्डेण्ट पहुंचा। पृथ्वी-सिंह सीधे तौर से खड़े थे और उनकी आँखें सुपरिन्टेन्डेण्ट के चेहरे पर गड़ी थीं। उसने भांप लिया और बिना कुछ कहे अपना रास्ता लिया। पीछे पृथ्वीसिंह को मालूम हुआ कि उनके सभी साथियों ने वैसा ही किया था। दूसरे दिन उन्हें बेंत मारने की धमकी दी गयी, लेकिन कोई वैसे अपमान जनक रूप में खड़ा होने के लिये तैयार नहीं था। जेल वाले उतावले हो रहे थे कि किसी तरह यह बला टले, लेकिन अंडमान ले जाने वाला "महाराजा" जहाज के आने में देर थी।

आखिर जहाज आया, आठरहों आदमियों को जहाज पर पहुंचाया गया। उन्हें कोठरियों या दर्बों में बन्द कर दिया गया, जिनके गोल-गोल छेदों से वे कलकत्ते को देख रहे थे। मन उदास था क्योंकि क्या आशा थी कि वे जीते जी फिर अपनी मातृभूमि को देख सकेंगे। अब वे भविष्य के बारे में सोचने लगे। फाँसी की अपेक्षा यह कहीं मुश्किल था। फाँसी की तो कुछ मिनटों की बात थी, लेकिन अब था २० साल अंडमान में रहना। कैसे यह साल कटेंगे ? जहाज में कुछ मामूली क़ैदी भी थे, जिसमें कुछ अंडमान देख चुके थे। उन्होंने वहाँ की भयंकर यातना की कहानी सुनायी। मालूम हुआ, अंडमान धरती पर नरक है। लेकिन पृथ्वीसिंह अठारह आदमी थे, सभी निर्भय, सभी बहादुर, सभी एक राय, सभी एक आदर्श वाले; इसलिए उन्हें अपने पर पूर्ण विश्वास था। यदि अंड-मान नरक है तो हम भी उस यातना को बर्दाश्त करने वाले नहीं हैं। चौथे दिन पोर्टब्लेयर और उसकी सुन्दर हरियाली आँखों के सामने आयी। जहाज किनारे लगा। अठारहों जने जेल के फाटक पर पहुंचे। फाटक के भीतर घुसते ही जेलर बारी ने ठठाकर हँसते हुए उनका स्वागत किया; फिर उसने जोर से कहा, "राज लेने वाला लोग राज मांगता, राज। राज नई कोलू डेगा।" पृथ्वीसिंह और उनके साथियों को ताज्जुब नहीं हुआ, क्योंकि वे पहिले ही बहुत सी बातें सुन चुके थे। आठरहों जनों ने भी अब जबरदस्त ठहाका लगाया। बारी का मुंह गुस्से से लाल हो गया। वह अंडमान का सुल्तान था। सारा द्वीप उससे थर-थर कांपता था। उसके सामने ये नवागन्तुक क़ैदी ऐसी शेख़ी दिखलायें। जेल में सात ब्लाक और सात सौ चालीस सेलकी कोठरियाँ थीं। अठारहों

आदमियों को दो-दो तीन-तीन की टोलियों में बांट दिया गया। पुराने कपड़ों को लेकर उनको नये कपड़े दिये गये। यह कष्ट की बात थी, क्योंकि वे नंगे पैर चलने के आदी न थे और आंगन की कंकड़ियां चुभती थीं। पृथ्वी सिंह को दो नम्बर के ब्लाक में रखा गया। जब वह वहां पहुंचे तो शाम के भोजन का वक्त था। १० के करीब कैदी दो पंक्तियों में बैठे थे। एक पांति में थे हिन्दू, दूसरी में थे मुसलमान और बरमी परोसने वाले बिजली की चाल से चल रहे थे। चावल, दो चपाती, भाजी और दाल फेंकते जाते थे। यदि आदमी सावधान न रहता तो खाना बर्तन में नहीं, जमीन में पड़ता, फिर चाहे वह जमीन से बटोर कर खाता, चाहे भूखा रहता।

पृथ्वीसिंह को खाना शुरू किये दो-चार ही मिनट हुए थे, कि खड़े होने का हुक्म हुआ। उन्हें जल्दी खाने की आदत नहीं थी। पंजाब में खाना अपनी सेल में मिलता था और वह इत्मीनान से धीरे-धीरे खाते थे। उन्हें भूखे उठना पड़ा। दो बर्तनों में से एक में पानी भर कर सेल में ले जाने का हुक्म हुआ और दूसरे को दरवाजे से बाहर रख देना पड़ा। कड़कती हुई आवाज में हुक्म हुआ, "जोड़ी-जोड़ी बैठ जाओ।" बोलने चालने की सख्त मनाही थी। राजनीतिक बन्दी दूसरे कैदियों के साथ बैठने के आदी न थे। फिर दूसरा हुक्म आया, "कपड़ा निकालो।"

कैदियों के पास दो ही कपड़े थे—एक अधबहियाँ कुर्ता और एक जाँघिया। कैदी वार्डर ने दोनों को खूब टटोल-टटोल कर देखा। फिर हुक्म हुआ, "कपड़ा उठाओ, बैठ जाओ।"

पृथ्वीसिंह की सेल कोठे पर थी। ज्यादा खतरनाक कैदियों को ऐसी सेलों में रक्खा जाता था, लेकिन पृथ्वीसिंह इससे खुश थे। छड़ों के भीतर से वे हरे पहाड़ों को देख सकते थे। नीले आसमान का कितना ही भाग और चमकते सितारे भी उनके सामने झिलमिलाते थे। सेल के भीतर एक कम्बल था, जिसे चाहे ओढ़ो चाहे बिछाओ। पेशाब-पाखाने के लिए पास में एक मिट्टी का बर्तन था जो बहुत छोटा था।

सवेरे सेल से निकलते ही फिर जोड़ी-जोड़ी बैठने का हुक्म होता और चन्द ही मिनटों बाद भात मिला मांड (कांजी) आ जाता। यदि वे पाखाने जाना या मुंह-हाथ धोना चाहते तो कांजीसे महरूम रहना

पड़ता। कांजी लेते ही सीधे काम की ओर दौड़ना पड़ता। कांजी लेते ही पृथ्वीसिंह को नीचे वाली सेल में जाना पड़ा। वहाँ नारियल के कुछ खोल, एक मोटा डंडा और लकड़ी का टुकड़ा पड़ा था। डंडे से पीट-पीट कर खोल, से रेशे को अलग करना था। उन्होंने समझा, बहुत आसान काम है। सूखे खोल का कूटना आसान काम नहीं था और कितनी ही बार लकड़ी उछल कर सिर पर आती थी। २० सेर आटा पीस डालना आसान था लेकिन यहां दोपहर के खाने के वक्त तक वह कूटते रहे, लेकिन अभी बहुत सा काम पड़ा ही हुआ था। सेल में बाहर से ताला बन्द था, इसलिए वह किसी से काम सिखाने के लिए नहीं कह सकते थे। चार बजे शाम तक नौ छटांक साफ रेशे को खूब अच्छी तरह लपेटकर देना था। वह सारी ताकत लगा रहे थे, अंगुलियां और कलाई फूल गयीं, लेकिन काम पूरा करने की कोई उम्मीद नहीं थी। जब दरवाजा दोपहर खाने के लिए खुला तो बाहर बरामदे में कूटते कैदियों से उन्होंने अपनी दिक्कत बतायी। कैदियों ने दिखलाया कि कैसे खोल को पानी में पहिले भिगो लेने से कूटना आसान हो जाता है। खाने के बाद फिर अपने काम में लगे, लेकिन हाथ जबाब दे रहा था। यद्यपि रेशा परिमाण में कम नहीं था लेकिन वह सूखा, अच्छी तरह झाड़ा तथा सिलसिले से लगाकर बांधा नहीं था।

अंडमान में उस वक्त अम्बाला जिले का एक मशहूर कैदी चौधरी रहमत अलीखाँ भी कैद काट रहा था। वह राजपूत था। जब उसे मालूम हुआ कि मेरे भी ज़िले का एक दूसरा राजपूत कैदी आया है, तो उसकी सहानुभूति पृथ्वीसिंह के साथ हो गयी। रहमत अली ने आकर पृथ्वीसिंह के मुट्ठे को देखा, समझ लिया कि परिणाम क्या होगा। फिर खूब साफ़ अच्छी तरह बँधा नौ छटांक का मुट्ठा उनके हाथों में दे दिया गया वह उसे लेकर उस जगह गये, जहाँ तौल तौल कर डिप्टी जेलर कैदी के टिकट पर लिखता था। पृथ्वीसिंह का रेशा मुट्ठा ठीक और साफ उतरा, डिप्टी जेलर ने मुस्करा दिया। लेकिन अठारह में सभी इतने खुश किस्मत न थे, पाँच का काम ठीक नहीं समझा गया। उन्हें जेलर बारी के सामने पेश किया गया। शायद बारी के पास उस वक्त समय नहीं था, इसलिए उन्हें चेतावनी देकर छोड़ दिया गया।

संघर्ष का आरंभ

दूसरे दिन सिर्फ पंडित परमानन्द (झाँसी) की पेशी हुई। बारी आराम से अपनी कुर्सी पर बैठा था। परमानन्द अपने स्वाभाविक, हँसमुख चेहरे के साथ उसके सामने गये। कैदी के चेहरे पर मुस्कराहट! बारी इसे कैसे बर्दास्त कर सकता था। बारी आग बबूला हो गंदी-गंदी गालियां देने लगा। लेकिन जीवन की बाजी लगाने वाले कब किसी से डरते हैं। परमानन्द ने भी उसका जवाब दिया। जेलर कड़क कर खड़ा हो गया। चर्बी और माँस से भरा उसका दानव-सा शरीर और परमानन्द उसके सामने बिलकुल छोटे से बच्चे! लेकिन उनके दिमाग ने बतला दिया कि बारी क्या करना चाहता है। बारी का हाथ अभी परमानन्द तक पहुंचे ही पहुंचे कि उन्होंने जरासा पीछे हटकर उसकी निकली हुई तोंद पर ऐसे जोर का मुक्का मारा कि बारी धड़ाम से गिरा। पहिला वार जो करना था, वह हो चुका, फिर इसके कहने की जरूरत नहीं कि लाठियों से मार-मार कर परमानन्द को जमीन पर गिरा दिया गया।

यह खबर सारे जेल में तेजी से फैल गयी। "बारी को पीटा, साले को पीटा, शाबास बंबवाला!" कहकर लोग परमानन्द के साहस की सराहना करते थे। परमानन्द को पीटकर सेल में डाल दिया गया।

दूसरे दिन सबेरे सुपरिन्टेडेन्ट मेजर मरे हर रोज की तरह देखभाल के लिए आया। वह परमानन्द की सेल में गया, लेकिन शरीर की अवस्था के बारे में कुछ भी पूछे बिना बोल उठा, "कुट्टा का माफक क्या पड़ा है?" "कुत्ता तुम, कुत्ता तुम्हारा बाप!" कह कर परमानन्द ने जबाब दिया। मरे कुछ भी बोले बिना वहां से निकल भागा। दूसरे दिन जब सभी साथी तालों में बन्द नारियल कूटने में लगे थे, उस वक्त परमानन्द को बिचली गोमटी में ले गये और हाथ पैर बांध कर बीस बेंत मारे गये। परमानन्द से कोई बात नहीं पूछी गयी, डाक्टर से उनकी परीक्षा करायी गयी।

पृथ्वीसिंह और उनके साथियों के लिए वह चुपचाप बर्दाश्त करने की चीज नहीं थी। वे अपमान सहने के लिए नहीं जिन्दा थे। भाई परमानन्द और सावरकर जैसे क्रान्तिकारी भले ही इसे बर्दाश्त कर लें, लेकिन पृथ्वीसिंह के साथियों को कुछ करना था। तुरन्त पोर्टब्लेयर के साथियों के चीफ कमिश्नर को इसकी सूचना दी गयी। वह तुरन्त आया। लोगों ने

समझा था कि सी. सी. (चीफ कमिश्नर) में शिक्षा और संस्कृति का कुछ प्रभाव होगा लेकिन उन्होंने देखा कि वह कुछ भी सुनना नहीं चाहता। लोग काम छोड़ बैठे थे और सी. सी. सबसे सिर्फ यही कह रहा था, "काम करो, नहीं तो बेंट लगेगा।" जब वह पृथ्वीसिंह की सेल के पास आया, तो जेलर ने कह दिया कि यह थोड़ा अंग्रेजी जानता है। सी. सी. ने कहा "चाल ठीक करो, नहीं तो बेंत खाओगे।"

पृथ्वीसिंह ने तुरन्त जवाब दिया—"करो, जो तुम कर सकते हो।"

दूसरे दिन सुपरिन्टेन्डेण्ट पृथ्वी सिंह के और साथियों के पास गया। हर एक के टिकट पर लिख दिया, "छः महीना एकान्तवास, छः महीना डंडा बेड़ी, बीमार का भोजन, सज़ावाला भोजन, सात दिन खड़ी हथकड़ी" लेकिन ऐसी सज़ाओं को वे खेल सा समझते थे। सभी शरीर से बहुत लम्बे-चौड़े और मजबूत थे। एक दो को छोड़ कर बाकी सभी तीन-तीन चार-चार का मुकाबला कर सकते थे। वे ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिए तयार थे। जेल वालों को यह भी पता लगा कि पचीस और क्रान्तिकारी आ रहे हैं। उनकी घबराहट और बढ़ी।

अब पृथ्वीसिंह और उनके साथी सज़ा के तौर पर सेलों में बन्द थे। दिन में कोई कम्बल या बिछौना नहीं रख सकते थे, पेशाब के लिए कोई बर्तन नहीं था और उन्हें पेशाब-पाखाना रोके रहना पड़ता। यह कैदियों के टिकट पर लिखी हुई सज़ाओं से भी ज्यादा बुरी थी।

पृथ्वीसिंह के ब्लाक में उनके दो और साथी थे, मगर वे एक दूसरे से मिल नहीं सकते थे और न दूसरा कैदी ही उनके पास जा सकता था। दिन में सेल का ताला सिर्फ़ तीन बार खुलता था, सवेरे २० मिनट के लिए पाखाने जाने, हाथ मुंह धोने आदि के लिए, दोपहर को जल्दी जल्दी खाना खा सकने के लिए चन्द मिनटों के वास्ते और इसी तरह शाम को भी। उन्हें सवेरे की काँजी नहीं मिलती थी, बाकी वक्त खाना खाने के लिए नहीं, बल्कि जीने के लिए मिलता, जिसमें कि जेलवाले उनपर और अत्याचार कर सकें। दोपहर के वक्त मुट्ठी भर भात, दाल के नाम पर पीला पानी, और थोड़ी उबली हुई घास, जिसे जेल वाले साग कहते थे। शाम को दो चपातियाँ आधी कच्ची आधी जली। और, यह खाना कैसे लोगों को मिल रहा था, जिनमें दो तीन को छोड़कर सभी पौने

छः फुट लम्बे थे, वजन भी १५० पौंड से ज्यादा। प्रायः सभी मिलों, फैक्ट्रियों, खेतों में काम करने वाले कमकर थे। इस ख़ुराक ने उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर डाला और कितने ही जिन्दगी भर के लिए लुंज हो गये, कितनों का तो हाज़मा बिगड़ गया।

आजन्म कालेपानी की सज़ा पाये २५ और पंजाबी साथी अंडमान पहुंच गये, वे भी आते ही काम न करने की हड़ताल में शामिल हो गये। लेकिन जेल के मालिक जेल जीवन को नरम करने के लिए तैयार न थे, यह उनके लिए अपमान की बात थी। अंडमान जेल में वैसे ही वार्डरों और जमादारों की कमी नहीं थी, लेकिन नये क्रान्तिकारियों के आने पर वह संख्या काफी नहीं समझी गयी। टापू के बेतार स्टेशन आदि की रक्षा के लिए कुछ अंग्रेज सिपाही वहां तैनात थे। उनमें से क़द्दावर १ दर्जन जवानों को जेल में लाया गया। बिना अंग्रेज सिपाही के किसी का दरवाजा नहीं खुलता था। पेशाब–पाखाने के रोकने की यातना, बीमारी में दवा-दारू न देने की यातना, प्यासे को पानी से महरूम रखना आदि आदि तरह-तरह की पीड़ाएं उन्हें दी जाने लगीं। मरणासन्न व्यक्तियों तक की कोई खोज-खबर न लेता था।

एक दिन पृथ्वीसिंह सख्त बीमार पड़े। रात का वक्त था। उनके पेट में असह्य-शूल उठने लगा। ड्यूटी पर के आदमी ने खबर दी, मगर कौन पूछता है। दो घंटे बाद कै-दस्त शुरू हुए। वह अपने को रोक नहीं सकते थे। सवेरे तक सारी सेल मैले की दुर्गन्ध से भर गयी। कोई पहरे वाला पास भी नहीं आ सकता था, फिर बीमारी की खबर दी गयी, पर फिर वही उपेक्षा। उन्होंने बाहर जाकर स्नान किया, किसी कैदी की बतलायी एक जड़ी को खाया, जिससे कुछ फायदा भी हुआ।

जब बारी के पास पूरी रिपोर्ट पहुंची तो उसने कहा, "साला मरा नहीं।" कैदी जमादार को उसने चढ़ा रक्खा था, चाहे जितना तंग करे। नहा लेने के बाद उसने पृथ्वीसिंह को उसी गन्दी सेल में बन्द करने की बात कही, तो बात पृथ्वीसिंह के बर्दाश्त के बाहर की हो गयी, यद्यपि वह कै दस्त से कमजोर हो गये थे लेकिन उन्होंने अपने सारे बल को समेट कर कहा, "आओ, जिसको मारना है। जो मुझे सेल में ढकेलने आएगा, वह बच नहीं सकता।" पहरे वालों की हिम्मत नहीं हुई। अंग्रेज सिपाही तमाशा देख रहा था और मुस्करा रहा था।

कुछ इसी तरह की बात सरदार विशन सिंह (पहलवान) के साथ हुई। सरदार विशन सिंह को एक मैली सेल में जाने के लिए कहा गया. आज बुढ़ापे में भी उनके हाथी जैसे बदन, बड़े पंजे को देखकर आदमी अनुमान कर सकता है कि सरदार अगर बाहर जिन्दगी बिताने पाए होते तो छोटे मोटे नहीं, पंजाब के बड़े-बड़े पहलवानों में होते । उन्होंने गन्दी सेल में जाने से इन्कार कर दिया। छः फुट लम्बे, २२० पौंड के इस भीम को जबरदस्ती भीतर ढकेलने के लिए दस आदमी आये। सरदार के शांत चेहरे पर क्रोध झलकने लगा। सरदार ने गरजते हुए कहा, "केडा मौत मंगदा ए" [कौन मौत चाहता है], यदि किसी ने आगे पैर बढ़ाया, तो चीर कर दो कर दूंगा।" विशनसिंह सेल के बाहर खड़े थे, बारी सौ गज के भीतर जाने की हिम्मत नहीं रखता था। कोई आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं था। वे लाठी को भी इस्तेमाल नहीं कर सकते थे क्योंकि जानते थे कि एक लाठी से उसका कुछ होने वाला नहीं और जहाँ उसने लाठी छीनी कि सबकी मौत है। सब पैर दबाकर भागे। विशनसिंह ने अपने मन की सेल चुनी, इस तरह की कितनी ही घटनाएं हुईं। इनकी बहादुरी को देखकर जेल के कैदी सराहना ही नहीं करने लगे, बल्कि वे उनके पक्ष में हो गये। बेचारे बारी की हालत बुरी थी, उसका सारा रोब मिट्टी में मिल रहा था। जब वह जान लेता कि सब लोग ताले के भीतर बन्द हो गये हैं, तो पन्द्रह-बीस आदमियों को लेकर आता और सेल के बाहर खड़ा होकर हिन्दी में खूब गन्दी गन्दी गालियाँ देता, जिसमें कि दूसरे कैदी सुनकर समझें कि बारी और उसका रोब अब भी जिन्दा है लेकिन पंजाबी बहादुर एक की दो सुनाते और दूनी आवाज में। दो-तीन दिन बाद वह अकेले चुपके से आता और नर्मी के साथ कहता, "देखो, मैं बाज़े वक्त आपेसे बाहर हो जाता हूं, तुम्हें गाली देने लगता हूं लेकिन तुम्हें कैदियों के सामने मुझे हिन्दुस्तानी में गाली नहीं देना चाहिए और 'कुत्तेका बच्चा' नहीं कहना चाहिए।"

बारी और सुपरिन्टेण्डेण्ट ने पंजाबियों के बारे में जो रिपोर्ट भारत सरकार के पास भेजी थी, उसीको लेकर भारत सरकार ने आत्म-सम्मान के लिए मर मिटने वाले इन क्रांतिकारियों को "भेड़ियों का झुंड" कहा था।

छः महीने का समय बीत गया, बेड़ियां उतार ली गयीं, लोगों ने फिर काम करना शुरू किया लेकिन अब भी उन्हें सेल में अकेले बन्द रखा जाता, पढ़ने के लिए किताबें नहीं दी जातीं। बारी, सुपरिन्टेन्डेन्ट मरे और सी. सी. के जुल्मों की अंडमान में हद न थी, इसीलिए बाबा बिसाखा सिंह जैसे शान्त सन्त पुरुष को भी गाना पड़ा :

> **"अंडमन् विच सी डाकू तिन्न बड़के।**
> **सी. सी. मरे ते बारी पछाण तिन्नों।**
> **रहे खून निचोड़ सी कैदिया दा,**
> **एक दूसरे तो बेइमान तिन्नों॥**
> **जो चाँवदे जुलम सीं करे जादे,**
> **बेरहम बेतुलम शैतान तिन्नों।**
> **अक्खी वेख्या, सच "वसाख" लिखदा,**
> **जान कैदियाँ दी उत्थे खाण तिन्नों।**

यह जुल्म लोगों को सिर्फ शारीरिक और मानसिक कष्ट देने तक ही सीमित नहीं रहे बल्कि इसमें आठ बहादुरों ने अपने प्राण दिये, जिनके नाम हैं—

[१] केहरसिंह मराण; [२]नन्दनसिंह(बुर्ज); [३]नत्थासिंह(लोरियाँ); [४] बुड्ढासिंह [गुजरात ; [५] माड़सिंह [सनैते]; [६] रुलियासिंह सरम; [७] रामरक्खा [बेहसम] और [८] रोडासिंह [लंडे]।

बारी और मरे ने सारे कैदियों की नाक में दम कर रक्खा था। जब उन्होंने देखा कि मौत से खेलकर भी बारी-मरे की नाक में दम करने वाले आ गये हैं, तो सबकी श्रद्धा उनकी ओर हो गयी। जब कोई अपना छिलका पूरा नहीं कूट पाता, तो दूसरे उसे पूरा कर देते। जेल के कानून के मुताबिक भी इतवार को छुट्टी होनी चाहिये, लेकिन बारी-मरे का अपना कानून था। वे इतवार को भी वार्ड के हातों को साफ करने के लिए कहते। पहरेवाले उनसे बोलते, "बाबू, जाओ उस कोने में घास पर बैठो, यदि कोई आया, तो हम कह देंगे कि घास चुन रहे हैं।" एक कैदी जमादार बारी का विशेष फरमाबरदार था, उसने एक दिन पृथ्वीसिंह के सात साथियों को इतवार के दिन भी पूरा काम करने के

लिए कहा, उन्होंने इनकार किया। उन्हें बारी के पास ले जाया गया; उसने उन्हें मेजर मरे के सामने पेश किया कि ये काम नहीं करते और गुस्ताखी करते हैं। मेजर मरे ने उनके टिकटों पर लिख दिया, "छः महीने का एकान्तवास, बीमारों का खाना, हथकड़ी आदि।"

पृथ्वीसिंह को बहुत बुरा लगा। जब मरे उधर से गुजरा तो उन्होंने सलाम करके कहा, "साहब, हमारे साथियों के साथ अन्याय हो रहा है, उनके मामले आप फिर से देखें।" मरेको कहाँ सुनने की फुर्सत थी। उसने ताना देते हुए कहा, "अन्याय?" और अर्दली को हुक्म दिया कि इसका टिकट ले लो। शाम को पृथ्वीसिंह ने देखा, तो उनके टिकट पर लिखा हुआ था—"जेल के जवाब देह अफसरों के खिलाफ बुरी नियत में निराधार इल्जाम लगाना चाहता है।" दूसरे दिन मरे के सामने पेशी हुई और उसने डंडा-बेड़ी और एकान्तवास की सजा दी। एक साल के बाद औरों को सेल से बाहर आने का मौका मिलने लगा, लेकिन पृथ्वीसिंह बीस महीने तक एकान्त कोठरी में ही बन्द रहे। लेकिन उसी के अनुसार जेल के सारे कैदी उनका सम्मान भी करते। हर एक उनकी सहायता करने को तैयार था। कभी-कभी किताबें पढ़ने को मिल जातीं।

बहुत सालों तक पंजाब सरकार अंडमान में कैदी भेजती रही, यद्यपि उनकी संख्या चार-पाँच से ज्यादा कभी नहीं होती थी। सिक्खों के बाल की सफाई, साबुन, मीठे पानी और तेल आदि का कभी खयाल नहीं किया गया। अब वहाँ चालीस सिक्ख थे। उन्होंने इसके लिए अधिकारियों से प्रार्थना की, मगर वहाँ कौन सुनने के लिए तैयार था। यदि कहीं से एक टुकड़ा पैदा करके कोई साबुन और मीठे पानी से सर धोते देखा जाता, तो उसे सजा होती। तजर्बा से मालूम हुआ कि नारियल की खली से बालों को धोया जा सकता है। उसके लिए मीठे पानी की जरूरत नहीं, समुन्दर का खारा पानी ही काफी है। उन्होंने उसे इस्तेमाल करना शुरू किया, जिस पर उन्हें हथकड़ी-बेड़ी, एकान्त सेल, टाट पहनना, भूखा रहना आदि आदि की सजाएं भुगतनी पड़ीं। पृथ्वीसिंह स्वयं सिक्ख नहीं थे, उन्होंने कभी केश नहीं रखे थे, लेकिन सिखों की लड़ाई से अलग नहीं रहना चाहते थे। दाढ़ी-बाल कुछ बढ़ ही चुके थे। उन्होंने जेलर से कहा, मैं भी सिक्ख

हूँ, मैं टोपी नहीं रखूंगा, मुझे भी सिर ढकने के लिए कपड़े का टुकड़ा मिलना चाहिए। उन्होंने टोपी पहिनना छोड़ दिया और कुछ दिनों बाद कपड़े के टुकड़े का भी जुगाड़ हो गया।

और कड़ा संघर्ष

बारी क्यों शान्ति से रहने देने लगा ? वह बराबर कोई न कोई छेड़छाड़ करता ही रहता। बंगाल के एक क्रान्तिकारी ग्रेजुएट आशुतोष लाहिड़ी जब स्वस्थ थे तो पन्द्रह सेर तेल पेर दिया करते थे, लेकिन अब उनका स्वास्थ वैसा न था इसलिए छिलके को पूरी मात्रा में कूटकर नहीं दे सकते थे। छोटी-मोटी सज़ाओं के बाद उन्हें बेंत की सज़ा दी गयी। सारे जेल में सनसनी फैल गयी। इसके बाद बाबा ज्वालासिंह और अमरसिंह को, जो एक ही ब्लाक में रहते थे, एक जगह खड़े देखकर बारी ने मरे के सामने पेशी कर दी। मरे ने उन्हें सज़ा दे दी। सावरकर, भाई परमानन्द, वीरेन्द्र जैसे राजबन्दी अपने जीवन को शान्ति पूर्वक बिता देना चाहते थे। वे बेंत और अपमान को कड़वे घूंट की तरह पी जाने के लिए तैयार थे; मगर पृथ्वीसिंह और उनके साथी एक दूसरी ही धातु के बने थे। वे बीस-बीस साल तक बारी, मरे के सारे अपमानों को सहने के लिए जेल में नहीं आये थे। लाहिड़ी के बेंत मारे जाने पर जब राजबन्दियों ने कोई कड़ा कदम नहीं उठाया, तो बारी का साहस और बढ़ गया और उसने फिर छेड़-खानी शुरू कर दी। बारी अब ब्लाकों में आने लगा। वह बातें शुरू करता और फिर गालियों पर उतर आता। एक दिन वह पृथ्वीसिंह की सेल के सामने आया और बात करने लगा। पृथ्वीसिंह ने हंसते हुए जवाब दिया। इस पर बारी बोला, "तुम पक्का आदमी है, मुंहपर हंसी रहती है, मगर दिल तुम्हारा सांप जैसा है।"

"हो सकता है जनाब, मेरे हृदयमें सांपका हृदय देखते हों, क्योंकि मेरे पास उसे ढांकनेके लिए चर्बी नहीं है। लेकिन तुम्हारे हृदय में क्या है यह देखना मेरे लिए बहुत मुश्किल है क्यों कि उसपर चर्बीकी एक बहुत मोटी तह जमी हुई है और वह भी ज़िन्दा चर्बी नहीं, मुर्दा की चर्बी।" बारी चुपचाप चला गया।

बाबा भानसिंह साठ सालके बूढ़े क्रांतिकारी थे। एक दिन बारी उधरसे गुज़रा और अपने स्वाभावके अनुसार बोल उठा, "देखा, साला

राज लेने आया है।" बाबा भानसिंह बड़े शान्त प्रकृतिके आदमी थे, लेकिन वे क्रान्तिकारी थे; इस अपमानको चुपचाप बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उन्होंने बारीको मुँह-तोड़ जवाब दिया। उस हातेमें उनके साथियों में से कोई नहीं था। बारीने हुक्म दिया। पहरेवाले आठ कैदी बाबा भानसिंह की सेलमें घुसे और उन्हें मारते मारते बेहोश कर दिया। दो दिन बाद वह मर गये।

अभी तक लोग यह नहीं समझते थे कि बारी इतनी दूर तक चला जायगा। शामको जब सेल बन्द कर दी गयी, तो एक पहरेवालेने सारी बात पृथ्वीसिंहको कह सुनायी। बाबा भानसिंहने कहलवाया था, "मार बेहद पड़ी है, मैं और बहुत दिन नहीं जी सकता।" पृथ्वीसिंह रात भर सोचते रहे और भानसिंहकी मृत्युके बाद उन्हें साफ़ मालूम होने लगा कि अब बारीने दूसरा हथियार उठाया है। वह जिसे चाहेगा उसे एक-एक करके इसी तरह मारेगा। पृथ्वीसिंहका बाबा भानसिंहसे और भी घनिष्ट सम्बन्ध था। अमेरिका से चलते वक्त वह बाबासे विदाई लेते वक्त बोले थे—"बाबा, देशके कामके लिए मैं भारत जा रहा हूं, तुमसे जो सहायता हो करना।" वह चुपचाप सुनते रहे। फिर उन्होंने हृदयके अन्तस्तलसे कहा—"तुम दुध-मुंहें बच्चे देशके लिए जान दो और मैं बुढ्ढा जिन्दगीसे चिपटा रहूं! यह बड़े शर्मकी बात है।"

बाबा भानसिंह अमेरिकामें खेतोंमें काम करते थे और पचहत्तर डालर (ढाई सौ रुपया) महीना कमाते थे। उन्होंने अपने सुखी जीवन की परवाह न की और न बुढ़ापे ही की। चन्द मिनट में उन्होंने अपना बिस्तरा बाँध लिया और पृथ्वीसिंहने देखा कि बाबा उनके साथ चल रहे हैं। पृथ्वीसिंहके लिए बाबा भानसिंहकी मृत्यु भुलानेकी चीज न थी। वह कोई बड़ा क़दम उठाना चाहते थे। आँखोंसे बहती आँसुओंकी धारा दिलकी आग को बुझा नहीं सकती। बारी और मरे अंडमानके सर्व शक्तिमान भगवान थे। लेकिन पंजाबी क्रान्तिकारियों ने अपनी वीरतासे सारे क़ैदियोंके दिलमें घर कर लिया था। यदि कितने ही डकैत और गुन्डे बारीका हुक्म मानकर सब कुछ करनेके लिए तैयार थे तो उनसे भी अधिक खतरनाक, बहादुर कैदी तथा पहरेवाले पंजाबी क्रान्तिकारियोंका साथ देने के लिए तैयार थे। यदि बारीके जासूस क्रान्तिकारियों की एक-एक बातको वहाँ पहुंचाते थे, तो क्रान्तिकारियोंके पास भी बारीकी हर

बात पहुंचती थी, उनके मेज़ की दराज़ों में क्या क्या बन्द है, यह भी उनसे छिपा नहीं था। पृथ्वीसिंह जेलके सबसे निर्भय और ख़तरनाक कैदियोंके स्नेह और सम्मानके भाजन थे। जेलमें एक ख़ूनी बलवा उठा देना आसान काम था, सिर्फ़ उन्हींके बलपर नहीं, बल्कि चालीस पंजाबी क्रान्तिकारी भी शरीर में देव और हिम्मत में फौलाद जैसे थे। उनमेंसे कोई भी एक थप्पड़में बारी या मरेको ख़त्म कर सकता था। लेकिन वे जानते थे कि बारी और मरे शतरंजके मोहरे हैं। इनसे नहीं, बल्कि निपटना है अंडमानके अमानुषिक शासनसे और उसका संचालन करने वाली विदेशी सरकारसे।

अब संघर्ष करना जरूरी था। अबकी बार मामूली संघर्ष नहीं था। अब या तो अंडमान की व्यवस्था को बदलना होगा या मरना होगा। उनके सामने साधारण हड़तालकी कठिनाइयाँ भी स्पष्ट थीं। उनको "टाइम्स" और "स्टेट्स मैन" अख़बार पढ़नेको मिलते थे, जिससे मालूम था कि लड़ाई कितनी घनघोर हो रही है। कितनी ही बार देशी समाचारपत्र भी छिपकर चले आते थे। वे जानते थे कि हम प्राणोंकी बाज़ी लगाने जा रहे हैं और इसकी कोई भी ख़बर बाहर नहीं जाने पाएगी।

पृथ्वीसिंहके ब्लॉकमें रातको बाहर पहरेवाले रहते थे। सभी सहानुभूतिसे रहते थे। वह अपने दूसरे साथियों के पास ज़बानी या लिखकर संदेश भेज सकते थे। दोपहारके वक्त उन्हें पता चला कि पचासी राजबन्दियोंमें पैंतालीस काम छोड़नेकी हड़तालको तैयार हैं। उनमेंसे कुछ बीमार थे, जिन्हें हड़ताल में भाग न लेने के लिये कहा गया। बंगाली राजबन्दियों में तीन ने हड़ताल में भाग लिया। भाई परमानन्द यद्यपि पृथ्वीसिंह के साथके राजबन्दी थे मगर वह हड़तालके लिए तैयार न थे। इसके लिए दूसरोंको खास शिकायत न हो सकती थी, वह किसी राजनीतिक कार्यमें साथ नहीं थे और न उनके विचार ही उनसे मिलते थे। पुलिस ने पकड़कर उन्हें भी शहीदोंकी टोली में मिला दिया था। कोई चारा नहीं था, इसलिए वह वहाँ थे। यदि सावरकर, भाई परमानन्द, वीरेन्द्र कुमार घोष और उनके साथी हड़तालमें शामिल हुए होते, तो इसमें शक नहीं कि उसका वज़न बढ़ जाता, लेकिन भाई परमानन्दको छोड़कर बाक़ी सभीके साथ ख़ास रियायत थी। उनको पहिननेके लिए अच्छा कपड़ा

मिलता, खाना भी वह अपने आप बनाते थे। ऊपरसे महीनेमें बारह आने पैसे भी मिल जाते थे। लेकिन तब भी पृथ्वीसिंह और उनके साथी अपनी लड़ाई लड़ने के लिए तैयार थे।

मध्याह्न-भोजन के वक्त मालूम हुआ कि बाबा सोहनसिंह ने भूख-हड़ताल शुरू कर दी। बाबा सोहनसिंह ग़दर पार्टीके संस्थापक और प्रेसीडेन्ट थे। पृथ्वीसिंह को अपने नेता के प्रति अपार भक्ति थी। खबर सुननेके बाद वह अपने को रोक नहीं सकते थे। उनकी भूख-हड़तालका मतलब था, मौत को निमंत्रण देना। फिर देर करने की जरूरत क्या ? पृथ्वीसिंहने पानी लेना भी छोड़ दिया। भूख–हड़ताल का यह पहला तजर्बा था। पेटकी अँतड़ियाँ अलग तिलमिला रही थीं और प्यासके मारे कठमें कांटे चुभ रहे थे। शामको लोहार आया और उसने डंडा-बेड़ी पहिना दी। उन्हें कोठेसे उतार कर नीचेकी सेलमें बिठा दिया गया। आसपास की सभी सेलें खाली करवा दी गयीं। तीसरे दिन उन्होंने सेलसे बाहर जाना छोड़ दिया। चौथे दिन भूख ख़तम हो गयी। लेकिन प्यासके मारे और बुरी हालत थी। रोज पहरवाला एक बर्तनमें खानेकी चीजें और दूसरेमें पानी लेकर सेलमें रख देता, जिससे कि खाने-पीनेके लिए मन ललचाये। चौथे दिन प्यास बहुत तंग करने लगी। वह उठ खड़े हुए और पानी के बर्तन को ओठोंसे लगाना चाहते थे। उस वक्त उनके मन ने कोसना शुरू किया—'ज़िन्दगी के पीछे चिपके रहना चाहते हो ?' उन्होंने पानी वहीं रख दिया। दो–तीन बार उनके पैर पानीकी तरफ़ बढ़े। उन्होंने मनको जवाब दिया, "मैं जीने के लिए नहीं मरनेके लिए तैयार हूं!" और फिर पानीके बर्तनको पटक दिया।

जाड़ेका महीना था, नहीं तो अबतक शायद काम ख़तम हो चुका होता। सातवीं रातको दो बज रहे थे, उस वक्त उन्होंने महसूस किया कि उनके हाथ पैर ठंडे हो गये, लेकिन मौत कहीं आसपास दिखलायी नहीं देती थी। नवें दिन मेजर मरे आया। उसने सेलके दरवाजेको खुलवाया और पृथ्वीसिंहकी नब्ज देखी। वह एक शब्द भी न बोला। एक घन्टे बाद उन्हें एक कम्बलमें लपेटकर लोग उठा ले चले। उनको यह नहीं मालूम कि कहां ले जा रहे हैं। उनके साथियोंने जब कम्बलमें लपेटे उनके शरीरको जाते देखा, तो समझ लिया वह मर गया। अस्पताल

में ले जाकर उन्हें रक्खा गया। डाक्टर और कम्पाउंडर ने खाना खाने के लिए समझाया, लेकिन वहाँ उसके लिए कौन तैयार था। फिर उन्हें उठाकर सेलमें पहुंचा दिया गया। शायद अस्पताल में ले जाकर लौटाने का मतलब यही होगा कि उन्हें नवें दिन जबरदस्ती भोजन कराया गया, जिसमें मेजर मरे और उनके सहकारियोंको आगे अपनी सफ़ाई देनेमें आसानी हो।

दसवें दिन फिर उसी तरह अस्पताल पहुंचाया गया। अबकी बार नाक के रास्ते जबरदस्ती खाना डालने की कोशिश की गयी। लेकिन पृथ्वी-सिंहने सारी ताक़त लगाकर बाधा डाली। नाकके रास्ते रबरकी नली डालते वक्त घाव हो गया और नाकसे खून गिरने लगा। दसवें दिनके बाद रोज़ यही क़ायदा था। सबेरे चार बर्मी क़ैदी आते और कम्बलमें लपेट कर कंधे या सिर पर उठाये पृथ्वीसिंहको अस्पताल ले जाते और वही नाक के रास्ते नलीसे दूध डाला जाता। दो-तीन दिन बाद अब वह दिन में दो बार दूध डालने लगे। नये-नये क़ैदियोंको इसीलिए इस काममें लगाया जाता था कि भाषा न जाननेके कारण दूसरोंके पास बात न पहुंचने पाये। पृथ्वीसिंह बर्मी भाषा जानते थे। वह उनकी गालियोंका आनन्द लेते थे। बाबा सोहनसिंह तीसरे नम्बरके ब्लाकमें थे। उन्होंने पानी नहीं छोड़ा था। पृथ्वीसिंह को भी उसी ब्लॉकमें, यह खयाल करके भेजा गया कि उन पर भी कुछ प्रभाव पड़ेगा। उनके साथी बराबर जवाब देने के लिए तंग किया करते थे। पहरेवाला रातको घन्टों बातें करता, लेकिन इसका जवाब देनेके लिए पृथ्वीसिंहके मुंहमें ताक़त नहीं थी। ज़बान सूखकर काँटा हो गयी थी। पृथ्वीसिंह ने अब बोलना छोड़ दिया। वारीने अब बोलवानेकी ठानी। वह अपनेकिसी कृपापात्र पहरेवाले को भेजता, जो पृथ्वीसिंहको गदीसे गंदी गालियाँ देता। लेकिन पृथ्वीसिंह थे, "बुन्द अघात सहहिं गिरि जैसे" कुछ दिनों बाद उन्हें अस्पताल ले गये, यह देखने के लिए कि कही दिमाग़ तो नहीं खराब हो गया। पृथ्वीसिंह ने डाक्टर और कम्पाउन्डर से कह दिया कि मेरी जिह्वा सूख जाती है, इसीलिए मैं नहीं बोलना चाहता। एक दिन चीफ़ कमिश्नर भी आया और कहाकि, "प्राणोंको इस तरहसे मत फेंको।" लेकिन उसने इसके बारे में एक बार भी न पूछा कि तुमने क्यों भूख हड़ताल की। दो महीने इसी तरह बीत गये। मौतका अब भी पता नहीं था और जिसके लिए

उन्होंने भूख हड़ताल की थी, उसके बारेमें भी कोई फल नहीं दिखायी दिया। जेलवाले कुछ ढीले ज़रूर पड़े। हाँ, सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ था कि बारी अपनी जीभ पर अंकुश रखने लगा।

जेल के बाहर से खबर मिली कि भूख हड़ताल का पता हिन्दुस्तान में लग चुका है। जनता और अखबारों में भारी आन्दोलन है। इस ख़बर में कितनी सत्यता थी, इसके बारे में तो कुछ नहीं कहा जा सकता था, लेकिन जेल के अधिकारी घुमा-फिराकर कहने लगे थे कि हड़ताल छोड़ो, हम तुम्हारे साथ बेहतर बर्ताव करने की कोशिश करेंगे। लेकिन यह कोई पक्का वादा न था। बाबा ज्ञानसिंह के मारने वालों के लिए भी कुछ नहीं किया गया था। बाबा सोहनसिंह ने समझा कि जिस काम के लिए हमने भूख हड़ताल की थी, वह जेल के अधिकारियों के वादे से पूरी हो जाती है। उन्होंने भूख हड़ताल तोड़ दी। लेकिन पृथ्वीसिंह उससे संतुष्ट नहीं थे, यद्यपि बाबा सोहन सिंह का अनुसरण न करने के लिए उनके दिल में अफसोस था। मित्र और चिन्तित हुए। उन्होंने हर तरह से समझाने की कोशिश की, लेकिन पृथ्वीसिंह का उस वक़्त भगवान पर विश्वास था। वह समझते थे कि जो दाता की मर्ज़ी, एक रात सोचते-सोचते उनके दिमाग़ ने कहा, जब तुमने जीवन की आशा छोड़ दी है तो जाड़े से बचने के लिए कपड़े-कम्बल की क्या ज़रूरत है। दूसरे दिन सबेरे उन्होंने कम्बल ही नहीं लिया, बल्कि बदन के सारे कपड़े भी फेंक दिये और वह अब दिगम्बर थे। हाँ, डंडा बेड़ी निकाल फेंकना उनकी शक्ति से बाहर की बात थी। सीमेन्ट का फर्श बहुत ठंडा था, उस पर वह लेट नहीं सकते थे। चौबीसों घंटे पल्थी मार कर फर्श पर बैठे रहते और डडा-बेड़ी शरीर को अवलम्ब देने के लिए कुबड़ी का काम देती। उनका वज़न १६० पौंड से घटकर ९८ पौंड रह गया। शरीर सूखकर काँटा और जीवन शक्ति बहुत ही क्षीण हो गयी थी। नंगे होने की बात से सारे जेल में तहलका मच गया। उनके साथी समझने लगे, अब मौत बहुत दूर नहीं है। धीरे-धीरे बैठे ही बैठे उन्हें सोने की आदत हो गयी। १५५ दिन तक पृथ्वीसिंह भूख हड़ताल करते रहे। उन्होंने खाना, पीना, कपड़ा और बोलना तक छोड़ दिया था और साध ली सिर्फ एक मरने की। लेकिन मौत मालूम होता था उन्हें भूल गयी। अब उन्हें समझ में आने लगा कि बाबा सोहनसिंह का ही निश्चय ठीक था। एक हद तक हम अधि-

कारियों को दबा चुके, अब आगे की लड़ाई के लिये मरना नहीं, जिन्दा रहना अच्छा है। लेकिन यह बात समझने में उन्हें काफ़ी देर लगी। उनके साथी चिन्तित थे और कोशिश करते थे कि पृथ्वीसिंह भूख-हड़ताल तोड़ दें जिसमें दूसरे भी हड़ताल तोड़ सकें। बाबा शेरसिंह का पृथ्वीसिंह पर ख़ास स्नेह था। उन्होंने तय किया कि चलकर उस हठीले नौजवान को समझाएँ। लेकिन १२० पौंड के स्वस्थ शरीर को अस्पताल कौन जाने देता? कोई रास्ता न देखकर उन्होंने कोई जहरीली चीज उठाकर पी ली। खून के दस्त आने शुरू हो गये। डाक्टर ने उनकी यह हालत देखकर उन्हें एक रात के लिए अस्पताल भेज दिया। बाबा शेरसिंह ने भूख-हड़तालियों के कष्ट की गाथा सुनायी और कहा कि तुम भूख-हड़ताल छोड़ दो, तो सबके सब इस कष्ट से त्राण पायेंगे। पृथ्वीसिंह अब भी कुछ तय न कर पाये थे। फिर उन्हें पंडित जगतराम की चिट्ठी मिली, जिसे उन्होंने अपने खून से लिखा था और दलील देकर समझाने की कोशिश की थी कि अब भूख हड़ताल जारी रखना अच्छा नहीं।

१५५ वें दिन जब डाक्टर नाक से दूध पिलाने के लिये आया तो पृथ्वीसिंह ने उसे हाथ से उठाकर पी लिया। लम्बी हड़ताल ख़तम हुई।

विजय

अब मेजर मरे के बर्ताव में भारी अन्तर था। वह दो साल की छुट्टी पर चला गया और उसे फिर अंडमान का मुख नहीं देखना था, लेकिन बेचारे के भाग्य में न छुट्टी बदी थी न पेन्शन! वह अंडमान के अपने सारे पापों के लिये इस दुनियां से चल बसा। बारी की जगह उसका बहनोई जेलर बनकर आया। वह बड़ा भला मानुष आदमी था। उसके आने पर लोग नहीं समझते थे कि हम क़ैद में हैं और वह जेलर है। क्रांतिकारी भी उसे किसी तरह हैरान करने के लिये तैयार नहीं थे। इसके बाद किसी बेइन्साफी के लिए बाबा सोहनसिंह को भूख-हड़ताल करनी पड़ी। पृथ्वीसिंह को जब पता लगा तो बाबा सोहनसिंह के बार-बार मना करने पर भी वह शामिल हो गये और ग्यारह दिन तक बिना पानी के भूख-हड़ताल किये रहे।

अंडमान के क़ैदियों में छुआ-छूत बहुत थी। मुसलमान के हाथ की रोटी खा लेने से ही हिन्दू अपने को मुसलमान समझने लगता था।

पृथ्वीसिंह को यह छुआ-छूत बहुत बुरी लगती थी। वह मुसलमानों के हाथ से रोटी छीन-छीनकर खाने लगे और थोड़े ही दिनों में लोगों का पुराना ख़याल चला गया।

चलते-चलते

मेजर मरे भी कुछ दिनों में हिन्दुस्तान भेज दिया गया। उनकी जगह पर मेजर वारकर सुपरिन्टेण्डेण्ट बनकर आया। नये जेलर की तरह यह भी सज्जन था। कसूर करने पर भी किसी क़ैदी को भरसक सज़ा नहीं देना चाहता था। डाक्टर एक फ़ौजी आदमी था और जहाँ तक क़ैदियों के स्वास्थ्य का सवाल था, वह जेलर और सुपरिन्टेन्डेण्ट की परवाह नहीं करता था। हर तरह से ध्यान रखता था। पुराना अंडमान का स्वप्न होता जा रहा था। खबर उड़ने लगी थी कि क़ैदी अब हिन्दुस्तान भेज दिये जायेंगे और अंडमान का जेल बंद कर दिया जायेगा।

अध्याय ७

भारत की जेलों में [१६२१-२२]

अक्टूबर १९१५ से अगस्त १६२१ तक ६ साल अंडमान में रहने के बाद पृथ्वीसिंह के मन में फिर आशा अंकुरित होने लगी कि हमें मातृभूमि के दर्शनों का मौक़ा मिलेगा।

वे दिन असहयोग के थे। सारे हिन्दुस्तान में गाँधी जी की जय-जयकार हो रही थी। ये खबरें छन-छनकर अंडमान टापू और उसके जेल की दीवारों के भीतर भी पहुंचने लगीं। इसलिये पृथ्वीसिंह और उनके साथियों को भारत लौटने की और भी ज़्यादा उत्सुकता होने लगी। मगर अभी एक बार और संघर्ष करना था। मेजर बारकर ने जेल के ख़र्चे में कमी करने के लिये पहले कैदियों के तेल पर हाथ उठाया और उसे बारह ड्राम की जगह आठ ड्राम कर दिया। लोगों को बुरा तो लगा लेकिन अब वे भारत चलने के लिए उतावले हो रहे थे, इसलिए नहीं चाहते थे कि फिर कोई झगड़ा मोल लिया जाय। लेकिन पृथ्वीसिंह इसे अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे। युद्ध-क्षेत्र को सामने देखकर पीछे हट जाना यह उनसे नहीं हो सकता था। सब लोग संघर्ष के लिये तैयार नहीं हुए, लेकिन शंघाई में ग़दर पार्टी के स्तम्भ, ७० साल के बूढ़े बाबा-निधान सिंह, उनके साथ थे। ग़दर पार्टी के महाकवि बाबा हरनाम सिंह—जो अपने दाहिने हाथ को भी क्रान्ति की बलि चढ़ा चुके थे, जिससे उन्हें "टुन्डी लाट" कहा जाता था—भी साथ-साथ चलने के लिये तैयार थे। अब भी जो पंजाब की जेलों में वर्षों से सड़ रहे हैं, क्रान्ति के वह महान् योद्धा, बाबा गुरुमुख सिंह भी पृथ्वीसिंह के साथ थे। चारों ने अधिकारियों को समझाया कि तेल की मात्रा को पहले ही के जितना कर देना चाहिये, लेकिन कुछ नहीं हुआ। जेलर की सहानुभूति सबको मालूम थी, उसने इन लोगों को समझाने की कोशिश की लेकिन ये चारों जने चुप रहने के लिये तैयार नहीं थे। चारों ने काम न करने की हड़ताल शुरू कर दी।

मेजर बारकर की जगह एक छः फुट लम्बा असुर सुपरिन्टेण्डेण्ट

बनकर आया। जेल का चक्कर लगाते हुए वह पृथ्वीसिंह की सेल के दरवाज़े पर आया। पृथ्वीसिंह वैसे ही बैठे रहे। सुपरिन्टेण्डेण्ट दरवाज़ा खुलवाकर चुपचाप पृथ्वीसिंह के पास आ गया। पृथ्वीसिंह एक शब्द भी न बोले। उसने पृथ्वीसिंह की दाढ़ी पकड़ी और कैसे खड़ा होना चाहिये वैसे खड़ा करके चलता बना। सेल छोड़ते वक़्त उसके मुख पर विजय की हँसी थी। गाँधी जी के असहयोग और अहिंसा की कितनी ही बातें पृथ्वीसिंह पढ़ चुके थे और उन्हें पालन भी करना चाहते थे। वह हर तरह की सज़ा और बेंत खाने के लिए खुशी से तैयार थे। लेकिन सुपरिन्टेण्डेण्ट के इस बर्ताव को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने इस बात की सूचना अपने साथियों और जेलर को भी भेज दी। जेलर सुपरिन्टेण्डेण्ट को अभी तक बतला नहीं सका था कि इसी बीच सुपरिन्टेण्डेण्ट फिर पृथ्वीसिंह कीसेल की ओर आ गया। दरवाज़ा खुलवाकर भीतर आ उसने फिर दाढ़ी पकड़ कर उन्हें खड़ा किया। पृथ्वीसिंह ने उसके बायें गाल पर ज़ोर से एक चपत जड़ दी। लाठियाँ पड़ीं और वह बेहोश होकर फ़र्श पर गिर पड़े। सुपरिन्टेण्डेण्ट ने तुरन्त सिपाहियों को रोक दिया। सुपरिन्टेण्डेण्ट ने राजनीतिक व्यक्तियों को समझाना चाहा कि मैंने दाढ़ी पकड़ कर उठाया नहीं, बल्कि सिर्फ़ ठुड्डी छुई थी। पृथ्वीसिंह एक सेल में डाल दिये गये, जहाँ बिना दवा-दारू के वे कुछ दिनों में अच्छे हो गये। अब उन्होंने किसी से न बोलने का निश्चय कर लिया। जेल के अफ़सर आते, बात करना चाहते, मगर वह आंख मूँदकर पल्थी मारे बैठे रहते। कुछ दिनों बाद उन्हें अस्पताल भेज दिया गया और बाबा सोहनसिंह उनकी देखभाल करने के लिए भेजे गये। मित्रों ने समझा कि अब ज़रूर दिमाग़ में कोई फ़ितूर हुआ है। पृथ्वीसिंह ने बाबा को विश्वास दिला दिया, कि उनका दिमाग़ दुरुस्त है। तब भी आंख मुंह मूंदे उन्होंने अपनी तपस्या जारी रक्खी। सुपरिन्टेण्डेण्ट आता, कभी आँखों को कभी मुख को खोलकर देखता और कभी सारे शरीर की परीक्षा करता। पृथ्वीसिंह को चन्द ही दिनों में मालूम हो गया कि समाधि तो क्या लगेगी, यह तो और आफ़त मोल लेनी है। उस दिन जब सुपरिन्टेण्डेण्ट सेल के भीतर आने लगा तो वह बोल उठे, "देखो, मेरे बदन को हाथ न लगाओ, सज़ा जो देना हो दो।" उसे विश्वास हो गया कि यह आदमी पागल नहीं है।

तेल को फिर बारह ड्राम कर दिया गया । हड़ताल ख़तम हो गयी ।

अंडमान से प्रस्थान (अगस्त १९२१)

पृथ्वीसिंह अब अपनेको पक्का असहयोगी समझते थे और गांधी जी का पक्का चेला बननेकी धुनमें थे । सड़ी नौकरशाही से किसी तरहका सहयोग करना उनके लिए महापाप था । "महाराजा" जहाज़ उन्हें अंडमानसे निकाल कर भारत लाने के लिए आया । सब लोग ख़ुशी-ख़ुशी आने को तैयार थे । जब स्वास्थ्य देखने के लिए वजन करने की बारी आयी तो सबने वजन करा लिया, लेकिन पृथ्वीसिंह कैसे अपनी ख़ुशी से जाकर वजन कराते, यह तो सहयोग होता ! सत्रह आदमियोंके बाद अठारहवें पृथ्वी सिंहको न आते देख पहरेवालों ने अहिंसक, असहयोगी, उन्तीस सालके पृथ्वीसिंहको उठाकर तराजू पर रखा । सुपरिन्टेन्डेण्टने टिकटपर लिखा :

"Poses as a martyr,is a humbug,absolutely incorrigible, needs careful handling"

"शहीद बननेका दम भरता है; मूढ़, सुधारनेके अयोग्य है, सावधानीसे व्यवहार करना चाहिए"

पंजाबी क्रांतिकारियों को अपने यहाँ रखने के लिए किसी सूबे की सरकार तैयार न थी । आखिर मद्रासने स्वीकार किया । बेड़ी पहनाये वे जेलसे जहाज़ पर लाये गये । तोशामारू पर से क्रान्तिकारियोंने जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हुई । बेड़ियोंके साथ वह अंडमान पहुंचे, भीषण संघर्ष और मौत का सामना करके उन्होंने राजबंदियोंके लिए अंडमान के जेलको बन्द कराया और छः वर्ष बाद जुलाई या अगस्त १९२१ को अब उन्होंने वहाँसे प्रस्थान किया । उन्हें अफ़सोस यही था कि उन आठों शहीदों को फिर नहीं देख सकेंगे, जिन्होंने अंडमानके नरकको बन्द करनेके लिए आखिरी क़ुर्बानी दी थी; साथही बर्मा षड्यन्त्रके राजबंदी भी तेरह-चौदह साल तक वहीं सड़नेके लिए छोड़ दिये गये थे, इसका भी उन्हें अफ़सोस था !

मद्रास जेलमें उन्हें एक बैरक में रक्खा गया । अब उनकी जाँच-पड़ताल करके उन्हें प्रान्तके भिन्न-भिन्न सेन्ट्रल जेलोंमें बांटना था । जेलर और सुपरिन्टेण्डेण्ट क़ैदियोंको देखने आये । सब लोग खड़े थे, लेकिन

असहयोगी पृथ्वीसिंह आसन मारे पड़े थे। सुपरिन्टेण्डेण्टने दूरसे देखा। उसने चिल्लाकर कहा, "खड़े हो जाओ।" लेकिन कौन सुनता है! दूसरी बार भी चिल्लाया, लेकिन लोमश ऋषि पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। सुपरिन्टेन्डेण्ट ने आकर उनके टिकटको देखा। अंडमानके आखिरी नोटको पढ़कर वह ठंडा पड़ गया। एक दिनकी बात थी, उसने सोचा काहे को बखेड़ा मोल लें।

भाग निकलने का पहला प्रयास (जुलाई १९२१)

दूसरे दिन तीन-तीन चार-चारकी टोलीमें लोगोंको भिन्न-भिन्न जेलोंके लिए रवाना कर दिया गया। दो और के साथ सरदार पृथ्वीसिंह तीन कान्स्टेबुलों के साथ राजमहेन्द्री भेजे गये। शामके वक्त कलकत्ता मेलपर चढ़े। पृथ्वीसिंहने देखा कि पुलिसके तीनों जवान एक पंजाबीके लिए काफ़ी नहीं हैं। पृथ्वीसिंहने अपने साथियों से कहा, "यह बड़े शर्मकी बात होगी, यदि ये लोग हमें राजमहेन्द्री जेल तक ले जा सकें।" साथी चुप रहे, जिसका मतलब था, वे सहमत नहीं हैं। मगर पृथ्वीसिंह इससे निराश नहीं हुए। उन्होंने अपना रास्ता सोच लिया, वह अब और अपने जीवनको सड़ाने के लिए तैयार नहीं थे।

डाक बड़ी तेज़ीसे दौड़ी जा रही थी। रात काफी बीत चुकी थी। पृथ्वीसिंहकी नज़र बार-बार सिपाहियोंके चेहरे पर जाती थी। अभी भी वह सजग थे। वहां नींदका कोई निशान न था। रातका एक बज रहा था। ट्रेन अंगोल स्टेशनपर खड़ी थी। मूसलाधार वर्षा पड़ रही थी और डिब्बे से बाहर कुछ नहीं दिखायी पड़ता था। उन्होंने सिपाहियों की ओर देखा, वह झपकी ले रहे थे। साथी भी सो गये थे। पृथ्वीसिंह ने सोचा, फिर ऐसा समय नहीं आयगा। डाक छूटी, वेग बढ़ने लगा और ज़रा ही देरमें वह बाहरी सिगनलसे पार हो गयी। जंगले से बाहर देखने पर कुछ नहीं दिखायी देता था। बिना इसका कुछ खयाल किये कि वहां पत्थर, कांटा-लकड़ी क्या है, उन्होंने डिब्बे में से छलांग मार दी। जंगले के पास केहरसिंह सोये थे। पृथ्वीसिंह का शरीर उनसे छू गया। उसने पैर पकड़ लिया। पृथ्वीसिंहने झटका दिया। पैर तो छूट गया, मगर ज़मीन पर जिस तरह कूदना चाहते थे, उस तरह नहीं कूद सके। उनके एक घुटनेकी हड्डी चटक गयी। उठना चाहा तो दर्दके मारे फिर

गिर पड़े । तब तक ख़तरेकी जंजीर खींची जा चुकी थी और उन्होंने देखा, गाड़ी थोड़ी दूर जाकर खड़ी हो गयी। दो-तीन बार उठनेकी कोशिश में वह गिरे। लेकिन अब उन्हें न दर्दकी परवाह करनी थी न टूटे घुटनेकी। उन्होंने सारी ताक़त लगाकर रेलकी लाइनसे दूर हटनेकी कोशिश की। आगे बढ़े तो देखा, नागफनीके कांटे हैं। कांटे चुभते गये, लेकिन वह रुके नहीं। बीस गज़ जाने पर फिर एक नागफनीकी बाड़, लेकिन वहां पीछे लौटनेका कोई सवाल नहीं। सिपाही अब भी आवाज़ लगा रहे थे। सारे बदनमें न जाने कितने सौ नागफनीके कांटे चुभे थे। उनकी आँख बच गयी। वर्षाके पानीसे धानके खेत लबालब भरे थे। कहीं-कहीं पानी ज़्यादा था और घायल पैरसे चलने की जगह तैरना अच्छा मालूम होता था। कितनी ही देर बाद वह एक दीवार से जाकर टकराये! वर्षा अब भी बन्द नहीं हुई थी। उन्हें कुछ नहीं दिखलायी पड़ता था। बड़े कष्ट और सावधानी से दीवार के ऊपर चढ़कर वह दूसरी तरफ उतरे। ट्रेन अब भी खड़ी थी, लेकिन उस अंधेरेमें भागे क़ैदीको ढूँढना वैसे ही आसान न था और वहां तो उन्हें दो और क़ैदियोंको भी सँभालना था। पृथ्वीसिंह अपने शरीर को इसी तरह घसीटते-घसीटते चलते गये! अब दूर उन्हें एक रोशनी दिखायी दी। बदनमें सब जगहसे ख़ून बह रहा था और दर्द तो रोम-रोम में था। हिम्मत बांधकर उन्होंने उस रोशनी तक पहुंचने की कोशिश की।

वह एक छोटा सा गांव था। कुछ बड़े घरों में चिराग़ जल रहे थे। वह एक बड़े घर में जाना चाहते थे, उसी वक़्त उनकी नज़र एक छोटी झोंपड़ी पर पड़ी, जिसके भीतर एक छोटा सा दिया टिमटिमा रहा था। पृथ्वीसिंह आसानी से समझ सकते थे कि झोंपड़ी का मालिक कोई ग़रीब है। बड़ों के कड़वे तजुर्बे उन्हें अनेक हो चुके थे, इसलिए उन्होंने झोंपड़ी का रास्ता लिया। वहाँ एक मिट्टी के तेल की डिबिया जल रही थी। दो ग़रीब औरत,मर्द लकड़ी के तख्तों पर अलग-अलग सोये थे और एक कोने में एक छोटा-सा बछड़ा बधा हुआ था। झोपड़ी इतनी छोटी थी कि उसमें और जगह नहीं रह गयी थी। पृथ्वीसिंह कुछ देर तक एकटक देखते रहे। मुंह से शब्द निकालने की हिम्मत नहीं होती थी। घायल पैर को आराम देने के लिए जब उनका पैर जरा हिला, तो बेड़ी ने झन्न

किया । औरत ने आँख खोल दी। इस रात में भूत जैसे एक आदमी को सामने खड़ा देख वह घबड़ा उठी और वह चिल्लाना ही चाहती थी, कि पृथ्वीसिंह ने एक अँगुली को ओठों पर रक्खा । स्त्री चुप रही और उसने अपने हाथ को फैलाकर पति को जगाया। खड़े होकर उसने काली-काली दाढ़ी और बड़े बड़े बालों वाले पृथ्वीसिंह के चेहरे को एक बार देखा तो उसके होश गुम हो गये । छाती पर की बंडी और नीचे के जाँघियाने और कसर पूरी कर दी और इसके बाद भी जो कमी थी, वह पूरी कर दी हाथ और खून से लथपथ कपड़ों ने। पृथ्वीसिंह ने उसे भी इशारे से चुप रहने के लिए कहा । अभी तक उनकी नजर बेड़ी पर नहीं पहुँची थी । पृथ्वीसिंह ने अपनी बेड़ी को हिलाया। शायद अब उनकी कुछ समझ में आया । वे कुछ बोले, मगर पृथ्वीसिंह को तेलगू का एक भी शब्द मालूम न था । झट से उनके दिमाग में कोई खयाल आया और वह बोल उठे, "कांग्रेस, स्वराज्य, महात्मा गांधी ।"

मालूम हुआ कि ये शब्द नहीं, जादू के मंतर हैं । उनकी आँखें और मुंह की आकृति बतला रही थी कि वे सहायता करने को तैयार हैं। वे दोनों तख्तों के बीच फर्श पर बैठ गये और इशारे से बताया कि इन बेड़ियों को हटाना है । पास में एक लोहे का टुकड़ा, शायद हलका फाल पड़ा था । उन्होंने उसकी तरफ इशारा किया । आदमी ने उस लोहे से बेड़ी को खोलना चाहा, मगर वह ज्यादा मजबूत थी । पृथ्वीसिंह ने लोहे को खुद अपने हाथ में ले लिया । उस वक्त न जाने कहाँ से ग़जब की ताक़त आ गयी थी और कड़ों के मुंह को उन्होंने खोल दिया । बेड़ी पैरों से निकल गयी । बंडी और जांघिये को भी उतार दिया और इशारे से बताया कि इन्हें खोदकर जमीन में गाड़ दो । अब उनके बदन पर केवल एक लंगोट था । उन्होंने इशारे से एक लुंगी माँगी, मगर गरीब के पास कोई कपड़ा न था । एक छोटे से चीथड़े से अपने घायल घुटने को बाँधा । चलने के लिए ताकत तो नहीं रह गयी थी, मगर भिन्सार हो रहा था और किसी सुरक्षित जगह की तलाश की जरूरत थी । पृथ्वीसिंह ने समझा, अब बड़े घर में जाने से कोई हर्ज नहीं । जब वह उधर बढ़ने लगे, तो गरीब ने हाथ पकड़ कर कुछ कहा । पृथ्वीसिंह ने समझा कि नहीं जाना चाहिए, यहाँ खतरा है । आदमी ने उन्हें गाँव के बाहर लाकर छोड़ दिया । किधर जाना चाहिए, इसका कोई पता नहीं ।

वर्षा अब भी बन्द होना नहीं चाहती थी, लेकिन पृथ्वीसिंह को आगे जाना ही था। तैरते, लंगड़ाते वह आगे बढ़ते गये। बहुत-सा खून निकलने से कमजोरी अलग थी, उस पर से भूख, फिर यह चलना; लेकिन वह स्वतंत्रता को दोनों हाथों से पकड़े हुए थे और उसे किसी कीमत पर भी छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे।

चलते-चलते वह रेलवे लाइन पर पहुँचे। दोनों तरफ पानी था और लाइन छोड़कर जाने का कोई रास्ता न था। स्वस्थ शरीर और लम्बी दाढ़ी से वह एक साधु समझे जाते, लेकिन शरीर में जो घाव और काँटे चुभे हुए थे। अब वर्षा बन्द हो गयी और सूरज भी बादलों को फाड़कर निकल आया। वह लाइन के पास बैठ गये और खेत के पानी से घाव को धोने लगे। काँटों को भी जो निकाल सके, निकाला। थकावट के मारे वहीं भीगी जमीन पर पड़ गये। सूर्य की कोमल किरणों ने थपकी दी और नींद ने आकर सारे दुःख-सुख भुला दिये। जाती हुई ट्रेन के इंजन ने सीटी दी, तब कहीं जाके नींद खुली। सारा बदन जकड़ गया था। हिम्मत करके एक झाड़ी से उन्होंने एक बड़ी लकड़ी तोड़ी और उसका सहारा लेकर चलने लगे। आस पास खेतों में छाती भर पानी था, इसलिए रेलवे लाइन को छोड़कर चलना सम्भव नहीं था। वह तेनाली की तरफ जा रहे थे और अब बचने की आशा बहुत कम रह गयी थी।

गिरफ्तार

एक स्टेशन पर पहुँचे थे उसी वक्त सामने से एक पुलिस का सिपाही आता दिखायी पड़ा। अंगोल जिला का सदर है। वहाँ से पुलिस की टोलियाँ पृथ्वीसिंह को ढूंढने के लिए भेजी गयी थीं। कान्स्टेबुल ने समझ लिया, लेकिन पृथ्वीसिंह की शारीरिक अवस्था को देखकर उसका दिल द्रवित हो गया। अपनी जगह पर ले जाकर उसने उन्हें खाने के लिए कुछ भात दिया, फिर वह अफ़सर को खबर देने गया। चन्द मिनटों में अब पृथ्वीसिंह पूरी तरह पुलिस की टोली के हाथ में थे। उनका मनोबल बिखर गया था और शरीर शिथिल था। उस वक्त जो पड़े, तो आठ दिन तक वह न उठ सके।

जिस जगह वह गाड़ी से कूदे थे, गिरफ्तारी की जगह वहाँ से १६ मील थी। घायल, अंग-अंग में काँटे छिदे, वह कैसे उतनी दूर पहुँच सके,

यह बड़े आश्चर्य की बात थी। पुलिस अंगोल लेकर गयी। १९२१ के असहयोग की आँच से गुजरी जनता अब वह सात साल पहले की जनता न थी। बहादुर राजबन्दी के भागने की खबर को चारों ओर फैलाने में पुलिस की सरगर्मी खास हाथ रखती थी। चारों तरफ़ से लोग इस वीर के दर्शनों के लिए आने लगे। काउंसिल के एक ईसाई सज्जन इस साहसी को देखने का लोभ संवरण नहीं कर सकते थे। उन्होंने पृथ्वीसिंह की अवस्था देखी और एक जोड़ा कपड़ा देने की इच्छा प्रकट की। पृथ्वीसिंह ने लेना स्वीकार किया। चार घंटे बाद उक्त सज्जन ने दो कमीज, एक जोड़ा धोती और दूसरे कपड़े भेजे। पृथ्वीसिंह ने उन्हें लेकर एक कोने में रख दिया, विदेशी कपड़ों को वह कैसे पहन सकते थे। जब लोगों को कारण मालूम हुआ, तो उन्होंने खद्दर की क़मीज़ और धोती देनी चाही, लेकिन उसके लेने की आज्ञा न थी।

जब चलने फिरने लायक हो गये, तो पृथ्वीसिंह को अस्पताल भेजा गया। उन्होंने डाक्टरसे काँटों के निकालने के लिए कहा, लेकिन दो-दो तीन-तीन सौ काँटे निकालने की फुर्सत कहां! वह धीरे-धीरे अपने ही निकालने के लिए छोड़ दिये गये। एक छोटी सी कंकड़ी दाहिनी जाँघ में नीचे घुस गयी कि वह आज [१९४४ में] भी निकलने का नाम नहीं लेती।

अस्पताल से उन्हें मजिस्ट्रेट की कचहरी में ले जा रहे थे। उनके बदन पर सिर्फ़ एक लंगोटी थी। पुलिस वाले जिस समय उन्हें अंगोल की सड़कों से ले जा रहे थे, जगह-जगह इतनी भीड़ जमा हो जाती कि पुलिस के लिए आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता था। लोग जगह-जगह पृथ्वीसिंह को बोलने के लिए मजबूर करते। कितने ही अच्छे-अच्छे वकील मुकदमे की पैरवी करने के लिए तैयार थे, मगर पृथ्वीसिंह अंग्रेजी अदालत और उसके न्याय को मानें, तब न। वह तो अपने पैर से चलकर अदालत के भीतर जाने के लिए भी तैयार न थे। जज ने दो दिन तक मुकदमा करने के बाद एक साल की सज़ा देते हुए लिखा था, "सारे शरीर में इतने ज़ख्मों के होते हुए अभियुक्त १६ मील कैसे जा सका, यह समझना बहुत मुश्किल है; लेकिन गाड़ी से कूदने की जगह से १६ मील पर वह पकड़ा गया, यह निर्विवाद है।"

राजमहेन्द्री जेल में

फैसले के दिन ही पृथ्वीसिंह को राजमहेन्द्री जेल में भेज दिया गया। अंगोल सब-जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने विदाई देते वक्त कहा था, "पृथ्वीसिंह यह तुम्हारा जीवन तुम्हारे हाथ में देश की थाती है, इसे फेंक देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। तुमने चलती ट्रेन से कूदकर अपने जीवन के साथ जैसा बर्ताव किया, वह केवल पागलपन था। यह निरा संयोग था, जो तुम मौत से बच गये। निराश मत होओ, जेल से निकल कर राष्ट्र की सेवा करने का फिर तुम्हें मौका मिलेगा।" दो सिपाही पृथ्वीसिंह को लेकर रवाना हुए। उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा, "हम आपको कोई कष्ट नहीं देना चाहते। आप कौन हैं, यह हम अच्छी तरह जानते हैं। हमारे पास जीविका का कोई साधन नहीं है और हमारे ऊपर परिवार का बोझ है। ऐसा करें जिसमें हमारा सत्यानाश न होने पाये।" पृथ्वीसिंह के दिल में करुणा उमड़ आयी, उन्होंने इतना ही कहा, "तुम घबराओ नहीं, बस मेरे पीछे-पीछे जेल के फाटक पर चले आओ।"

रात की उसी ट्रेन से वह राजमहेन्द्री के लिए रवाना हुये थे। सैकड़ों नौजवान विदाई देने के लिए स्टेशन पर उनका इन्तजार कर रहे थे। उधर राजमहेन्द्री में भी खबर पहुंच चुकी थी, लोग पहले ही स्टेशन पर पहुंच गये। पुलिस वाले चुप थे। लोग उन्हें गोदावरी की ओर ले गये। पवित्र धारा में उन्होंने स्नान किया, फिर तीनों जनों को सुन्दर भोजन करा, घोड़ा-गाड़ी पर चढ़ाकर सेन्ट्रल जेल के फाटक पर पहुंचा दिया गया।

जेलर को पता लगा और वह अपने बंगले से देखने के लिये आया। पृथ्वीसिंह वैसे ही बैठे रहे। जेलर ने जो एंग्लो इण्डियन था, इसे अपने रोब के ख़िलाफ समझा। वह दूर ही से चिल्लाने लगा और नजदीक आकर जबरदस्ती उठाने की धमकी देने लगा। पृथ्वीसिंह ने कहा, "पहले मेरे टिकट पर क्या लिखा है, पढ़ लो।" पढकर वह कुछ ठंडा हो गया।

पैर के घाव में पीव भर गयी थी, जिससे कोई क़ैदी उस बैरक में रहना नहीं चाहता था। सुपरिन्टेन्डेन्ट आया; उसने भी पृथ्वीसिंह को बैठा देखकर गाली देनी शुरू की। गाली का उसे जवाब मिला। उसने पृथ्वीसिंह को फांसी घर की सेल में भेजवा दिया। सुपरिन्टेन्डेन्ट एंग्लो-इण्डियन था

और डाक्टर एक अंग्रेज। तीनों ही अपने सामने किसी को कुछ न समझते थे। पृथ्वीसिंह चार बजे सबेरे ही उठते और १० बजे दिन तक पूरे छः घंटे आँख मूंदे आसन मारे बैठे रहते। बोलना भी शायद ही कभी होता। जेल के सिपाही और पहरे वाले क़ैदी समझते कि यह कोई जोगी महात्मा हैं। महात्मा को खुश रखने की सभी कोशिश करते और खाने-पीने की जो चीज़ स्वीकार कर सकते, वह उनके पास पहुंचती रहती। लेकिन एंग्लो-इण्डियन जेलर ऐसे मिथ्या विश्वासों को मानने वाला न था। एक दिन सबेरे पृथ्वीसिंह को न उठते देख उसने सिपाहियों को ज़बरदस्ती उठाने के लिए कहा। सिपाहियों ने साफ़ इनकार कर दिया, "हुजूर, यह कोई जोगी पुरुष हैं, हम इन्हें रात-दिन भजन में देखते हैं। हम इनके शरीर में हाथ नहीं लगा सकते।" जेलर उस दिन चला गया। दूसरे दिन वह हुक्म-बरदार क़ैदी पहरेवालों को लेकर पहुंचा। सेल का दरवाज़ा खुलवाकर उसने चिल्लाकर कहा, "पकड़ो साले को।" गाली बर्दाश्त करना पृथ्वीसिंह के बूते के बाहर की बात थी। उन्होंने भी गाली देकर ललकारा कि यदि हिम्मत है तो नज़दीक आओ। जेलर ने उछलकर एक डंडा पृथ्वीसिंह के सर पर मारा। उन्होंने झपट कर जेलर की गर्दन पकड़ ली और एक दो घुटने लगाये। चालीसों आदमी पृथ्वीसिंह पर टूट पड़े और जेलर जान लेकर वहाँ से भगा। पृथ्वीसिंह चार घंटे बेहोश रहे और फिर उन्हें अपने भाग्य पर छोड़ दिया गया। कुछ दिनों में वे अच्छे हो गये। जेलर फिर कभी उनकी सेल के भीतर नहीं आया।

अब हजारी बाग से कुछ और राजबन्दी आ गये थे; पंडित जगतराम भी राजमहेंद्री भेज दिये गये। उन्हें अपना पंजाबी खाना अलग बनाने की इजाज़त थी। पृथ्वीसिंह को अब खाने की कोई तकलीफ़ न थी।

जेल की त्रिमूर्ति सज़ा देकर हार गयी, रह गया था सिर्फ फाँसी चढ़ाना और बेंत मारना। फाँसी चढ़ाना उनके हाथ में न था और बेत मारने पर बाहर हल्ला होने का डर था, आखिर में उन्होंने निश्चय किया कि इसे पागल करके पागल खाने मे भेज दिया जाय! मित्रों को जब मालूम हुआ तब घबड़ाये और उन्होंने पृथ्वीसिंह को सम-

झाने की कोशिश की। लेकिन पृथ्वीसिंह को पागलखाना कोई डरावनी चीज़ नहीं मालूम होती थी। इसी वक्त सिक्ख क़ैदियों के साथ बुरे बर्ताव की ख़बरें पंजाब में पहुंची थीं और उसके लिए वहाँ बहुत आन्दोलन हो रहा था। भिन्न-भिन्न जेलों में सिक्ख राजबंदियों को देखने के लिए डेपुटेशन भेजा गया। सरदार तेजसिंह चूडकाना दो और सज्जनों के साथ राजमहेंद्री जेल देखने आये। सरदार तेजसिंह मार्शल ला के क़ैदी बन अंडमान में रह चुके थे और वह पृथ्वीसिंह को अच्छी तरह जानते थे। राजबंदियों से मिलवाकर जेलर सुपरिन्टेण्डेण्ट और डाक्टर उन्हें पृथ्वीसिंह के पास ले आये। उन्होंने सारा किस्सा सुना और देश के नाम पर कहा कि इस ज़िद को छोड़ो। सुपरिन्टेण्डेण्ट ने दो घन्टे का समय दिया। पृथ्वीसिंह ने चूडकाना की बात स्वीकार करली। दूसरे दिन डाक्टर ने परीक्षा की और कहा कि छः दिन के भीतर अपने लिए कोई काम चुन लो। पृथ्वीसिंह ने अपने लिए दो काम चुने—(१) दो सौ से ऊपर असहयोगी राजबदियों को हिन्दी सिखाना और (२) बीमारों की सेवा करना। अधिकारियों ने मंजूर किया, यद्यपि यह कड़वी गोली थी।

आज आन्ध्र में हिन्दी का काफ़ी प्रचार है, लेकिन १९२२ में इसके आरम्भ करने वालों में पृथ्वीसिंह का नाम पहले आता है। एक महीने से ज्यादा वह हिन्दी नहीं पढ़ा सके। मद्रास सरकार नहीं पसन्द कर सकी कि उन जैसा क्रांतिकारी आंध्र के तरुणों के सम्पर्क में आये। हां, अस्पताल में उनका काम जारी रहा। राजमहेंद्री जेल में आंध्र प्रदेश के डाक्टर सुब्रह्मण्यम्, बुलसू साम्बमूर्ति जैसे बड़े-बड़े नेताओं से उनकी मित्रता हुई। साम्बमूर्ति अब भी उन दिनों को बड़े स्नेह से याद करते हैं, जब वह तरुण थे।

राजमहेंद्री से पहले-पहले उन्होंने एक पत्र अपने पिता के पास लिखा, जिसमें मालूम हो कि उनका पुत्र अब भी जीवित है।

सभी पंजाबी राजबन्दी उत्तरी भारत के किसी जेल में भेज देने के लिए अर्ज़ी दे देकर थक गये, मगर किसी ने न सुना। लेकिन इसी समय ऐसी स्थिति पैदा हुई कि सरकार को स्वयं उन्हें दूसरे जेल में भेजने के लिये मजबूर होना पड़ा। उस वक्त आंध्र के कितने ही ज़िलों में रम्पा-ग़ितूरी (रम्पा के ग़दर) का बड़ा ज़ोर था।

सीताराम राजू नामक एक बहादुर तरुण ने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ़ युद्ध घोषणा कर दी थी। राजू का दल धीरे-धीरे बहुत मज़बूत हो गया और सरकार के नाकों दम था। तीन साल तक उसने सरकार की नींद हराम कर दी। आंध्र के जंगलों और पहाड़ों में उसके छिपने की जगहें थीं, जहाँ से कभी किसी थाने पर और कभी किसी कचहरी पर वह टूट पड़ता। वह पहले से सरकार को खबर देकर हमला करता, लेकिन राजू की मशीन के सामने सरकारी मशीन बहुत सुस्त थी और वह हाथ नही आता। राजू के पास भी किसी ने पृथ्वीसिंह की बहादुरी की बातें पहुंचाईं। राजू ने पृथ्वीसिंह को राज महेंद्री जेल से निकालने का संकल्प किया। राजमहेंद्री में अफ़वाह उड़ रही थी कि राजू जेल पर हल्ला बोलने वाला है। जेल में भी बहुत आतंक छा गया था और उसकी हिफ़ाजत के लिये अरिरिक्त पुलिस बुलायी गयी। राज महेंद्री के पास के एक स्टेशन पर राजू ने सफलता-पूर्वक आक्रमण भी किया।

अब पृथ्वीसिंह जैसे क्रान्तिकारियों को राजमहेंद्री में रखना सरकार ने खतरे की बात समझी। उस वक्त पंडित जगतराम, सरदार धीरसिंह, सरदार करतार सिंह और सरदार पृथ्वीसिंह, चार उत्तर भारतीय राजबन्दी राजमहेंद्री में अंग्रेजी भाषा जानने वाले थे। तय हुआ था कि पंडित जगतराम को जबलपुर भेजा जाय और बाक़ी तीन आदमियों को नागपुर सेन्ट्रल जेल।

दूसरी छलाँग (२९ नवम्बर १९२२)

मित्रों से मिलकर चारों जने सिपाहियों के साथ ट्रेन पर चढ़े। स्टेशन पर कितने ही लोग मिलने आये। अंग्रेज़ सारजंट भीड़ को देखकर घबड़ा गया, यद्यपि उसके पास सात कान्स्टेबुल थे। पृथ्वीसिंह और उनके साथियों के हाथों में न हथकड़ी थी और न पैरों में बेड़ी। उनके शरीर पर क़ैदियों के नहीं, साधारण कपड़े थे। सैकड़ों की भीड़ में उनका निकल जाना बहुत आसान था, किन्तु उनके दिल में इसका ज़रा भी ख़याल नहीं था। ट्रेन बैजवाड़ा पहुंची। यहाँ से उन्हें दूसरी

ट्रेन पकड़नी थी, लेकिन अभी भी उन्हें हैदराबाद और भुसावल में गाड़ी बदलनी थी। इन जगहों पर भी पृथ्वीसिंह दो सिपाहियों के साथ खाने की चीज़ें लेने गये थे। उनके लिए दो सिपाही कुछ नहीं थे और अपने सादे कपड़ों में वह आसानी से निकल सकते थे; लेकिन उनके दिल में भागने का कोई ख़याल नहीं था। भुसावल में वह नागपुर की गाड़ी में बैठे, गाड़ी तेज़ी से चलने लगी। भागते नज़ारे में नागफनी की बाड़ सामने आयी, पंडित जगतराम ने पूछ दिया—"ट्रेन से कूदकर क्या तुम इन काँटों को पार कर सकते हो ?" पृथ्वीसिंह ने मुस्करा दिया, उनके दिल में ऐसा कोई विचार नहीं था। जगतराम उसी वक्त सामने की बेंच पर जाकर बैठ गये। पृथ्वीसिंह जंगले के पास बैठे थे। सारजन्ट को कुछ चिन्ता तो हुई, मगर बोलने की हिम्मत न हुई। उसने जगत राम से कहा कि इन्हें कह दो कि जँगले से अलग हो जाएँ। पृथ्वीसिंह को अभी तक कोई ख़याल नहीं आया था। वह दूसरी ही दूसरी बातों के सोचने में ग़र्क थे। जब जगतराम ने सारजन्ट की बात कही तो पृथ्वीसिंह को बुरा लगा और उन्होंने जँगला छोड़ने से इनकार कर दिया। सारजन्ट ने दो कान्सटेबुलों को इनके पास बैठने का हुक्म दिया। पृथ्वीसिंह ने इसे भारी अपमान समझा और उनका दिमाग़ तेज़ी से सोचने लगा, शायद यह अपनी होशियारी के बल पर मुझे दूसरी जेल तक पहुंचाने का गर्व करता है। क्या मैं सिखलाऊँ इसे कुछ ? लेकिन उन्होंने अपने मन को समझाया और खिड़की छोड़ बीच की बेंच पर कम्बल बिछाकर लेट गये। सारजन्ट भी पास ही में था। चन्द ही घंटे चलने के बाद वह गंभीर निद्रा में चले गये। उन्होंने स्वप्न में देखा, कोई कह रहा है, "क्यों सोये हो, उठो, यही समय है।" उनकी नींद खुल गई। देखा बाक़ी सभी सो गये हैं, सिर्फ़ तीन सिपाही ताश खेल रहे हैं। सीटी देकर गाड़ी स्टेशन छोड़ने वाली थी। अभी भी उनके दिमाग़ में भागने का कोई ख़याल नहीं था। वह पाख़ाना खोलकर पेशाब करने गये। ट्रेन की गति कुछ तेज़ होने लगी थी। पेशाब करते-करते दिमाग़में ख़याल आया, "नहीं सचमुच यही समय है।" वह सोच रहे थे कि बाहर जाकर जँगले से निकलें लेकिन देखा की पाख़ाने की खिड़की के शीशे को नीचे गिराया जा सकता है। खिड़की बहुत छोटी थी, तो भी उसके भीतर से उन्होंने

अपने शरीर को बाहर किया। फिर कलैया मारकर पैरों के बल ज़मीन पर गिरे। रेल सिगनल से बाहर हो चुकी थी और गति भी बहुत तीव्र थी। सिपाही अभी कितनी देर तक ताश खेलते रहेंगे! पृथ्वीसिंह अब क़ैदी नहीं, स्वतंत्र व्यक्ति थे और लम्बे अर्से के लिए। यह १९ नवम्बर, १९२२ की रात थी, चारों ओर दूध की तरह चाँदनी छिटकी हुई थी।

अध्याय ८

अज्ञातवास

जाड़े का दिन, चांदनी रात, लेकिन उस ऊँची-नीची पहाड़ी जमीन में जब वह तेजी से चल रहे थे, तो प्यास का जोर होना स्वाभाविक था। पहली बार में साइस के वक्त पानी की अधिकता ने पृथ्वीसिंह को मुश्किल में डाला था और अब एक-दो मील दौड़ने के बाद कड़ी प्यास लगी हुई थी। वहाँ पानी का बिलकुल पता न था। चाँदनी रात में वह आस-पास काफी दूर तक देख सकते थे, लेकिन स्थान बिलकुल सुनसान, बियाबान था। रेल की लाइन को वह पहले ही दूर छोड़ चुके थे, और अब रास्ते का पता लगाना मुश्किल था। उन्होने अन्दाज से एक दिशा में चलना शुरू किया। दो बार सड़को की चौमुहानी मिली। आगे एक कुँआ मिला। वह बहुत गहरा था। पानी निकालने का कोई साधन न था। कुँए के पास एक गड्हा था, जो चाँदनी मे पक ही पक से भरा मालूम होता था। लेकिन हाथ से छूने पर मालूम हुआ कि अगुल, आध अगुल पानी है। उन्होने चारो हाथो-पैरों के बल जीभ से चाट कर प्यास बुझाने की कोशिश की और फिर चल पड़े।

अबकी बार भेष खतरे का नही था। उनके शरीर पर पाजामा, कुर्ता और पगडी थी, जिसके साथ काली लम्बी दाढ़ी भद्र वेष को प्रकट करती थी और कोई सन्देह करने का वहाँ चिन्ह न था। सबेरे ४ बजे तक वह चलते गये, तब उन्हे एक पक्की सड़क मिली। आध घटा और जाने पर उन्हे मील का पत्थर मिला, जिस पर लिखा था, अमरावती दो मील। अभी भी उनको सन्देह था, लेकिन आगे "अमरावती एक मील" मिला। अब अमरावती भी नजदीक थी और सूर्योदय भी। सबसे ज्यादा चिन्ता हुई किसके पास जाये। उसी तरह चलते-चलते वह शहर के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंच गये। एक बड़े हाल के दरवाजे पर एक साइन बोर्ड टँगा हुआ था। एककमरे मे रोशनी दिखलाई पड़ रही थी, उसके भीतर एक विद्यार्थी

था। पृथ्वीसिंह सीधे उसके पास गये और कहा कि मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ। उसने एक भी सवाल नहीं पूछा और ज़रा सा इन्तज़ार करने के लिए कहा। ज़रा सी प्रतीक्षा के बाद तरुण कपड़ा पहनकर बाहर निकल कर बोला, "मैं क्या मदद कर सकता हूं ?" पृथ्वीसिंह ने कहा, "मेहरबानी करके मुझे शहर के सबसे सच्चे देशभक्त के पास ले चलो; मैं बहुत जरूरी काम से आया हूं।"

उसने फिर कोई सवाल नहीं किया और पृथ्वीसिंह को साथ लेकर चल दिया। दोनों एक बड़े मकान पर गये, लेकिन मालूम हुआ कि मकान मालिक बाहर गया हुआ है। पृथ्वीसिंहने कहा, कि अच्छा तो दूसरे सच्चे देशभक्त के पास ले चलो।" वहां भी वही बात हुई। तीसरी जगह मकान–मालिक को अनुपस्थित देखकर पृथ्वीसिंह को कुछ निराशा सी हुई। उन्होंने फिर तरुण से कहा, "अच्छा, क्या इन तीनों के अतिरिक्त और भी कोई है ?" उसने जरा देर सोचकर कहा, "हां, डाक्टर वरहाडपांडे गृहपति घर पर थे।" किवाड़ पर दस्तक लगाते ही वह बाहर चले आये। पृथ्वीसिंह ने कहा, "क्या आपही का नाम डाक्टर पांडे है।" उत्तर मिला, "हां।" पृथ्वीसिंह ने तरुण को धन्यवाद दे विदा किया। तरुण दो घन्टे तक पृथ्वीसिंह के साथ घूमता रहा। उसे यह भी नहीं मालूम कि यह दाढ़ीवाला अजनबी आदमी किस लिए यह सब कुछ कर रहा है। तब भी उसने कोई सवाल नहीं पूछा। डाक्टर को इतने सवेरे एक अजनबी आदमी को देखकर कौतूहल होना जरूरी था। उन्होंने बैठने के लिए कहा और पृथ्वीसिंह के चेहरे की ओर देखने लगे। तब भी उन्होंने कोई सवाल नहीं किया। पृथ्वीसिंह ने बिना पूछे अपनी सारी कथा कह सुनायी। वह चुपचाप सब सुनते रहे और अन्त में बोले— "अच्छा, मैं आप के लिए क्या कर सकता हूं ?" पृथ्वी सिंह ने कहा, "एक कैंची और अच्छा सा अस्तुरा लाइये।" वह दोनों चीज ले आये। फिर कहा, "अब हज्जाम बन जाइये।" दाढ़ी और केश सफाचट कर दिये गये। डाक्टर ने फिर पूछा, "अब क्या ?" "एक जोड़ा कपड़ा लाइये।" वह भी आगया। पृथ्वीसिंह खद्दर के उस धोती-कुर्ते में असहयोगी बन गये, डाक्टर ने फिर पूछा, "अब क्या ?" "इन सारे कपड़ों को जला दीजिए, हो तो एक जोड़ा चप्पल दीजिए।" चप्पलेंभी आ गयीं। एक घन्टे के भीतर ही पृथ्वीसिंह बिल्कुल दूसरे बन गये। जिस वक्त यह

नेपथ्य परिवर्तन हो रहा था, उस वक्त डाक्टरने कोई और बात न की। अब उन्होंने पूछा—"तुम्हें जाना कहाँ है और कैसे जानेका प्रबन्ध करोगे ?" यह सवाल मुश्किल था। घर की चीज़ों को देखकर पृथ्वीसिंह जान सकते थे कि डाक्टर ग़रीब हैं। संकोच करते हुए भी उन्हें कहना पड़ा कि मुझे बम्बई का टिकट चाहिए। डाक्टर के पास एक भी रुपया न था। डाक्टर ने कहा, "मेरे पास रुपया नहीं है, लेकिन अपने दोस्त से मांगने जा रहा हूं।"

शायद तड़के ही रुपये की क्या ज़रूरत है, यह सवाल दोस्त ने किया हो अथवा डाक्टरने अपने दोस्तों को क़ाफी विश्वासपात्र समझा हो, उन्होंने साहसी तरुण की सारी कथा कह सुनायी। मित्र डॉक्टर की बात पर विश्वास करने को तैयार न था। उसने कहा, "यह बिल्कुल असम्भव है। सी. आई. डी. का जाल है। वह जरूर तुम्हें किसी राज-नीतिक मुक़दमें में फंसाना चाहता है।" डाक्टर ने कोई तर्क-वितर्क नहीं किया। उन्होंने कहा, "मैं नवागन्तुक पर पूरा विश्वास करता हूं। उस आदमी की आँखें ही बतलाती हैं कि वह सत्य बोल रहा है। तुम उसे एक बार अपनी आँखों से देखो तो।" डॉक्टर पृथ्वी सिंह को उनके पास ले गये। उनके मित्रने बात—चीत नहीं की, सिर्फ दूरसे देखा। बम्बई जाने के लिए रुपया मिल गया। डाक्टर उन्हें ट्रेन पर बैठा आये। ट्रेन पर लोगों को कहते सुना कि पुलिस किसी भगोड़े क़ैदी की तलाश में है। पृथ्वी सिंह का चेहरा बदल चुका था।

बम्बई में

बम्बई जाते वक़्त ट्रेन भुसावल से गुजरी। पुलिस वाले हर कम्पार्ट-मेन्ट में झांक-झांककर देख रहे थे। पृथ्वीसिंह ने देखा कि राजमहेन्द्री का एक हवलदार भी ढूंढनेमें लगा हुआ है, लेकिन यहाँ वह पृथ्वी सिंह था कहाँ !

बम्बई में उनका कोई परिचित नहीं था और न उन्होंने डाक्टर पाण्डे से किसी के लिए परिचय पत्र लिया था। उन्होंने अंडमान में सुने एक सज्जन के पास जाने का निश्चय किया लेकिन बम्बई जैसे शहर में बिना पते के सिर्फ नाम से ढूंढ निकालना मुश्किल था। संयोग कहिए, उन्होंने जिस आदमी से उक्त सज्जन का घर पूछा, वह उन्हें

उनके आफिस पर छोड़ आया। आफिस से घर जाने में कोई दिक्क़त न हुई। अच्छा सुन्दर मकान था। देखने से ही मालूम होता था कि यहां लक्ष्मी का निवास है। पृथ्वीसिंह ड्राइंग रूम में बैठा दिये गये। चन्द मिनटों के बाद उक्त सज्जन दूसरे कमरे से उनके पास पहुंचे।

पृथ्वीसिंह के वस्त्र बिल्कुल मामूली थे, जिसका उस घर की सजावट से बिल्कुल विरोध था। उक्त सज्जन इन्हें भी डॉक्टर कह लीजिए के सोने का वक़्त था। रात बहुत बीत चुकी थी। डॉक्टर आकर सोफ़े पर बैठ गये। पृथ्वीसिंह को चन्द मिनटों तक कुछ समझ में नहीं आ रहा था, कि कैसे बात शुरू करें। डॉक्टर ने ही पहले शुरू कर दी और पूछा, "इतनी रात को किस काम से मेरे पास आये ?" पृथ्वीसिंह को कुछ हिम्मत हो आयी उन्होंने कहा, "क्या मैं आपके नज़दीक आकर बैठ सकता हूं ?" एक क्षण के लिए भी बिना रुके, मुस्कराते हुए डॉक्टर ने कहा, "हाँ जरूर आइये, यहाँ बैठिए ! "

पृथ्वीसिंह ने शुरू किया, "मेरा नाम है पृथ्वीसिंह है। मैं अंडमान में था। २९ नवम्बर को चलती गाड़ी से भागा हूं। किसी तरह कपड़े बदलकर यहाँ तक पहुंचा हूं। अब आपकी मदद चाहता हूं। हम दोनों एक दूसरे से अपरिचित हैं। मैंने आपका नाम सुना था और किसी तरह ढूंढ़ते-ढूंढ़ते यहां पहुंच गया हूं।" डाक्टर बड़े ध्यानसे पृथ्वीसिंह की कथा सुन रहे थे। कथा समाप्त होते ही उन्होंने बड़े अकृत्रिम भावसे कहा, "आपका स्वागत है।"

पृथ्वीसिंह के भागने की ख़बर अख़बारों में पहले ही छप चुकी थी।

खानेका समय ख़तम हो चुका था। डॉक्टर ने नौकर को भेजकर कुछ मिठाई मँगवायी और यह कहकर डॉक्टर वहाँ से बाहर चले गये कि आप इतमीनान से खाइये।

डॉक्टर के बाहर चले जाने से पृथ्वीसिंह के मन में कुछ खटका ज़रूर होने लगा, मगर उन्होंने अपने मन की लानत मलामत की।

घन्टा भर बीत जाने के बाद डाक्टर लौटकर आये। उनके साथ एक सुन्दर तरुण था। उन्होंने तरुण से परिचय कराया। एक क्रान्तिकारी की सहायता करना तरुण अपने सौभाग्य की बात समझता था। डाक्टर का स्थान सुरक्षित न था, इसलिए तरुण उन्हें एक सुरक्षित स्थान में ले गया। ऐसे पक्के और तजर्बेकार क्रान्तिकारी को पाकर तरुण

अपने हृदय के भावों को रोक न सका। उसने देश के लिए मरने-जीने की सारी उमंगों को उनके सामने रख दिया। यह जगह गिरगांव थाने के पास थी। पृथ्वीसिंह सवेरे-शाम कान्स्टेबिलों को अपनी ड्यूटी पर जाते देखते थे। दो और स्थान बदले गये। वह जिस तीसरे तरुण के स्थान पर गये, उसका चचा सी. आई. डी. में काम करता था। वह भी ख़तरे की जगह थी।

डाक्टर ने बम्बई को सुरक्षित नहीं समझा। अब उन्हें बेलगांव भेजने का निश्चय हुआ। पूना होते हुए वह बेलगांव पहुंचे। पता उनको मालूम था। सीधे वह वहाँ पहुंच गये। यह एक लम्बे-चौड़े हाते के भीतर बड़ा सा बंगला था, जिसे देखने से ही मालूम हो जाता था कि, यह एक सुरुचि रखने वाले किसी धनी का मकान है। पृथ्वीसिंह के पास कोई परिचय-पत्र नहीं था। लेकिन गृहपति को उनके आने की ख़बर मिल चुकी थी और उन्होंने स्टेशन पर एक आदमी को भेज दिया था। आदमी ने समझा होगा कि चकित आँखों को देखकर वह आने वाले आदमी को पहचान लेगा, लेकिन चकित आँखें ही तो पुलिस को भेद बतलाती हैं। पृथ्वीसिंह ऐसे आये जैसे बेलगांव ही के पुराने बासी हों।

देर होते देख गृहपति को कुछ चिन्ता होने लगी थी। इसी वक़्त पृथ्वीसिंह कपड़ों की गठरी लिए बंगले के भीतर दाखिल हुए। गृहपति को बहुत सन्तोष हुआ और यह जानकर पृथ्वीसिंह को उनसे भी अधिक सन्तोष हुवा, कि गृहपति बहुत कुशल है। रात ही को दोनों ने भविष्य के प्रोग्राम पर विचार किया। यद्यपि गृहपति के ऊपर पुलिस को सन्देह नहीं था, तो भी जगह खतरे की थी और अन्त में यही तै हुआ कि यहां रहना अच्छा नहीं है।

भावनगर में (१९२३—३०)

पृथ्वीसिंह को फिर बम्बई आना पड़ा। पहले के परिचित क्रान्तिकारी तरुण और दूसरों से बहुत सलाह-मशविरा हुआ। अन्त में यही तै हुआ कि पृथ्वीसिंह का भावनगर में ही रहना ठीक होगा। हाँ, अब वहाँ उन्हें क्रान्तिकारी के तौर पर नहीं, एक साधारण आदमी की तरह परिचय देना होगा।

आख़िर एक शाम पृथ्वीसिंह भावनगर पहुंच गये। काम था लड़कों

को अखाड़ा, कुश्ती, शारीरिक व्यायाम सिखलाना। पृथ्वीसिंह अब तीस साल के थे। उनका शरीर खूब स्वस्थ और बलिष्ठ था। वहां रहते हुए उन्होंने देखा कि एक बगीचे में लाल सिन्दूर से रंगी हनुमान की मूर्ति के पास बैठकर लड़के शाम को स्तुति करते थे। पृथ्वी सिंह ने न अपने शैशव में, न बर्मा में ही इसे देखा था। उनको लड़कों की हनुमान-भक्ति बहुत पसन्द आयी और कुछ ही समय बाद पृथ्वीसिंह ने लड़कों के लिए हनुमान का एक छोटा सा मन्दिर खड़ा कर दिया।

पृथ्वीसिंह का स्वभाव बहुत ही मधुर है। कभी-कभी वह क्रोध में पागल भी देखे गये, मगर वहीं जहां कि आत्म-सम्मान ख़तरे में पड़ता दिखलायी पड़ता। भावनगर से हजारों नर-नारी, बच्चे-बूढ़े उनके सम्पर्क में आये और सभी को उनके मधुर स्वभाव ने अपने स्नेह में बांध लिया। उनका काम बच्चों की शिक्षा-दीक्षा था। बच्चों को बहुत नज़दीक से देखकर उन्होंने समझा कि यह भोला-भाला स्वभाव कितना अच्छा है। भावनगर में भी उन्हें एक घनिष्ट मित्र मिला। कुछ ही समय के परिचय के बाद मित्र ने सोचा कि ऐसे आदमी को भावनगर से जाने नहीं देना चाहिए। पृथ्वी सिंह का जीवन बहुत सीधा-साधा था। उनकी आवश्यकताएं बहुत कम थीं। मित्र ने अपने दोस्तों से किसी काम के ढूंढ़ निकालने को कहा, किसी ने पूछा, "आप अपने दोस्त के लिए क्या काम चाहते हैं।" मित्र ने जवाब दिया, "चपरासी से लेकर हाकिम तक।"

अध्याय ९

काठियावाड़ में व्यायाम शिक्षक

पृथ्वी सिंह के दोस्त वैशंपायन की एक समाज सेवक के तौर पर भावनगर में बड़ी प्रसिद्धि थी। नगर के प्रमुख व्यक्ति उनका सम्मान करते थे। श्रीयुत गोपाल जी भाई ठक्कर ने एक दिन उनसे कहा कि हमारे 'सनातन धर्म हाई स्कूल' के लिए एक व्यायाम शिक्षक ढूंढ़ दीजिए। मित्र ने पृथ्वी सिंह से कहा। दूसरे दिन उन्हें हेडमास्टर के पास जाना था। ठक्कर ने पृथ्वी सिंह के मित्र से तनख्वाह के बारे में जब पूछा, तो उन्होंने जवाब दिया, "आप उनकी योग्यता के अनुसार नहीं दे सकते, आप अपनी योग्यता के अनुसार दे दीजियेगा।"

यू. पी. वालों को गुजरात और महाराष्ट्र के लोग भइया कहते हैं। भइया लोग मेहनत-मजूरी का काम करते हैं, इसलिए उनकी नज़र में 'भइया' का अर्थ है, छोटा आदमी। बाजार में भइया की कीमत बहुत कम होती है। इसलिए स्कूल वालों ने यू. पी. के इस भइया को १५) मासिक देना बहुत काफ़ी समझा। खद्दर की धोती और कुर्ता पहिने पृथ्वीसिंह भी छगनलाल दवे हेडमास्टर के पास पहुंचे और बड़ी नम्रता से सलाम किया। घण्टी बजी और उनसे कहा गया कि एक अध्यापक आ रहे हैं, उनके साथ जाना। हेडमास्टर के कमरे में बहुत सी खाली कुर्सियां पड़ी थीं, लेकिन भइया को कुर्सी की क्या जरूरत! अध्यापक के आने तक भइया को उसी तरह खड़ा रहना पड़ा।

अध्यापक उन्हें व्यायाम-गृह में ले गये। भइया ने कई तरह की कसरत दिखलायी। अध्यापक सन्तोष राम भट्ट बम्बई विश्वविद्यालय के बी. एस. सी. थे और उनको स्काउटिङ्ग में बहुत दिलचस्पी थी। वह अपनी टूटी-फूटी भइया-बोली-हिन्दी में विस्तार के साथ व्यायाम के बाबत उन्हें बतलाने लगे। हिन्दी बोलने में उन्हें दिक्कत होने लगी। पृथ्वीसिंह गुजराती जानते नहीं थे, इसलिए उन्होंने अध्यापक को अंग्रेजी में समझाया, पहला वाक्य जैसे ही खतम हुआ, भट्ट आश्चर्य से उनकी ओर देखते हुए बोले, "चलिये हेडमास्टर के आफिस में चलें।" पृथ्वीसिंह

को इसका कारण नहीं मालूम हुआ कि क्यों बात को ख़तम किये बिना चलने को कह रहे हैं। पृथ्वीसिंह का हाथ पकड़कर वह हेडमास्टर के कमरे में ले चले और बोले, "यह तो कोई ग्रेजुएट मालूम होते हैं।" हेडमास्टर तुरन्त कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए और हाथ मिलाते हुए उनसे बैठने के लिए कहा। बहुत अफ़सोस प्रकट करते हुए हेडमास्टर दवे बोले, "हमने समझा था कि आप एक मामूली भइया हैं, इसीलिए हमने पन्द्रह रुपया महीना देने का निश्चय किया था। कृपया कल आइए।"

पृथ्वीसिंह रास्ते भर सोचते आ रहे थे। वह अनुभव करने लगे कि उन्होंने अंग्रेजी बोलकर अच्छा नहीं किया; और तो और, अब शायद काम भी नहीं मिलेगा।

दूसरे दिन जब पृथ्वीसिंह हेड मास्टर के पास पहुँचे तो उनके दिल में आशा बहुत कम रह गयी थी; लेकिन हेड मास्टर ने बड़ी नर्मी के साथ कहा—"हमारी संस्था धनी नहीं है, इसलिए हम आपकी योग्यता के अनुसार वेतन नहीं दे सकते। आप समाज-सेवक मालूम पड़ते हैं, इसलिए आशा है कि आप हमारे ३०) मासिक को स्वीकार करेंगे और अपराह्न में बालकों को एक घंटा व्यायाम की शिक्षा देंगे।"

पृथ्वीसिंह को बहुत प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन से उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया।

पृथ्वीसिंह का शरीर देखने से ही मालूम होता था कि वह पहलवान हैं, लेकिन सिवाय दंड-बैठक के वह और कोई व्यायाम नहीं जानते थे और यहाँ बने थे व्यायाम–शिक्षक वह अपने दिल में अपनी कमज़ोरी को खूब महसूस करते थे। स्वस्थ शरीर, सुन्दर मुख और सौम्य स्वभाव, उन्हें प्रकृति की ओर से मिला था, मगर यही तीन गुण व्यायाम–शिक्षक के लिए काफ़ी नहीं हैं। अब उन्होंने पुस्तकों को अपना गुरू बनाया और शारीरिक व्यायाम, शारीरिक स्वास्थ्य, शरीर शास्त्र के बारे में ज्ञान प्राप्त करना शुरू किया। कभी-कभी वह परेड के मैदान में चले जाते और सिपाहियों की कसरत को अच्छी तरह देखते। भूख हड़ताल छोड़ बाक़ी समय अंडमान में वह रोज़ दंड-बैठक किया करते थे, जिससे उनकी छाती का खूब विकास हुआ था। रग पट्ठे भी खूब उभड़े हुए थे। जांघिया में उनके शरीर को देखकर भला कौन कह सकता था कि, वह अच्छे व्यायाम शिक्षक नहीं हैं? अब तक उन्हें और

व्यायाम क्रियाओं के बारे में मालूम नहीं था, तब तक वह अपनी छाती, बाजू, जांघ, पिंडली और रग पट्ठे को दिखला कर अपनी जानी हुई कसरतों को बतलाते और जब उनका ज्ञान और बढ़ा तो शिक्षा में भी नयी बातें शामिल कीं।

काठियावाड़ में शारीरिक व्यायाम का बहुत कम रिवाज है। पृथ्वीसिंह ने बहुत जल्दी तरुणों में व्यायाम के प्रति आकर्षण पैदा किया। उन्होंने आवाज उठायी कि तरुणों का स्वास्थ्य सबसे बड़ा धन है, व्यायाम के बिना काठियावाड़ इस धन को बड़ी तेज़ी से खो रहा है। उनके पुराने मित्रों ने भावनगर के प्रभावशाली आदमियों को व्यायाम शिक्षा को सहायता देने के लिए प्रेरित किया। स्कूल में जो वह समय देते थे, उसके बाद का समय वह दूसरे तरुणों की व्यायाम-शिक्षा में लगाते थे। चन्द महीने बीतते-बीतते व्यायाम के आन्दोलन के लिए सुन्दर वातावरण पैदा हो गया।

तरुण व्यायाम की बहुत सी बातें जानना चाहते थे, लेकिन पृथ्वीसिंह की पूंजी बहुत थोड़ी थी।

हां, यहां एक बात कहना भूल गये, जब महीने की तनख़्वाह लेने के बाद चपरासी ने पृथ्वीसिंह को रजिस्टर पर दस्तख़त करने के लिए कहा तो उनके सामने नाम का सवाल आया। उन्होंने कलम उठाकर स्वामी-राव लिख दिया। उन्हें यह ख्याल नहीं आया कि यू. पी. के भइयों में "स्वामी" नाम शायद ही कहीं मिले, मगर 'राव' तो वहां छप्पन जन्म ढूंढने पर भी न मिलेगा; खैर! गुजरात काठियावाड़ के लिए तो पृथ्वीसिंह अब स्वामीराव ही बन गये, जिसे उनकी साधु बह्मचारी वृत्ति को देखकर लोगों ने "स्वामी" बना दिया।

स्वामीराव के मित्र नासिक के प्रसिद्ध व्यायाम-आचार्य, के. बी. महाबल से घनिष्ट परिचय रखते थे। उनके साथ बात-चीत करके इन्तज़ाम किया गया कि वह व्यायाम के बड़े विद्यार्थियों को कुछ व्यायाम सिखाएं। महाबल अपने पुत्र और दो शिष्यों के साथ भावनगर आये। स्वामीराव ने लाज-संकोच छोड़ा और खुद भी विद्यार्थियों में शामिल हो गये। उन्होंने कोशिश की कि इस कला को अधिक से अधिक सीखें। लेकिन जेल के संघर्ष-पूर्ण जीवन ने उनके शरीर को उतना लचीला नहीं रहने दिया, इसलिए वह उतने सफल नहीं हो सकते थे जितने कि उनके दूसरे तरुण

शिष्य। महाबल की व्यायाम—विधि और उनकी शिक्षा से भावनगर के शिक्षित तरुणों में व्यायाम के लिए काफी रुचि पैदा हो गयी। छैल-चिकनियां तरुण,जो शारीरिक व्यायाम को नीची निगाह से देखते थे। वे भी अखाड़े की तरफ आकृष्ट हुए। इस सफलता से स्वामीराव का उत्साह इतना बढ़ा कि वह काठियावाड़ के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों पर महाबल को ले गये।

मालिश की कला में निपुणता

गर्मी के दिनों में बम्बई प्रान्त के स्कूलों और कालेजों में ४० दिन की छुट्टी होती है। पुस्तकों को पढ़ने और महाबल जैसे विशेषज्ञों के सम्पर्क में आने से स्वामीराव को व्यायाम—कला की बहुत सी बातों को जानने का मौका मिला। स्वामीराव ने छुट्टियों को इसी काम में लगाना चाहा। महाबल जी ने उन्हें बड़ौदा के व्यायाम-कलाचार्य माणिकराव जी के पास जाने को कहा और खुद वहां चिट्ठी भी भेज दी। स्वामीराव बड़ौदा पहुंचे और जुम्मादादा व्यायाम—मन्दिर के छात्रावास में एक महीने के लिए भर्ती हो गये। माणिकराव जी ने अपने एक निपुण बलिष्ठ शागिर्द के जिम्मे लगाया, जो कुश्ती की कला में बहुत निपुण था। तरुण में खूब बल था और साथ ही दांव का ज्ञान भी, स्वामीराव के शरीर में बल तो था, मगर कुश्ती की कला नहीं थी। तरुण स्वामीराव को एक बच्चे की तरह जैसे चाहता वैसे उलटा-पुलटा देता लेकिन स्वामीराव हताश नहीं हुए। उन्होंने तै कर लिया था कि इस कला को सीखना है। पहली यात्रा में वह बहुत तो नहीं सीख सके, मगर उन्हें इस कला का महत्व मालूम हो गया, साथ ही माणिकराव से परिचय प्राप्त करने तथा उनका शिष्य बनने का गौरव मिला। अब काठियावाड़ में वे स्वामीराव ही नहीं, माणिकराव के शागिर्द भी थे।

स्वयं-सेवक संगठन का अनुभव

थ्योसोफिकल सोसायटी का भावनगर में कोई सम्मेलन होने वाला था, जिसके साथ प्रदर्शनी भी होने वाली थी। सनातन धर्म स्कूल के हेडमास्टर ने विद्यार्थियों को स्वयंसेवक बनने के लिए कहा, लेकिन सफलता नहीं हुई। सम्मेलन के प्रबंधक इसके लिए पुलिस की मदद लेने

की बात सोच रहे थे। स्वामीराव को यह पसंद नहीं आया। उन्होंने हेडमास्टर से कहा कि जरा मुझे हर क्लास में जाकर स्वयं—सेवक बनाने की इजाज़त दीजिए। हेडमास्टर निराश थे, लेकिन उन्होंने स्वामीराव को जाने की इजाज़त दे दी। वह पहले छठे दर्जे के लड़कों में गये। वहां उन्हें जो सफलता हुई, उससे उत्साहित हो वे सातवें दर्जे में गये। वहाँ कोई सज्जन फ़िलासफ़ी और ब्रह्म-विद्या को घोलकर पिलाने में लगे हुए थे। स्वामीराव ने एक शब्द में स्वयं-सेवक बनने के लिए कहा, लेकिन कोई विद्यार्थी तैयार नहीं हुआ। वह हताश नहीं हुए। उन्होंने व्याख्याता से चन्द मिनट बोलने की इजाज़त माँगी फिर कहा, "खद्दर पहिनने और गाँधी-टोपी लगाने का क्या फ़ायदा है, यदि तुम उस संस्था की सामाजिक सेवा करना नहीं चाहते, जहाँ बैठकर तुम विद्यारस का आस्वादन कर रहे हो ?" व्याख्याता गुस्से में बोल उठे, "इसे गाँधी टोपी मत कहो। यह सफेद टोपी है। इसे विद्यार्थियों पर छोड़ दीजिए।" पूछने पर लड़कों ने एक स्वर से कहा, "गाँधी टोपी"। वालंटियर बनने के लिए कहने पर, कई लड़कों ने अपना नाम दिया।

स्वामीराव ने वालंटियरों को एक निश्चित समय पर निश्चित पोशाक और लाठी के साथ बुलाया। दूसरे दिन वर्दीधारी तरुण लाठियां सँभाले पहुंच गये। भावनगर की जनता ने कभी सम्भ्रान्त परिवार के तरुण बच्चों को इस तरह वर्दी पहने, लाठी लिए, परेड करते नहीं देखा था। कुछ प्रमुख नागरिक यह कह आलोचना करते थे, "आमाणस शा माटे नाना छोकराओंना हाथ माँ बाँसड़ा आपे छे ?" (यह आदमी छोटे बच्चों के हाथ में क्यों बांस दे रहा है ?) लड़के भी पहले कुछ शर्माते से मालूम होते थे। खासकर लाठी की जरूरत को तो न हेडमास्टर ही समझते थे और न गोपाल जी भाई ही। सम्मेलन के बाद शाम को प्रदर्शनी में जाने के लिए बड़ी भीड़ थी। कुछ शरारती फाटक पर जमा हो गये थे और वह गड़बड़ी मचाने के लिए तैयार थे। कुछ फ़ौजी सिपाही भी उनके साथ हो बिना टिकट ही प्रदर्शनी के भीतर घुसना चाहते थे। टिकट सिर्फ चार आना था।

स्वामीराव लड़कों को फाटक पर तैनात कर खाना खाने गये थे। उनके पास ख़बर पहुंची। वह दौड़े आये। प्रबंधकों से पूछने पर उन्होंने कहा, "जैसे हो वैसे प्रदर्शनी की रक्षा करनी चाहिए।" स्वामीराव ने

अपने अखाड़े वाले नौजवानों को लाठी लेकर आने के लिए कहा। सारे के सारे वहां पहुंच गये। अखाड़िया तरुणों को लाठी ले खड़े देखकर शरारती वहां से रफूचक्कर हो गये।

स्वामीराव भावनगर के तरुणों और उनकी वजह से वृद्धों में भी बहुत प्रिय होते जा रहे थे, क्योंकि व्यायाम की रुचि फैलाकर उन्होंने सचमुच तरुणों के स्वास्थ्य में भारी परिवर्तन किया था। साथ ही उनके रहन-सहन और सादे जीवन ने बहुतों के दिल में श्रद्धा पैदा कर दी। वह व्यायाम ही नहीं, खद्दर के भी बड़े भक्त थे। उन्होंने देखा, स्कूल के अध्यापकों और विद्यार्थियों में खद्दर पहिनने वाले बहुत कम हैं। हेडमास्टर से कहने पर उन्होंने उन्हें सबकी सभा में बोलने की इजाजत दी। खड़े तो हुए सिर्फ़ खद्दर का गुण गाने को, किन्तु उसमें भारत माता की गरीबी परतन्त्रता आदि कितनी ही बातें बड़े करुण ढंग में कह डालीं। बोल जाने के बाद स्वामीराव को अपनी ग़लती मालूम हुई। श्रोताओं में बहुत से उन्हें और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे, "देखो इस आदमी को, जिसने देश के लिए अपने सुख और आराम को ठुकरा दिया।" कोई-कोई कह रहे थे, "क्या बात है, जो इतना शिक्षित और संस्कृत व्यक्ति ३० रुपल्ली की नौकरी करता है? जरूर इसमें कोई रहस्य है।" कुछ राजनीतिक-कर्मी तो समझने लगे कि यह जरूर कोई सरकार का खुफ़िया है।

एक शपथ

स्वामीराव ने भावनगर में बच्चों के क्रीड़ा-मण्डल से अपना काम शुरू किया था। क्रीड़ा-मण्डल था, कुश्ती और कसरत के लिए। अखाड़े को जिस रूप से उन्होंने पाया था, वह था सौ फुट लम्बा, सौ फुट चौड़ा एक खुला स्थान, जो एक बाग के भीतर स्थित था। अखाड़े के एक ओर कुआं था और एक कोने पर सिन्दूर से रंगी हनुमान की मूर्ति। यहीं बारह फुट लम्बी, बारह फुट चौड़ी जगह को खोदकर कुश्ती की जगह बनाली गयी थी। अखाड़े में कुछ लाठियां कुछ मुग्दर थे, जिसे माली के जिम्मे छोड़ आते थे।

एक शाम को स्वामीराव अखाड़े की ओर गये, दूर से ही देखा, कुछ लड़के झाड़ू लेकर अखाड़े को साफ कर रहे हैं और दूसरे तमाशा

देख रहे हैं। स्वामीराव को यह खयाल आसानी से आ सकता था कि हाथ का काम सभी को करना चाहिए, मगर इस वक्त उन्हें यह भी खयाल आया, इस जगह को कुछ और बेहतर रूप देना चाहिए, ताकि लड़के जिस काम के लिए आते हैं, उस काम में उनका समय ज्यादा लगे। उन्होंने निश्चय किया कि क्रीड़ामण्डल या अखाड़े को एक सुन्दर रूप देना होगा।

दूध और चीनी स्वामीराव का प्रिय भोजन था। उन्होंने तय किया कि जब तक क्रीड़ामण्डल को सुन्दर रूप न दे लेंगे, तब तक दूध-चीनी हराम है। यह प्रतिज्ञा स्वामीराव ने बच्चों के सामने ली थी। इसकी सूचना उनके माता-पिताओं के पास भी पहुंची, लेकिन कोई सहायता नहीं कर सका। छः महीना बीते, स्वामीराव अठारह पौण्ड घट गये, लेकिन अभी भी कोई रास्ता नहीं निकला। इसी समय नये महाराज कृष्ण कुमार सिंह की गद्दी हो रही थी। उत्सव बड़ी शान-शौकत से मनाया जाने वाला था। उस वक्त शिक्षा विभाग के अध्यक्ष ने स्वामीराव को भी व्यायाम प्रदर्शन करने के लिए कहा। प्रदर्शन में महाराजा और उनके दीवान, सर प्रभाशंकर पट्टानी भी आये। स्वामीराव के क्रीड़ामण्डल के प्रदर्शन को देखकर वह इतने प्रसन्न हुए कि, सर प्रभाशंकर ने वहीं हुकुम पास किया कि अखाड़े के लिए स्वामीराव को एक सुन्दर जगह दी जाय। क्रीड़ामण्डल को मोती बाग़ में एक जगह दी गयी। माली को हुकुम हुआ कि बड़े वृक्षों की जड़ों के पास फूल वाले पौधे लगाये जाएं, जिससे अखाड़े वाले तरुण सुगंधित हवा में सांस लें। अखाड़े के ऊपर छत भी पड़ गयी, कसरत के सामान भी काफ़ी खरीद लिये गये। माणिकराव जी से प्रार्थना की और उन्होंने अपने एक तरुण शागिर्द बहाउद्दीन उस्मान शेख को स्वामीराव का सहायक बनने के लिए भेज दिया। क्रीड़ामण्डल सचमुच ही अब भावनगर की एक उपयोगी ही नहीं, सुन्दर और प्रसिद्ध संस्था बन गयी। क्रीड़ामण्डल के प्रारम्भ करने वाले थे स्वामीराव के मित्र, गणेश रघुनाथ वैशम्पायन, अब स्वामीराव ने उसका नाम रख दिया गणेश क्रीड़ामण्डल।

• • •

स्वामीराव लड़कों में जितने प्रिय थे, उतने ही अध्यापकों में अप्रिय। कारण था, उन्हें वह अपनी ही तरह चुस्त देखने के लिए उनकी नुक्ताचीनी

करते थे। एक दिन उनकी असिस्टेन्ट हेडमास्टर से व्यायाम के सिलसिले में बहस छिड़ गयी। अध्यापक कह रहे थे कि सर प्रभाशंकर पट्टानी जिन्दगी के लिए व्यायाम की कोई ज़रूरत नहीं समझते। स्वामीराव ने जवाब दिया, "सर प्रभाशंकर जैसा आदमी कभी ऐसा कह नहीं सकता, यदि कहे भी तो मेरे लिए उसका कोई मूल्य नहीं। वह एक चतुर शासक हो सकते हैं, लेकिन व्यायाम के विशेषज्ञ और डाक्टर नहीं हैं।"

अध्यापक गुस्से में आकर बोला, "तो तुम सर प्रभाशंकर से भी अपने को ज़्यादा होशियार समझते हो?"

"हाँ, जहाँ तक कि व्यायाम का सम्बन्ध है।"

अध्यापक ने इस पर गाली निकाली स्वामीराव उठ खड़े हुए और उनके लाल चेहरे को देखकर अध्यापक भाग गया। कुछ दूर पीछा किया, मगर फिर अपने को संभाला। हेडमास्टर को इसकी कोई सूचना नहीं दी और स्कूल छोड़कर चले आये। गोपाल जी भाई ने बहुत कोशिश की लेकिन स्वामीराव फिर लौटकर नहीं गये।

स्वामीराव जब भावनगर पहुंचे, तभी दक्षिणामूर्ति विद्याभवन के कामों को सुनकर उसकी ओर आकृष्ट हुये। स्कूल छोड़ने के बाद भवन के नज़दीक सम्पर्क में आने का उन्हें मौका मिला और वह भवन में व्यायाम की शिक्षा देने लगे। पीछे इतिहास और भूगोल भी पढ़ाने लगे। वह हिन्दी नहीं समझ सकते थे, इसलिए स्वामीराव गुजराती में बोलने की कोशिश करते; जिसमें काफी ग़लतियाँ होतीं और विद्यार्थियों का मनोरंजन होता। दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी-भवन में कितने ही उच्च आदर्श के अध्यापक कार्य करते थे। स्वामीराव का संबन्ध उनसे और घनिष्ट होता गया। पीछे हाथों में घाव हो जाने से अस्पताल जाना ज़रूरी हुआ और इस तरह भवन से सम्बन्ध छूट गया।

० ० ०

स्वामीराव ने अपने को छिपाने की पूरी कोशिश की थी, लेकिन वह एक सजीव पुरुष थे, इसलिए चौबीसों घन्टे आत्म-गोपन करना मुश्किल था। किसी न किसी वक़्त उनकी प्रतिभा झलक जाती और उनके बर्ताव से लोगों को यह भी मालूम होता कि इतना योग्य आदमी क्यों इस तरह इतना मामूली जीवन बिता रहा है। उस वक़्त वह

सरदार पृथ्वीसिंह सभा में भाषण करते हुये
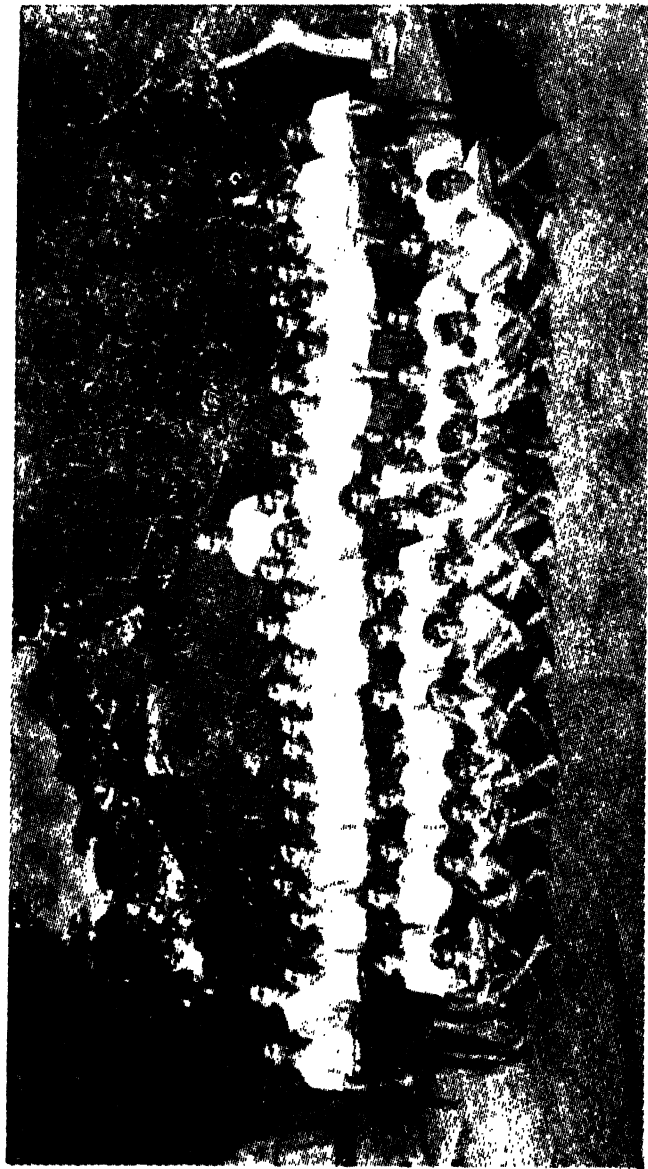
सरदार पृथ्वीसिंह अपने विद्यार्थियों के साथ

अपने एक सहकारी अध्यापक के साथ एक मकान में रहते थे। रात को वह बेधड़क सोये हुये थे। अध्यापक ने आकर उन्हें जगाया और कठोर शब्दों में कहा, "तुम सरकारी जासूस हो। मेरे जैसे देश-प्रेमी के घर में तुम नहीं रह सकते।" स्वामीराव कैसे अपनी सफ़ाई देते? लेकिन वह ऐसी बातों के लिए तैयार थे। उन्होंने अपना बिस्तरा समेटा और मुस्कराते हुए उसी रात उस घर को छोड़ दिया।

एक दिन विद्यार्थियों के साथ (स्वामीराव) टहलने जा रहे थे। रास्ते में सामने से पाँच साधु आ रहे थे। वे बहुत हट्टे-कट्टे उत्तरी भारत के रहने वाले थे। खादी का कपड़ा और गाँधी-टोपी पहिने गुजरातियों को देखकर उन्होंने महात्मा गाँधी को गाली देना शुरू किया। गाली को भी शायद किसी साधु ने दोहा में जोड़ रक्खा था। काठियावाड़ी विद्यार्थियों ने तो नहीं समझा, लेकिन स्वामीराव समझ रहे थे। स्वामीराव ने उनसे पूछा, "बाबा आप क्या गाना गा रहे हैं?"

"जो भी हमारी मर्ज़ी।"

"मैं भी आपके गाने को सुनना चाहता हूँ।" उन्होंने महात्मा जी के प्रति गंदी गालियों से भरे एक दोहे को सुनाया। स्वामीराव इसे बर्दाश्त नहीं कर सके। उन्होंने ज़ोर से कहा, "आपने गाँधी जी को गाली दी;" अब मैं कहता हूँ कि तीन बार 'महात्मा गांधी की जय बोलो।' साधु भला क्यों मानने लगे। उन्होंने मज़ाक उड़ाया। स्वामीराव का डंडा उनके एक विद्यार्थी बालजी पटेल के पास रहता था। उन्होंने बाल जी को डंडा लाने को कहा। मुसटंडे साधुओं ने हँसते हुये कहा, "हम तुम्हारे डंडा दिखलाने से डर जायेंगे?" स्वामीराव ने कहा, "अच्छी बात, मैं डंडा नहीं दिखलाऊँगा। अब तुम सजग हो जाओ।" उन्होंने सबसे तगड़े साधू को जाकर गर्दन से पकड़ा, और कहा, "अब मैं तुम्हें ज़मीन पर पटकने जा रहा हूं। तुमसे जो बने करो।" हाथ के पकड़ने ही से साधू को पता चल गया कि आदमी में कितना बल है। उसने ज़रा भी देर किये बिना चिल्ला दिया, "महात्मा गांधी की जय।" उसके साथियों ने भी अनुकरण किया। स्वामीराव

के साथ-साथ सौ विद्यार्थी चल रहे थे, उनके लिए यह अच्छा मनोरंजन रहा।

° ° °

स्वामीराव को रहने के लिए एक मकान की तलाश थी, लेकिन वह किराया नहीं दे सकते थे। किसी दोस्त ने कहा कि शहर से बाहर किन्तु दक्षिणामूर्ति भवन के नजदीक ही एक अच्छा बँगला ख़ाली पड़ा है। यह बँगला किसी भक्त ने एक जैनी साधु के लिये बनवाया था। साधु बहुत दिन नहीं रह सका और उसी बंगले में उसकी मृत्यु हो गयी। शहर में मशहूर हो गया कि उस बँगले में भूत रहता है। कोई उस बँगले में रहने के लिये तैयार नहीं होता। स्वामीराव को कभी भूत पर विश्वास नहीं था। बँगला देखने पर उन्हें पसन्द आया। उन्होंने मालिक से रहने की इजाजत माँगी और उसने बड़ी ख़ुशी से इजाजत दे दी। दोस्तों को जब मालूम हुआ तो उन्होंने स्वामीराव को बहुत समझाया और अपने घरों में रखना चाहा, लेकिन स्वामीराव भूतों का तमाशा देखने के लिये तुले हुये थे।

स्वामीराव अपना बिस्तरा, चारपाई और एक लालटेन ले भूतों वाले बँगले में पहुँचे। गर्मियों के दिन थे, उन्होंने अपनी चारपाई बाहर आसमान के नीचे बिछाई। खूब गहरी नींद में सोये थे। एकाएक उनके कानों में आवाज आयी, "कोन छे।" स्वामीराव ने इधर-उधर देखा, मगर कोई नजर न पड़ा। चन्द मिनटों बाद फिर वही आवाज आयी। जिस तरफ से आवाज आ रही थी, उधर नजर डालने पर कोई खड़ा दिखलाई पड़ा। स्वामीराव ने भी "कोन छे" कहकर पुकारा, जिस पर उसने उसी शब्द को दोहराया। स्वामीराव उसकी ओर दौड़ पड़े। भूत वहाँ से भाग निकला और वहाँ फिर कभी दिखलाई न पड़ा। वस्तुतः वह भूतों का बँगला नहीं, बदमाशों का अड्डा था। स्वामीराव के छोड़ने के बाद बँगले में रहने वाले आने लगे।

बर्मा की यात्रा

१९२४ आया। स्वामीराव को भावनगर में रहते दो साल हो गये थे। अगर सरकारी मेहरबानी पर रहे होते तो उन्हें १९५१ में छूटना था, लेकिन अपनी मर्जी से वह अब स्वतन्त्र थे। वह पिता को मिलने

के लिए काठियावाड़ बुला नहीं सकते थे और साथ ही वृद्ध पिता को मरने से पहले देखने के लिए भी उनका दिल बेक़रार था। किसी मित्र ने २००) दिये और वह चन्द दिनों में बर्मा पहुंच गये। निराश पिता को एकाएक इस तरह पृथ्वीसिंह को सामने देखकर पहले आश्चर्य, फिर अपार आनन्द हुआ। पृथ्वीसिंह ने उन्हें सारी बात बतलाकर आशीर्वाद माँगा, "मैंने अपना सारा जीवन देश सेवा के लिए अर्पित किया है। आप ख़ुशी से मुझे आज्ञा और आशीर्वाद दें।" पिता का आशीर्वाद ले विदा होते वक़्त पृथ्वी सिंह ने कहा—"यदि देश के दुश्मनों से लड़ते-लड़ते मैं मारा जाऊँगा, तो बड़े-बड़े अक्षरों में उसकी ख़बर सब जगह छप जायगी और आपको मालूम हो जायेगा। यदि मैं बीमार होकर चारपाई पर मरा, तो मेरे मित्र किसी न किसी तरह आप को ख़बर देंगे। हाँ, यदि देश-सेवा करते मैं ज़िंदा रहा, तो आप कोई ख़बर नहीं पा सकते।"

दो साल भारत में अज्ञात-वास करने के बाद पृथ्वी सिंह की इच्छा हुई कि अंग्रेज़ों के चंगुल से बच कर किसी दूसरे देश को चले चलें। बर्मा की सीमा पर श्याम का मुल्क है। रास्ते के ख़तरे के बारे में वह सुन चुके थे, तो भी उन्होंने श्याम में छलांग मारने का निश्चय किया। रंगून में उन्होंने एक खिलौना-पिस्तौल ख़रीदी, जिससे काफ़ी आवाज़ निकलती थी। कुछ आतिशबाज़ी के पटाखे भी लिये, जिनसे जंगली जानवरों को डराया जा सकता था। कुछ दवाइयाँ और एक अच्छा छुरा पास में रक्खा।

मोल्मिन छोड़ने के बाद उन्हें नाव से एक नदी पार करनी पड़ी। अब घना जंगल था, जिसमें ख़ूंख़ार जानवर थे। तीन दिन तक उस जंगल में चलते रहे। जानवर उनका कुछ नहीं बिगाड़ सके, लेकिन मच्छरों ने उन्हें परास्त कर दिया। एक शाम को उन्होंने देखा कि १०४ डिगरी का बुखार चढ़ा हुआ है। अब आगे चलना सम्भव नहीं था। इधर-उधर ढूंढ़ने पर एक तार वाले आदमी का घर मिला। वह नौजवान हिन्दू था। पृथ्वीसिंह की बात पर उसने विश्वास किया, "मैं रंगून के एक व्यापारी के लिए बहुत सी गायें ख़रीदने आया था, यहाँ जंगल में आकर बीमार पड़ गया। रात को मुझे अपने पास रहने की जगह दीजिए।"

पृथ्वीसिंह मुसलमानों जैसा कपड़ा पहने थे, इसलिए नाम

भी मुसलमानों जैसा बतलाया, हिन्दू तरुण ने जितना भी हो सकता था, उन्हें अच्छी तरह रखने का इन्तजाम किया। वह बिस्तरे पर पड़े थे। बुख़ार के जोर में अक-बक करने लगे। उन्होंने तरुण को काग़ज़ पेन्सिल लाने को कहा और लाने के बाद यह भी, "जो मैं कहता हूँ, उसे लिखते जाओ।"

दूसरे दिन बुखार उतर गया। तरुण ने पृथ्वीसिंह से कहा, "आप तो कहते थे कि मैं अपने मालिक के लिए गायें खरीदने के लिए आया हूँ मगर रात को आप क्या बोल गये, ज़रा उसे भी तो देखें।" यद्यपि पृथ्वी सिंह ने अपने जीवन का कोई रहस्य नहीं खोला था, लेकिन उन्होंने देश की आज़ादी और मरने-मारने पर गरमा-गरम लेक्चर ज़रूर झाड़ा था। तरुण ने शायद बात समझ ली, लेकिन उसने और जानने के लिए कोई सवाल नहीं किया। तीन दिन तक वह उस हिन्दू तरुण के साथ रहे। मुसलमान जानते हुए भी तरुण ने उन्हें अपने भाई की तरह रक्खा, जब पृथ्वीसिंह कुछ अच्छे हुए और उन्होंने आगे जाने की बात कही, तो तरुण ने सारे ख़तरों को बतलाकर आगे न जाने की सलाह दी। वह फिर मोल्मिन लौट आये। बुखार ने दुहरा दिया। उस दिन वह एक मुसलमान सराय में गये। उन्हें रहने के लिए कोठरी मिली। भीतर जाकर उन्होंने ताला बन्द कर लिया, जिसमें फिर कोई उनके अक-बक को न सुन ले।

रंगून आकर उन्होंने कलकत्ता के लिए जहाज़ पकड़ना चाहा। जेटी पर पहुँचते-पहुचते फिर बुखार आ धमका। दो-तीन बार कलकत्ता वाले जहाज के छूटने के बारे में किसी आदमी से पूछा। वह ख़ुफ़िया का आदमी था, उसे संदेह हो गया। उसने तरह-तरह के सवाल करने शुरू किये। जवाब सन्तोषजनक नहीं थे, इसलिए उसका संदेह और बढ़ा। उसने पृथ्वीसिंह को थाने पर चलने के लिए कहा। जब दोनों में जवाब सवाल हो रहा था, उसी वक्त एक ख़ुफ़िया का अफ़सर उधर से जा रहा था। वह किसी बड़े काम पर जा रहा था। इसलिए उसने उसी आदमी को ले जाने के लिये कह दिया। पृथ्वीसिंह ने आदमी से एक धनी व्यापारी के यहाँ से होकर चलने के लिए कहा। आदमी मान गया।

पृथ्वीसिंह उसे एक सुनसान से रास्ते पर ले गये। उन्होंने आदमी के हाथ पर ५८ रु० रख उसके कंधे को छूते हुये कहा, "अगर तुम

अपनी भलाई चाहते हो तो मुझसे छेड़छाड़ न करो।" आदमी बिना एक शब्द बोले वहाँ से चलता बना।

आदमी के विदा होते ही उधर से एक टैक्सी निकली, पृथ्वीसिंह उसपर बैठ गये और ड्राइवर से खूब तेज़ चलने के लिए कहा। आध घन्टे की दौड़ के बाद वह एक छोटे से स्टेशन पर पहुंचे और टैक्सी से उतर मांडले वाले स्टेशन की ओर गये। वहां पास की नदी में स्टीमर चलते थे। पृथ्वीसिंह किन्दत् जाने वाले स्टीमर पर बैठ गये। चिन्दविन नदी में स्टीमर का यह आखिरी स्टेशन है। उत्तर बर्मा का रास्ता लेते वक्त पृथ्वीसिंह ने सोच लिया था कि अब मुझे मनीपुर के पहाड़ों में से होकर हिन्दुस्तान जाना होगा। स्टीमर से उतरकर वह धर्मशाला में गये। धर्मशाले में तीन मनीपुरी भी ठहरे हुए थे, जो दूसरे ही दिन अपने घर की ओर प्रस्थान करने वाले थे। पृथ्वीसिंह ने जब साथ चलने की बात कही तो उन्होंने कहा, "हां आप चल सकते हैं, लेकिन सरहद के अफ़सर के पास जाना अपने को खतरे में डालना था। तीनों मनीपुरी सीधे-सादे आदमी थे। उन्होंने उनसे कहा, "भाई, मैं कांग्रेसी हूं, अँग्रेज अफ़सर के सामने मेरा जाना अच्छा नहीं है। क्या तुम कोई ऐसे पहाड़ी रास्ते से नहीं चल सकते, जिसमें आज्ञा-पत्र की जरूरत न हो?"

उन्होंने बताया, "रास्ता तो है, लेकिन उससे जाने पर तीन दिन और लग जाएँगे।"

"मनीपुर तक तीनों आदमियों का जो खर्च होगा, मैं दूंगा। चलो ऐसे ही रास्ते जिसमें राहदारी की ज़रूरत न हो।" उन्होंने स्वीकार किया। पृथ्वीसिंह ने यह भी कहा कि मनीपुर पहुँचकर मैं इस बड़े छुरे को भी तुम्हें दे दूंगा।

दूसरे दिन उन्होंने पगडन्डी पकड़ी। जंगली पहाड़ी रास्ते से वे परिचित थे, लेकिन पृथ्वीसिंह तो मलेरिया से और भी कमज़ोर हो गये थे। ऊपर से पानी बरस गया था, इसलिए रास्ते में बिछली बहुत थी। लेकिन पृथ्वीसिंह को अपनी सारी शक्ति लगाकर इस संकट से पार होना था। कई जगह गिरे और उठे, कितनी ही दूर जाने के बाद उनके साथियों ने गंध सूंघकर कहा कि यहां आस-पास कहीं बाघ है। यह कहते हुए उनके चेहरों पर मृत्यु की छाया दौड़ गयी थी। कुछ ही

देर में पृथ्वीसिंह को भी वह गंध मालूम हुई। वह मृत्यु से लड़ने के लिये तैयार थे। मृत्यु शायद चारों आदमियों की गंध पाकर दूर हट गयी। कुछ काफी देर बाद उनके साथियों की जान में जान आयी और पीला पड़ गया चेहरा अपने स्वाभाविक रंग में आया।

शाम को वह एक छोटे से गाँव के बाहर एक धर्मशाला में ठहरे। अपना सामान बीच में रखकर चारों जने सो गये। आधी रात के बाद डाकू आये। उन्होंने पत्थर फेंकना शुरू किया। पृथ्वीसिंह और उनके साथी अपने डंडे संभाल कर जोर से चिल्लाने लगे। कुछ देर बाद हल्ला सुनकर गाँव के भी कुछ लोग चले आये और डाकू उन्हें छोड़कर भाग गये। जंगल से ढका पहाड़ी दृश्य बहुत ही सुन्दर था, लेकिन पृथ्वी-सिंह प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लूटने नहीं गये थे। वह किसी तरह हिन्दुस्तान पहुंचना चाहते थे। पथ भयानक था, इसमें संदेह नहीं था। दूसरे दिन शाम को एक नदी के किनारे पहुंचे। नदी की धार बहुत तेज़ थी। पानी बहुत गहरा नहीं था। ज्यादा से ज्यादा ४ फुट रहा होगा; लेकिन उस तेज धार में १० गज़ पार करने थे। नदी के तट पर खड़े होकर चारों जने कुछ देर तक घाट की ओर देखते रहे। शाम हो रही थी, हाथी आदि हिंसक पशुओं का डर था, इसलिए देर करना ख़तरे की बात थी; साथ ही घाट को पार करना भी कम ख़तरे की बात नहीं थी। उनके सामने नौ पहाड़ियों ने घाट पार करने की कोशिश की, लेकिन, पैर उखड़ गये और फिर उनका पता नहीं लगा। सूर्य नीचे उतरता जा रहा था और उसी के साथ-साथ उनकी आशा भी छूटती जा रही थी। लेकिन चुपचाप खड़ा रहना असह्य हो रहा था। पृथ्वीसिंह के तीनों साथी खूब हट्टे-कट्टे जवान थे। उन्होंने एक जगह देखी, जहाँ पत्थर कम लुढ़क रहे थे। उन्होंने पृथ्वीसिंह के कपड़े-लत्ते को ले लिया और घाट में चल पड़े और उस पार पहुंचने में सफल हुए। पृथ्वीसिंह भी पीछे नहीं रह सकते थे। उन्होंने भी लंगर को तोड़ दिया। प्रवाह के ज़ोर का उतना डट करके मुक़ाबला नहीं कर पाये, तो भी किसी तरह हिलते-डोलते साथियों के पास पहुंचने के स्थान से आध मील नीचे जाकर, धार से बाहर निकले। अपने को जीवित देखकर उन्हें खुशी हुई। पार पहुंचते ही ज़ोर की वर्षा होने लगी। सारे कपड़े भीग गये। न वहाँ आग जलाने के लिए सूखी लकड़ी थी, न भीगी दियासलाई

ही जल रही थी। बुख़ार से उठने के बाद यह कठिन यात्रा, ऊपर से वर्षा में भीगना, आधी रात के बाद उन्हें सख्त बुख़ार आया और सारा शरीर काँपने लगा। लेटने के लिए भीगी ज़मीन और भीगे कपड़े रह गये थे। दूसरे दिन सबेरे बुख़ार उतर गया। कमज़ोर थे, लेकिन उस निर्जन जँगल में पीछे रह जाने के लिए तैयार न थे। रास्ते में कई जगह कै हुई। चलना मुश्किल था, लेकिन मन पर ज़ोर देकर वह दौड़ने लगे। आध मील दौड़ने के बाद शरीर से पसीना चूने लगा। फिर साथियों के लिए बैठ गये। वह सारा दिन इसी तरह दौड़ते-बैठते बीता और रात को अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच गये। दूसरे दिन कोशिश करके दस रुपया रोज़ पर टाँघन किराये पर किया। घोड़े वाला मजबूरी को जानता था, ख़ैरियत यही हुई कि उसने अधिक नहीं माँगा। उस दिन शाम को जिस गाँव में पहुँचे वहाँ पहाड़ियों के कई जान-पहचान वाले थे, पृथ्वी-सिंह की आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने दोस्तों से ठहरने के लिए कहा। वे भी भले मानुष थे और उन्होंने रहना स्वीकार किया। अब मनीपुर चालीस मील रह गया था। उन्होंने पांच रुपये पर एक घोडा किया और दूसरे दिन वहां पहुंच गए। साथियों ने अपने घर में बड़े आराम से रक्खा। चारों तरफ हरे-हरे पहाड़ों से घिरी इस सुन्दर नगरी और उसके आस-पास के छोटे-छोटे गांव तथा खेत बड़े मनमोहक थे। आठ दिन तक उन्होने इम्फाल में आराम किया। पूछने पर मालूम हुआ कि बिना अंग्रेज़ रेजिडेण्ट से राहदारी लिए कोई आदमी सरहद पार कर आसाम के भीतर नहीं जा सकता। पृथ्वीसिंह राहदारी लेने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। मनीपुर की सड़कों पर घूमते-घूमते उनका एक सरकस वाले से परिचय हो गया। सरकस आसाम जाने वाला था। पृथ्वीसिंह ने किसी तरह उसका विश्वास प्राप्त किया। ले चलने के लिए प्रार्थना करने पर उसने उत्तर दिया, "परवाह मत करो, मैं तुम्हें अपने सरकस का खिलाड़ी बनाकर ले चलूंगा।" मनीपुर से मनीपुर रोड स्टेशन ३० मील है। उन्हें दस रुपये मोटर का किराया देना पड़ा। रास्ते में बहुत से ख़ुफ़िया वाले यात्रियों की देखभाल के लिए तैनात थे। लेकिन पृथ्वीसिंह तो सरकस के खिलाड़ी थे। अब वह रेल के स्टेशन पर थे, जो रेलवे लाईन उनके सामने थी वह एक दूसरे से जुड़ी भाव नगर तक चली गयी थी।

राज की नौकरी

स्वामीराव अब फिर भावनगर में थे। शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर विट्ठल राय मेहता के सभापतित्व में शिक्षित सम्भ्रान्त व्यक्तियों की एक सभा हुई। जिसमें स्वामीराव व्यायाम की आवश्यकता पर बोले। उन्होंने बताया कि किस तरह गुजराती तरुणों का शरीर और स्वास्थ्य गिरता जा रहा है और क्यों इसकी उपेक्षा करना आत्म--हत्या है। मेहता इस व्याख्यान से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अब स्वामीराव को, राज्य के शिक्षा--विभाग में ले लिया। उनके जिम्मे काम था, रियासत के स्कूलों में व्यायाम का प्रचार।

भावनगर में जाने के बाद ही से स्वामीराव राजपूत विद्यार्थियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे, मगर उन्हें सफलता नहीं हुई थी। अब उन्होंने राजपूत लड़कों को व्यायाम सिखाने के लिए अवैतनिक तौर से अपनी सेवायें पेश कीं। यद्यपि राजपूत मुखिया उन्हें बनिया समझ कर बड़ी नीची निगाह से देखते थे, लेकिन थोड़े ही दिनों में विद्यार्थियों के साथ वह बिलकुल घुल-मिल गये। राजपूत बोर्डिंग हाउस के सुपरिन्टेन्डेन्ट मकनजी मास्टर बहुत बूढ़े थे और बोर्डिंग का इन्तजाम करना उनके लिए आसान काम नहीं था। स्वामीराव को प्रबन्ध के सम्बन्ध में भी कुछ काम करना पड़ता था, क्योंकि राजपूत नेता भी अब उनसे प्रभावित थे। बुढ़ापे और तरुणाई की खटपट शुरू हुई। अधिकारियों ने धन्यवाद पूर्वक मास्टर साहब की सेवाओं का आभार स्वीकार करते हुए कुछ रुपये पेश किये। बूढ़े सुपरिटेन्डेण्ट ने बोर्डिंग से विदाई ली और अब स्वामीराव नये सुपरिन्टेंडेण्ट नियुक्त हुए। राजपूत नौजवानों को सँभालना आसान काम नहीं था, लेकिन स्वामीराव हमेशा तरुणों को आसानी से अपने प्रभाव में ला सकते थे, क्योंकि वह ऊपर से हुक्म चलाना अपना फ़र्ज नहीं समझते थे, बल्कि समझते थे कि वह भी उनमें से एक हैं। राजपूत बोर्डिंग हाऊस के लड़के शहर में सबसे अधिक शरारती समझे जाते थे, लेकिन स्वामीराव ने शरारत में खर्च होने वाली शक्ति को व्यायाम, मनोरंजन तथा दूसरे साहसपूर्ण कार्यों में लगा दिया। अब वे लड़के अनुशासन--पसन्द पक्के सैनिक बन गये। स्वामीराव ने उनकी एक स्वयंसेवक सेना

संगठित की, जो सभाओं और जलसों के अवसर पर बड़ी तत्परता से काम करती थी। लाठी और कटार लिए हुए मेला हो या सभा सब जगह राजपूत तरुण स्वामीराव के साथ-साथ मौजूद रहते। एक बनिया का प्रभाव इतना बढ़ते देख कुछ राजपूत नेताओं को नयी ईर्ष्या होने लगी और थोड़े ही समय बाद उन्होंने बोर्डिंग छोड़ दिया, यद्यपि बहुत अफ़सोस के साथ।

सर प्रभाशंकर पट्टानी को जब वह मोतीबाग वाली सभा के सभापति बने थे, स्वामीराव ने व्यायाम के गुण बताये थे, स्वामीराव से पूछा था कि क्या मेरे बूढ़े शरीर के लिए भी कुछ हो सकता है। स्वामीराव ने जहां तक हो सकता है, सहायता करना स्वीकार किया। हर रोज़ दीवान साहब की मोटर स्वामीराव को लेने के लिए आती और स्वामीराव वहां जाकर मालिश द्वारा व्यायाम कराते। सर प्रभाशंकर को इस तरुण को नज़दीक से देखने का मौका मिला और मालिश करते वक्त उनकी किसी न किसी विषय पर बराबर बात चलती रहती। राजनीति, धर्म, इतिहास, अर्थ-शास्त्र या शासन-कला जिस किसी विषय पर सर प्रभाशंकर बात करते, वह देखते कि तरुण समझने की शक्ति रखता है। इससे वह स्वामीराव का और भी सम्मान करने लगे। विशेषकर यह देखकर कि स्वामीराव उनसे किसी वैयक्तिक लाभ की आशा या चाह नहीं रखता। वायसराय काठियावाड़ की रियासतों में घूमने आये थे। सर प्रभाशंकर अपने खास सेलून में उनसे मिलने राजकोट और जामनगर गये। उस वक्त स्वामीराव भी उनके साथ थे और रियासतों के शरीर-रक्षक सर प्रभाशंकर को सैल्यूट देते तो स्वामीराव भी उनके भागी होते।

मालिश से सर प्रभाशंकर को फ़ायदा होता दिखायी पड़ा। उन्होंने स्वामीराव को आधुनिक मालिश कला को सीखने के लिए कहा और गायकवाड़ के मालिश वेत्ता मिस्टर बोलोश के पास और फिर प्राचीन भारतीय मालिश कला को सीखने के लिए मलाबार तक भेजा। अब स्वामीराव आधुनिक तथा पुरानी मालिश कला के पंडित थे और साथ ही राज्य के दीवान के बड़े ही कृपा-पात्र।

काठियावाड़ नौजवान सम्मेलन

१९२८ के आस-पास राजकोट में काठियावाड़ नौजवान सम्मेलन हुआ, पण्डित जवाहरलाल सभापति थे। काठियावाड़ के तरुणों की भारी

संख्या वहां जमा होने वाली थी। अपने कांग्रेसी मित्र गोपालराव कुलकर्णी, बलवन्तराय मेहता, आदि को पहुंचाने स्वामीराव भी स्टेशन तक गये। स्वामीराव समझते थे कि सम्मेलन में उनका जाना अच्छा नहीं है। स्टेशन पर उनके दोस्तों ने पूछ लिया, "क्या आप हमारे साथ सम्मेलन में नहीं चलेंगे? आप नवयुवकों के इतने प्रशंसक और प्रियपथ-प्रदर्शक हैं और आपही उनके सम्मेलन में न जाएं, क्या यह अच्छी बात है?" पृथ्वीसिंह ने वहीं निश्चय कर लिया कि जरूर सम्मेलन में जायेंगे। लेकिन ट्रेन से जाकर ख़ुफ़िया पुलिस के भेड़ियों के मुंह में नहीं पड़ेंगे। स्वामीराव को मालूम था कि भावनगर से राजकोट तक मोटर की अच्छी-खासी सड़क है। उन्होंने किसी दोस्त से एक अच्छी साइकिल ली और सवेरे ट्रेन के पहुंचने तक खुद भी पहुंच जाने का निश्चय किया। अधबहिया कमीज और हाफ़ पैन्ट पहने, डण्डा हाथ में लिए वह साइकिल पर चल पड़े। कितनी ही देर बाद वह सोनागढ़ पहुंचे। वहाँ गुरुकुल के परिचित मित्रों ने खाना खिलाया और रात को न जाने के लिए कहा। रात थी अंधेरी और उनके पास न लैम्प था न टार्च। उन्हें रात के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था। पानी या विश्राम स्थान के बारे में किसी से कुछ पूछा भी नहीं।

१० बजे रात को जब वह साइकिल दौड़ाये जा रहे थे, तो सड़क की दाहिनी ओर से एक जंगली सुअर आ निकला। हिलती चीज को देखकर वह डर गया और इधर-उधर भागने की जगह साइकिल के साथ-साथ दौड़ने लगा। जंगली सुअर कितना ख़तरनाक होता है, यह स्वामीराव अपने बचपन के दिनों ही से जानते थे। उन्होंने शोर मचाकर उसे भगाना चाहा, मगर वह पहले ही होश-हवास खो चुका था। सुअर अपनी जान के लिए दौड़ रहा था और पृथ्वीसिंह अपनी जान के लिए। उन्होंने सारी ताकत लगाकर साइकिल को तेज किया और कितनी ही देर की कोशिश के बाद सुअर को पीछे छोड़ आगे निकलने में सफल हुए।

अब सुअर बहुत पीछे रह गया था। लेकिन वह इतने थक गये थे कि एक मिनट भी साइकिल पर थमना सम्भव नहीं था। साइकिल से उतर कर सड़क के किनारे वह लम्बे पड़ रहे। अब सांस की गति ठीक थी और घबराहट भी दूर हो गयी थी; मगर प्यास के मारे गले में सूइयां सी चुभ रही थीं। पानी कहां मिलेगा इसका कोई पता नहीं था।

अंधेरी रात में आंखें फाड़-फाड़ कर देखने पर भी कहीं बस्ती का चिन्ह नहीं था। आधा घण्टा और चलने के बाद वह एक गाँव में पहुंचे। एक बड़े मकान के दरवाजे को जाकर खटखटाया। भीतर से घर वाले ने खटखटाने का कारण पूछा। स्वामीराव ने नरम स्वरमें प्यासा मुसाफ़िर कह पानी मांगा। घर वाले ने कड़कते स्वरमें कहा, "हमसे चाल न चलो, इतनी रात को पानी नहीं मिला करता। हम एक अजनबी के लिए इस वक्त दरवाजा नहीं खोल सकते। स्वामीराव ने बार-बार बिनती की। मालिक का उत्तर था, "यदि तुम प्यासे हो तो यहीं बैठे रहो, सबेरे हम तुम्हें पानी देंगे।"

निराश हो स्वामीराव गांव से चल पड़े, लेकिन सौभाग्य से एक ही मील आगे एक साधु की कुटिया मिली। साधु बाहर सोया था। स्वामीरावने उसे जगाया और साधुने पानी और बिस्तरा दोनों दिया। पानी पीकर वह एक घण्टा के लिए सो गये और फिर साइकिल पर चढ़ आगे के लिए रवाना हो गये। यद्यपि रास्ते में कई जगह ऊँची-नीची जमीन के कारण वह गिरे भी मगर ज़्यादा चोट नहीं आयी। साइकिल कहीं नहीं बिगड़ी, नहीं तो निश्चित समय पर वह राजकोट नहीं पहुंच सकते।

सबेरे तड़के ही बहुत सी लारियाँ राजकोट जाती दीख पड़ी। स्वामीराव को लोभ तो आया, मगर वह लारी पर नहीं चढ़े। आख़िरी १० मील की यात्रा उनके लिए सबसे कठिन थी। स्वामीराव जिस वक्त स्टेशन पर पहुंचे, उसी वक्त उनके दोस्त प्लेटफॉर्म से बाहर आ रहे थे। वह भी जुलूस में शामिल हो गये। सम्मेलन में उनसे व्यायाम की उपयोगिता और उसके प्रचार तथा संगठन के बारे में बोलने के लिए कहा गया। स्वामीराव जवाहर लाल के सामने अपना व्याख्यान दे रहे थे, पर जवाहर लाल को क्या मालूम था कि व्यायाम पर भाषण देने वाला यह वक्ता जेल फ़रार चिड़िया है।

सोनागढ़ गुरुकुल के मित्रों ने ताना देते हुए कहा था, "हम देखेंगे कैसे रात ही रात राजकोट पहुंच जाते हो!" दोपहर बाद फिर वह साइकिल पर सवार हो राजकोट से रवाना हुए। ३० मील चलने के बाद साइकिल पंचर हो गयी। साइकिल हाथ में पकड़े ४ मील और पैदल चले, फिर एक पुलिस का थाना आया, वह थाने के भीतर गये। सिपाहियों ने पंचर ठीक करने में मदद की, खाने के लिए भोजन और

सोने के लिए चारपाई दी। सूर्योदय से पहले ही फिर रवाना हो गये और रास्ते में दोस्तों से मिलते अपरान्ह में भावनगर पहुंच गये।

शिवाजी महोत्सव

शिवाजी का महोत्सव मनाया जाने वाला था। स्वामीराव ने भी उसमें भाग लेना चाहा। उन्होंने गणेश क्रीड़ा-मण्डल और राजपूत बोर्डिंग हाउस के २०० लड़कों में से खूब मजबूत और तन्दुरुस्त ५० तरुणों को चुना। अपने केम्पके लिए उन्होंने विक्टोरिया बाग के पास की एक टेकरीको चुना, जिसका नाम पीछे शिवाजी हिल पड़ गया। स्वामीराव ने अपने लड़कों से कहा कि लड़के ही पहाड़ को छोड़ दो और ज्यादा से ज्यादा गांवों को घूमकर सूर्यास्त के बाद लौटो। खाने के लिए उन्हें दो-दो छटांक गुड़ और १४ छटांक भुना चना मिला था। विद्यार्थी चार-चार की टोली में निकले और ३० से ४५ मील का चक्कर लगाकर शाम को लौट आये। उनके लौटने की खुशी में पहाड़ पर आग जलायी गयी और उसका नाम शिवाजी हिल रक्खा गया। तरुणों को अपनी इस सफलता के लिए बड़ा अभिमान और आनन्द हुआ। स्वामीराव ने उन्हें प्रोत्साहन देने के लिए एक छोटा सा व्याख्यान दिया। अगले साल के शिवाजी महोत्सव में स्वामीराव ने लड़कों से शिवाजी का मुगल सेना के भीतर से निकल जाने का अभिनय कराया। शिवाजी बनने वाले लड़के ने "मुगल सेना" के सभी प्रयत्नों को निष्फल करके भाग निकलने में सफलता दिखायी।

पोरबन्दर में देशी राज प्रजा की कान्फ्रेंस होने वाली थी, माहात्मा जी उसके सभापति मनोनीत हुए थे। कान्फ्रेंस के प्रबन्धकों ने स्वामीराव से उनके सुशिक्षित वालन्टियर मांगे। स्वामीराव वहां पहुंचे। उन्होंने जहां अपने स्वयंसेवकों द्वारा कान्फ्रेंस की व्यवस्था में हाथ बटाया वहां साथ ही व्यायाम सम्बन्धी अपने भाषणों द्वारा काठियावाड़ के कितने ही नेताओं से परिचय प्राप्त किया।

सत्याग्रह में

१९२८ में काका कालेलकर की अध्यक्षता में काठियावाड़ के विद्यार्थियों का एक सम्मेलन हुआ था। स्वामीराव ने यहां पर भी व्यायाम

और स्वास्थ्य सुधार पर व्याख्यान दिया। चोरवाड़ के उदारमना धनी हरखचन्द शाह को उनके विचार बहुत पसन्द आये और गर्मियों में एक व्यायाम क्लास खोलने के लिए उन्होंने हर तरह से सहायता करने का वचन दिया।

१९३० की मई को चोरवाड़ में स्वामीराव ने व्यायाम क्लास खोली। चोरवाड़ काठियावाड़ में एक बहुत ही स्वास्थ्य वर्धक जगह है। और गर्मियों में यहाँ की आबोहवा गर्म नहीं होती। १० से भी अधिक विद्यार्थी क्लास में शामिल हुए। भाई हरखचन्द शाह ने क्लास की सभी आवश्यकताओं को बड़े स्नेह के साथ पूर्ण किया। केम्प बहुत कामयाब रहा।

इसी वक्त स्वामीराव ने नमक-सत्याग्रह में गाँधीजी की गिरफ्तारी की खबर सुनी। केम्प में इसके विरुद्ध सभा हुई, जिसमें स्वामीराव ने भारत की परतंत्रता और आजादी की कोशिश के बारे में बहुत जोशीला भाषण किया। तरुणों के लिए स्वामीराव के जीवन का यह एक नया पहलू था। स्वामीराव को रामपुर से तार मिला कि वह सत्याग्रह आन्दोलन में स्वयसेवकों की भर्ती के लिए सहयोग दें। स्वामीराव सीधे चोरवाड़ से रामपुर चले गये और अमृतराव सेठ और उनके साथियों के साथ काम करने लगे। वह जोश में इतने बह गये थे कि सोच नहीं सके। रामपुर जाने पर उनका जोश उन्हें और एक कदम आगे खीच ले गया और बुद्धि-विवेक का रास्ता छोड़ केवल भावुकता में पड़कर उन्होने सत्याग्रह में भाग लेने का निश्चय किया। उनके पढ़ाये-सिखाये विद्यार्थी - दक्षिणमूर्ति भवन और क्रीड़ा-मंडल के तरुण सत्याग्रह में पूरे जोश से भाग ले रहे थे। यह कैसे हो सकता था कि उनके गुरु स्वामीराव चुपचाप बैठे रहते। सत्याग्रही तरुणों के ऊपर पुलिस की ओर से जो जुल्म हो रहे थे, उन्हें देखते उनका चुप रहना तरुणों में सन्देह पैदा करता, इसमें सन्देह नही। वह अच्छी तरह जानते थे कि जिधर वह कदम बढ़ा रहे हैं, वह बड़े जोखिम की चीज है। जब स्वामीराव के साथियों को मालूम हुआ कि वह राजनीतिक कार्यों में भाग लेने जा रहे हैं, तो भावनगर में एक सभा की। स्वामीराव ने अपने भाषण में कहा था, "मैं नहीं कह सकता कि सत्य और अहिंसा पर मेरा विश्वास है। मेरा लक्ष्य है, स्वराज और उसके लिये मैं कुछ भी उठा न रखूँगा।"

भावनगर की जनता और सरकारी अफसरों ने पहली मर्तबा देखा कि स्वामीराव के पीछे एक दूसरा आदमी छिपा था। विदा के लिए नागरिकों और तरुणों की सभा को देखकर वह भली प्रकार जानते थे कि अब मेरा आठ वर्ष का अज्ञातवास समाप्त हो रहा है और फिर मुझे इनके भीतर काम करने का मौका न मिलेगा। एक बार जहां कानून के चंगुल में फँसे तो स्वामीराव जिन्दा फिर बाहर नहीं आ सकते। अखाड़े के एक दर्जन तरुण स्वामीराव के साथ चले। रामपुर में मित्रों ने बड़े तपाक से स्वागत किया। कैम्प के कमान्डर ने सत्य और अहिंसा की प्रतिज्ञा पर दस्तख़त करने को कहा। स्वामीराव ने इनकार करते हुये कहा, "अगर आप बिना प्रतिज्ञा के ही मुझे रहने देना चाहें और तरुणों की सहायता देने का मौक़ा दें, तो मैं धन्यवाद पूर्वक रहने के लिये तैयार हूँ ; नहीं तो मैं चला जाऊंगा।"

उन्होंने रहने की इजाज़त दी और तरुणों में सचमुच ही ज्यादा जोश देखा जाने लगा। केम्प के कमान्डर, स्वामीराव का प्रभाव तरुणों पर क्या है, इसे जानते थे। वहां तैनात पुलिस वाले भी तरुणों पर जादू फेरने वाला यह स्वामीराव कौन है, इसे जानने के लिये पूरी कोशिश करने लगे और जितनी ही उन्हें इसे जानने में असफलता हो रही थी, उतनी ही उनकी तत्परता भी बढ़ रही थी।

अध्याय १०

फिर लापता

दस दिन रहने के बाद धंधू काका सब-इन्सपेक्टर स्वामीराव को पकड़ने आया। स्वामीराव ने केम्प के नेता भाई जगजीवन दास मेहता से गिरफ्तारी के लिए छुट्टी ली। नौजवानों को आश्चर्य हुआ, क्यों कि उन्होंने स्वामीराव का गिरफ्तारी के लायक कोई काम नहीं देखा था। तरुणों से दो-चार सीधे-सादे शब्द कहकर स्वामीराव ने बिदाई ली।

क्या वह सारे जीवन भर जेल में रहने के लिए तैयार थे? जब वह सब-इन्सपेक्टर के साथ-साथ जा रहे थे, तो उनके दिमाग़ में यह ख्याल आया। सब-इन्सपेक्टर के पास पिस्तौल थी। वह ४० वर्ष का एक मजबूत और स्वस्थ आदमी था, लेकिन स्वामीराव के सामने वह कुछ नहीं था। स्वामीराव ने सोच लिया था कि सब-इन्सपेक्टर को दस सेकण्ड सोचने और पॉकेट से पिस्तौल निकाल कर निशाना लगाने में लगेंगे, वे ही उनके लिये काफ़ी हैं। वह एक मोड़पर पहुँच रहे थे। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने कहा, "सलाम साहब, मैं जाता हूँ।" सब-इन्सपेक्टर हक्का बक्का रह गया। स्वामीराव दो ही छलाँग में मुड़कर आँखों से ओझल हो गये। भागने के दस ही मिनट बाद एक भारी आंधी आयी और धूल के मारे कुछ भी देखना मुश्किल हो गया। फिर वर्षा ने सहायता की। पुलिस के लिये काम आसान नहीं रह गया।

पुलिस सड़कों पर मोटरों में दौड़ रही थी, वह घुटने भर कीचड़ और पानी भरे खेतों में नहीं जा सकती थी। स्वामीराव ने अपने सब कपड़े फेंक दिये थे और लंगोट बाँधे खेतों में से चल रहे थे। अंधेरी रात में वह एक गाँव से गुजर रहे थे। एक आदमी ने पहचान लिया और बोला, "स्वामी जी यह क्या है? किसी को छकाने की तो नहीं सोच रहे हैं?" स्वामीराव ने कहा, "नहीं भाई, पागलपन मत करो, मुझे किसी सुरक्षित जगह पर ले चलो।" वह उन्हें एक गोशाला में ले गया, जहां उसके सिवा कोई नहीं जा सकता था। लम्बी दौड़ के कारण वह बहुत थक गये थे। मित्र ने गर्मा-

गर्म दूध पीने के लिए दिया। पीकर ३ घंटे उन्होंने पूरा विश्राम किया। पृथ्वीसिंह ने अपनी सारी कथा कह सुनायी और फिर वहाँ से छुट्टी माँगी। लेकिन उनका राजपूत मित्र इतने ही से अपने कर्तव्य की पूर्ति नहीं समझता था। गाँव से बाहर दो अच्छे घोड़े तैयार थे। उन पर चढ़कर दोनों खेतों-खेतों एक अज्ञात दिशा की ओर चल पड़े। पैसे के लिये बिके आदमी खतरे का उतना सामना नहीं कर सकते, जितना कि स्वतन्त्रता के प्रेमी स्वामीराव कर सकते थे। सूर्योदय के वक्त उन्होंने घोड़ों को छोड़ दिया और एक बैलगाड़ी किराये पर की। कुछ दूर तक बैलगाड़ी से जाकर फिर मीलों भावनगर खाड़ी के छाती भर पानी में दोनों जने चलते रहे। इस प्रकार पुलिस के हाथ से भागने के २४ घंटे बाद स्वामीराव फिर भावनगर पहुंचे। उन्होंने अपने साथी को नगर में दोस्तों को सूचना देने के लिए भेजा और स्वयं एक आँख और आधे मुख को ढँके मुरैठे के साथ, एक गाड़ी में सवार होकर शाम को शहर में आ गये।

पृथ्वीसिंह आसानी से रामपुर से दूसरी ओर भाग सकते थे। मगर भावनगर में अपने मित्रों को असली बात बताना ज़रूरी समझा। जिसमें वह यह न समझें कि स्वामीराव अन्त में कायर निकला। स्वामीराव के मुँह से आत्मकथा सुनकर उनके मित्रों का सम्मान और भी बढ़ गया। आधी रात को एक दूर के गाँव के लिए टैक्सी की गयी। वहाँ से उन्हें भेष बदलकर ट्रेन में बैठना था। उनका साथी पहले सामान और टिकट के साथ स्टेशन पर प्रतीक्षा कर रहा था। स्वामीराव योरोपियन पोशाक में ट्रेन पर जाकर बैठ गये।

स्वामीराव के भागने के बारे में कई तरह की कथाएं काठियावाड़ में प्रसिद्ध हुईं। सब-इन्सपेक्टर ने बयान दिया कि वह मुझे जोर का धक्का मार जमीन पर गिराकर रफूचक्कर हो गया। इसमें सचाई का लेशमात्र भी न था। दूसरी कथा प्रचलित थी कि कोई ख़ुफ़िया का आदमी उनके पीछे पड़ा हुआ था। यह आदमी नागर खानदान का था और उसने स्वामीराव के कितने ही नागर शिष्यों को प्रलोभन देकर फोड़ने की कोशिश की। एक समय वह आदमी स्वामीराव को पकड़ने में सफल हो रहा था। किन्तु उसी समय स्वामीराव ने उसके सिर पर ऐसी ठोकर जड़ी कि वह हमेशा के लिए पागल हो गया। यह ठीक है कि एक ऐसा आदमी ख़ुफ़िया की ओर से तैनात किया गया था और वह पागल होकर मरा। लेकिन

स्वामीराव ने कभी उसको कोई थप्पड़ नहीं लगाया था। जेल से मुक्त होने के बाद पीछे जब वह एक बार भावनगर गये तो वहाँ के नागर तरुणों ने उनका स्वागत किया। उस वक्त यह सुनकर पृथ्वीसिंह को आश्चर्य हुआ कि कोई-कोई तरुण उन्हें सचमुच उक्त सज्जन की मृत्यु का कारण मानते हैं।

केम्प के कमाण्डर और उनके सहायक ने स्वामीराव के भागने की निन्दा करते हुए वक्तव्य निकाला था। सत्याग्रही का भागना सचमुच ही बड़े शर्म की बात समझी जाती थी। लेकिन उन्हें क्या मालूम था कि स्वामीराव के न भागने का क्या परिणाम होता।

पुलिस ने स्वामीराव के पूर्व-इतिहास का पता लगाने के लिए छान-बीन शुरू की। राजकोट का सर्वोच्च पुलिस अफ़सर भावनगर में जांच करने के लिए आया। स्कूलों के रजिस्टरों से मालूम हुआ कि इस आदमी का नाम है, स्वामीराव दयाराम और घर का पता है–कमालपुर; जिला हलालपुर; मध्य प्रदेश। सी. आइ. डी के पल्ले कुछ न पड़ा।

पृथ्वीसिंह सेवा समिति स्काउट-मंडल में काम करने के लिये प्रयाग गये थे, लेकिन देखा कि वहां पुलिस से बचना बहुत मुश्किल है। पं० श्रीराम बाजपेयी ने व्यायाम-शिक्षक के तौर पर राजपूताना में किसी अपने दोस्त के लिए परिचय-पत्र लिख दिया। उक्त सज्जन दिल खोलकर मिले। प्रेमराज, अब यही उनका नाम था, ने अध्यापकों और विद्यार्थियों के सामने व्यायाम पर व्याख्यान दिया। उक्त सज्जन को उन पर संदेह होने लगा और उन्होंने अपनी सफाई देने की कोशिश की। वह समझते थे कि कोई ख़ुफ़िया का आदमी भेद लेने आया है। पहले ही दिन ४ घंटा काम करने के लिये ४५) महीना और मुफ्त के घर का इन्तजाम कर दिया गया। वहाँ की परिस्थिति को देखकर प्रेमराज ने तीसरे ही दिन वहां से चलने की इच्छा प्रकट की। सज्जन ने जब रुकने के लिये जोर देना शुरू किया तो प्रेमराज ने उनके संदेह का ज़िक्र करके कहा कि अब मैं यहां नहीं रह सकता। असर न होते देख इन सज्जन ने प्रधान-अध्यापक को बुलाया और दोनों ने रहने के लिए उन पर बहुत ज़ोर डाला, मगर जब प्रेमराज अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए तो आँखों में आंसू भरकर विदाई दी।

चंद्रशेखर आज़ाद से भेंट

१९२२ में जब पृथ्वीसिंह घायल हुए थे, तभी से पुलिस ही की तरह क्रान्तिकारी भी पृथ्वीसिंह को ढूंढने में लगे थे। अमरीका के उनके मित्र भी उनका पता लगाने के लिए बहुत चिन्तित थे। अन्त में एक दिन सबेरे किसी ने उनसे एक तरुण क्रान्तिकारी का परिचय कराया। एक ही नज़र में पृथ्वीसिंह को विश्वास हो गया कि यह तरुण विश्वास-पात्र है। दोनों ने एक दूसरे के सामने दिल खोल दिया। तरुण का प्रस्ताव था कि तुम सोवियत रूस जाकर क्रान्तिकारी संस्थाओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करो। अंधेरा होने पर एक और तरुण आया, उसके चेहरे, उसकी एक-एक भाव-भंगी से वीरता और निर्भयता टपक रही थी। यह तरुण था चन्द्रशेखर आज़ाद, जो कि पीछे इलाहाबाद के अलफ्रेड पार्क में पुलिस की गोलियों का जवाब देते-देते शहीद हुआ।

आज़ाद क्रांति का आज़ाद बहादुर सिपाही था। पृथ्वीसिंह से उसकी दो बार मुलाक़ात हुई और उसने उनके ऊपर अपनी अमिट छाप छोड़ी। भगत सिंह और उनके साथी आतंकवाद के पूरे तजुर्बे के बाद इस परिणाम पर पहुंचे थे कि इक्के-दुक्के सरकारी अफ़सरों की हत्या करने से हमारी क्रांति सफल नहीं हो सकती। रास्ता एक ही है, वह है विशाल शोषित जनता का सहयोग लेकर अर्थात् मार्क्सवादी पद्धति के आधार पर आगे बढ़ना। मरने से पहले भगत सिंह ने अपने साथियों को यह समझाने की पूरी कोशिश की थी। चन्द्र शेखर आज़ाद भी अब इसी बात को मानते थे। पृथ्वीसिंह और आज़ाद दोनों इस बात से सहमत थे। आज़ाद ने पृथ्वीसिंह पर बहुत ज़ोर दिया कि वह विदेश में जाकर मार्क्सवाद का अच्छा अध्ययन करें और क्रांति के दांव-पेंच सीख कर देश में आयें और उसके लिए काम करें।

आज़ाद कोई पंडित नहीं थे और न उन्हें मार्क्सवाद का अध्ययन करने का मौक़ा ही मिला। लेकिन उनके तजुर्बे ने उन्हें मार्क्सवादी सच्चाई की झलक दिखला दी थी। चन्द्रशेखर में नेताओं के स्वाभाविक गुण थे।

अक्तूबर १९३० में जिस दिन भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव

को फांसी की सज़ा सुनायी गयी, उसी दिन यू. पी., महाराष्ट्र, बम्बई और पंजाब के क्रांतिकारियों ने फ़ैसले के ख़िलाफ़ अपना विरोध प्रकट करने के लिए बम्बई [लेमिंग्टन रोड] में गोली कांड किया। पुलिस ने बहुत से आदमियों को पकड़ा और उन्हें हवालात में रख कर ६०,००० रु. खर्च करके ८ महीने तक मुक़दमा चलाया। सबूत कोई था नहीं, जूरी ने अभियुक्तों को निरपराध कह के छोड़ देने के लिए कहा और अदालत ने भी इसे मंजूर किया। पुलिस ने हाईकोर्ट में अपील करनी चाही लेकिन, सरकारी एडवोकेट ने मुकदमे को बहुत कमज़ोर देख कर ऐसा करने की इजाज़त न दी। लेमिंग्टन रोड के गोली कांड में पुलिस ने स्वामीराव का भी नाम दिया और पकड़ने के लिए १००० रु. का इनाम घोषित करके सारे बम्बई प्रान्त में उनके फ़ोटो चिपकाये।

पृथ्वीसिंह रेल में जा रहे थे। बलसाड़ में ख़ुफ़िया वालों को उनके ऊपर शक हो गया। उस कम्पार्टमेन्ट के सभी आदमी उतार दिये गये और पुलिस के तीन आदमी सादे कपड़ों में उसमें बैठ गये। वे उन्हें अगले स्टेशन पर काफ़ी सिपाहियों की मदद से गिरफ़्तार करना चाहते थे। पृथ्वीसिंह ख़तरे को अच्छी तरह समझने लगे। अगले स्टेशन पर सिगनल न होने से गाड़ी पहले ही खड़ी हो गयी। पृथ्वीसिंह ने कोट के पॉकेट में हाथ डाल कर अपने पिस्तौल को बाहर निकाला और वहाँ से नौ दो ग्यारह हुए। तीनों पुलिस वाले टुक-टुक देखते रह गये। रात के अंधेरे ने उन्हें सहायता पहुंचायी। वह नवसारी शहर से होते हुए बाहर निकल कर एक जंगल में सो गये, शहर में उन्होंने कपड़ा ले लिया था। किसानों जैसी धोती और कुर्ता पहनकर दूसरे कपड़ों की उन्होंने पोटली बना ली। सुबह वे गुरुकुल गये, खाना भी खाया, लेकिन किसी परिचित ने उन्हें पहचाना नहीं। फिर पैदल ही २० मील चल कर वे सूरत पहुंचे। सूरत से रेल द्वारा बड़ौदा गये। बड़ौदा में उनके एक परिचित मित्र ने सारे ख़तरों को जानते हुए भी अपने पास रखा और रहने के लिए आग्रह किया।

करांची कांग्रेस (मार्च १९३१)

पृथ्वीसिंह को साफ़ मालूम होने लगा कि देश में रहकर अब

वह कोई काम नहीं कर सकते। उस साल करांची में कांग्रेस होने वाली थी। सोचा वहाँ उनके पुराने दोस्तों में से कोई ज़रूर मिलेंगे। इसलिये उन्होंने उधर ही का रास्ता लिया। वह दूसरी बार भावनगर पहुंचे। वहाँ से कई स्टेशनों को पार करके एक जगह उतर गये और सिर मुड़ाकर भगवा कपड़ा धारण किया; नाम रक्खा स्वामी सदानन्द। सदानन्द गुरू-शिखर की ओर चल पड़े। सूर्यास्त के समय वहाँ पहुंचे। साधू भोजन करने जा रहे थे। भोजन के बाद लोक धुनि के किनारे बैठे। यह स्थान एक बड़ी गुफ़ा में था जिसमें एक ही दरवाजा था। एक बड़ी गाँजे की चिलम भरी गयी। दम लगाने के बाद लोगों का तीसरा नेत्र खुला फिर ब्रह्मज्ञान की चर्चा छिड़ गयी।

गुफ़ा का महन्त एक नौजवान आदमी था। स्वामी सदानन्द ने गांजा छोड़ने के लिये लेक्चर दिया, लेकिन इसके सिवा कुछ असर नहीं हुआ कि महन्त उनको ज्यादा सम्मान की दृष्टि से देखने लगा। महन्त ने बड़ी कोशिश की कि वह वहीं रहें।

लेकिन सदानन्द तीन ही दिन के बाद वहाँ से चल पड़े और अम्बा जी के स्थान पर पहुंचे। अम्बाजी का मन्दिर भी बहुत ही रमणीक स्थान पर है। महन्त ने शक्ल सूरत से स्वामी सदानन्द को एक शिक्षित सन्यासी समझ कर मठ के ऊपर वाले कमरे में ठहरने की जगह दी और रोज उनके लिए अपने हाथ से अच्छा-अच्छा भोजन लाता। स्वामी को निस्पृह और सुवक्ता देखकर महन्त ने खूब गौरव प्रकट किया। एक दिन एक गृहस्थ ने महन्त से कहा कि मैं आप जैसे एक महापुरुष को भोजन कराकर पुण्य का भागी बनना चाहता हूं। महन्त ने जवाब दिया, "यदि आप सचमुच ही किसी महापुरुष का आशीर्वाद चाहते हैं तो जाइये ऊपर वहाँ एक महात्मा ध्यान में मग्न हैं। गृहस्थ सज्जन ने स्वामी सदानन्द के पास जाकर भोजन स्वीकार करने के लिए प्रार्थना की। निश्चित समय पर स्वामी सदानन्द उस भद्र पुरुष के मकान पर पहुंचे। वह अपने सारे परिवार के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए आया था। स्वामी की बहुत आवभगत हुई। पूछने पर भद्र पुरुष ने बताया कि मैं सरकारी नौकर, पुलिस इन्सपेक्टर हूं। सदानन्द चेहरे का भाव छिपाने के लिए जोर से हँसे। भद्र पुरुष के पूछने पर कहा, "आहे, तुम अपने पापों का मार्जन कराने आये हो? तुम एक सीधे-सादे सन्यासी से आशीर्वाद ले पहले का पाप धोकर

फिर उसी रास्ते जाना चाहते हो !" बात मज़ाक में थी और मज़ाक में ही उड़ गयी। लेकिन मज़ाक करते हुए भी स्वामी सदानन्द अच्छी तरह जानते थे कि कौन जाने इस इन्सपेक्टर की जेब में मेरे पकड़ने का वारण्ट पड़ा हो।

भोजन के बाद स्वामी ने इन्सपेक्टर को आशीर्वाद दिया। इन्सपेक्टर ने १।।) दक्षिणा देनी चाही, लेकिन स्वामी ने अपनी निरपेक्षता दिखलाते हुए लेने से इनकार किया।

अम्बाजी माता में गुजराती तीर्थयात्री बहुत आया करते हैं। सदानन्द का वहाँ और रहना ख़तरे की बात मालूम होने लगी।

अब उनकी इच्छा हुई महाराणा प्रताप के कुरुक्षेत्र की हल्दी घाटी देखने की। जिससे भी वह हल्दीघाटी के बारे में पूछते, वह अपने को अन्जान बताता। जिन गाँवों में वह पूछताछ कर रहे थे, वे हल्दी घाटी से ५० मील से भीतर ही थे और उनके पूर्वजों ने जरूर हल्दी घाटी की लड़ाई में प्रताप के साथ भाग लिया होगा। वह राजपूतों को इसके लिए फटकारते थे। रास्ते में ऐसे वीर-भक्त सन्यासी की आवभगत करने में सभी जगह ठाकुर लोग हाथ बाँधे खड़े रहते। हर जगह अगले गाँव के लिए पथ-प्रदर्शक और किसी प्रमुख व्यक्ति के लिए परिचय पत्र मिलता।

जब स्वामी सदानन्द केलवा पहुंचे तो वहाँ के ठाकुर ने इस शिक्षित सन्यासी का बहुत सम्मान किया और उनके आग्रह के मारे वह २० दिन वहीं रह गये। ठाकुर साहब एक झील के किनारे एक कुटिया बनवाना चाहते थे, मगर सदानन्द तो रमता राम थे। चलते वक्त ठाकुर साहब ने उन्हें एक बाघम्बर और २०० रु० भेंट किये, लेकिन सन्यासी ने रुपया लेने से इनकार कर दिया। ठाकुर को क्या मालूम था कि यह आदमी कपड़ों के नीचे २०० रु० के नोट और भरी हुई पिस्तौल लिए चल रहा है। रास्ते में और जगहों को देखते वह उदयपुर पहुंचे और जब धीरे-धीरे वहाँ सन्यासी के गुणों के बारे में लोग ज्यादा जानने और जिज्ञासा करने लगे तो उन्होंने साँड़नी की सवारी करके हल्दी-घाटी का रास्ता लिया।

एक गाँव के पास कुछ साधू डेरा डाले पड़े थे। सन्यासी को देखकर उन्होंने बैठने के लिए कहा। स्वामी सदानन्द की बगल में एक सुन्दर

बाघंबर था। साधुओं ने देखने के लिए माँगा। नया सुन्दर बाघम्बर देख-कर उनके मुंह में पानी भर आया। उन्होंने आसन बिछाकर अपने गुरू को बैठने के लिये कहा। थोड़ी देर तक धर्म-चर्चा चली। स्वामी सदानन्द उम्मीद किये बैठे थे कि अब बाघम्बर को लौटा देंगे। देर होते देख जब उन्होंने जाने की इजाज़त माँगी, तो साधुओं ने कहा, "हाँ, पधारिये।" सदानन्द पाँच मिनट तक बाघम्बर के पाने का इन्तजार करते रहे, लेकिन गुरू जी उठने का नाम नहीं लेते थे। ऊपर से साधु कह रहे थे, "जाइये, नहीं तो अंधेरा हो जायगा।" सदानन्द ने एक मिनट की देर किये बिना कहा, "कृपा करके मेरे बाघम्बर को दे दीजिये।"

"कौन सा बाघम्बर ?"

"यही, जिस पर तुम्हारे गुरू बैठे हैं !"

"हमारे गुरूजी अपने बाघम्बर पर बैठे हैं। तुम्हारा इतना दीदा कि गुरूजी का अपमान करो !"

इस पर स्वामी ने कहा, "छोड़ दो नहीं तो तुम्हारे हक़ में बहुत बुरा होगा !"

स्वामी के हाथ में एक अच्छा मोटा सा डंडा था। यद्यपि साधुओं की संख्या १५ या उससे अधिक थी, लेकिन वह समझ गये कि इस आदमी के हाथ में डंडा यमराज का डंडा बन जायगा। स्वामी ने और स्पष्ट शब्दों में कहा, "इधर सुनो ! मैं अब डन्डा उठाने जा रहा हूं। जबतक इसके दो टुकड़े नहीं हो जाते तब तक इससे तुम्हारे कपार और हड्डियों को चूर करता जाऊँगा !" दो मिनट के भीतर ही गुरूजी खड़े हो गये और बाघम्बर स्वामी जी के हाथ में वापिस आ गया।

स्वामी सदानन्द रात को अगले गाँव में ठहर कर दूसरे दिन हल्दी घाटी पहुंचे।

एक तीर्थ-यात्री के तौर पर स्वामी सदानन्द हल्दी-घाटी का दर्शन करने गये थे। वहाँ के पत्थरों, ऊँची-नीची जगहों, नालों और खड्डों को उन्होंने बहुत भक्ति-पूर्वक देखा। वहाँ की पीली भूमि उन्हें राजपूतों के केसरिया बाना की याद दिलाती थी। वहाँ उन्होंने राणा प्रताप के बहा-दुर घोड़े चेतक की समाधि देखी। इस ऐतिहासिक स्थान की उपेक्षा देख-कर स्वामी सदानन्द का हृदय बहुत क्षुब्ध हुआ। प्रताप के वंशज आज भी उदयपुर के शासक हैं। उदयपुर शहर में वाइसरायों और दूसरों के कितने

ही स्मारक तथा मूर्तियाँ लाखों रुपये खर्च करके खड़ी की गयीं, लेकिन हल्दी घाटी में सिवा चेतक के स्मारक के कोई उसकी ऐतिहासिकता को बताने वाला चिन्ह नहीं खड़ा किया गया और चेतक का स्मारक भी स्वयं प्रताप ने खड़ा किया था।

स्वामी सदानन्द ने अब पश्चिम का रुख लिया। मारवाड़ के रेगिस्तान में होकर पहले पैदल, फिर रेल से एक दिन वह कराँची स्टेशन पर पहुंच गये। वह अधिवेशन से कुछ दिन पहले ही पहुंच गये। काँग्रेस नगर अभी बन रहा था। उन्हें शहर के एक छोर से दूसरे छोर पर जाना था। इसी समय टैक्सी वाला पीछे से आकर गाड़ी खड़ी करके बोला, "आप को कहाँ जाना है।" स्वामीजी ने काँग्रेस नगर के पास के एक बड़े मन्दिर का नाम लिया। टैक्सी वाले ने भीतर बैठने के लिए कहा, इस पर स्वामी ने कहा, "मेरे पास पैसे नहीं है।"

"आप का आशीर्वाद मेरे लिये काफी है। आप बैठें, मैं आप के जाने की जगह पर उतार दूंगा।" शायद स्वामी के स्वस्थ और सुन्दर गौर चेहरे पर टैक्सी वाले को ब्रह्मचर्य का तेज झलकता दिखायी पड़ा, इसलिये वह आशीर्वाद लेने के लिये उतावला हो गया। चन्द मिन्टों में स्वामी अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच गये।

दो-तीन दिन इधर-उधर तलाश करने के बाद बाबा गुरुमुखसिंह, बाबा प्यारासिंह, बाबा सादेवसिंह, आदि ग़दर पार्टी के साथियों से उनकी भेंट हुई। उन्हीं की तरह बाबा गुरुमुखसिंह भी जेल से भागे हुये थे और कम्युनिस्ट ही नहीं हो गये थे, बल्कि कम्युनिस्ट देश (सोवियत) में वर्षों रहकर आये थे। पृथ्वीसिंह को अबतक अपने पुराने साथियों से मिलने का मौक़ा नहीं मिला था। अब उन्हें अपने साथियों से क्रान्ति और राजनीति के बारे में खुल कर बात करने का मौक़ा मिला।

उन्होंने समझाया कि क्रांति करना सिर्फ़ चन्द बहादुर तरुणों के वश का काम नहीं है। उसमें सारी जनता ; मज़दूरों-किसानों की बड़ी ताक़त को शामिल करना होगा और मज़दूर-किसान क्रांति के महत्व को समझकर तभी उसमें शामिल हो सकते हैं, जबकि उनके रोज़-बरोज़ के कष्टों और कष्टप्रतिकार की लड़ाइयों को क्राँति की लड़ाई के साथ जोड़ा जा सके। दो-तीन दिन की बातचीत के बाद पृथ्वीसिंह को नया मार्ग साफ़ दिखाई देने लगा। साथियों ने तै किया, अब पृथ्वीसिंह को में रहकर जोखिम उठाने की ज़रूरत नहीं। उन्हें पहले रूस जाकर मार्क्सवाद और क्रांतिकारी कार्य प्रणाली का अध्ययन कर आना चाहिये।

अध्याय ११

सोवियत रूस में

(१९३१-३५)

अब पृथ्वीसिंह को सोवियत के लिये रवाना होना था। पृथ्वीसिंह को पठानों के स्वतन्त्र इलाके और अफ़गानिस्तान के रास्ते मे जाना था। वहाँ से वह पठान बनकर ही जा सकते थे । १५ दिन हजामत न बनाने से करांची में ही दाढ़ी-मूंछ बढ़ गयी थी। वहाँ पर वह करीमखाँ के नाम से पठानों की पोशाक पहनकर ख़ुदाई ख़िदमतगार बने थे। कांग्रेस के बाद ख़ुदाई ख़िदमतगारों के साथ वह भी पेशावर के लिये रवाना हो गये। लाहौर में एक सी. आई. डी. का आदमी उनके डिब्बे में आया, लेकिन पठानों ने मज़ाक करके इतना तंग किया कि उसे भागना पड़ा। पेशावर से वह फिटन में उतमाज़ई गये, वहाँ आगे का इन्तज़ाम करने के लिये १०–१५ दिन रहना पड़ा।

बड़े-बड़े नेता करीमखाँ की क़दर करते थे और उनकी सहायता करने के लिये तैयार थे। उनके शरीर पर अब एक ग़रीब पठान का मैला-कुचैला कुर्ता-सलवार और फटी पगड़ी थी। उन्होंने किसी पठान को सिर पर चप्पल रख कर चलते देखा तो उसकी भी नक़ल की। एक दिन पथ-प्रदर्शक के द्वारा उन्हें सीमा की ओर भेज दिया गया। इधर-उधर गाँव में चक्कर लगाते दोपहर के चले रात को ७ बजे वह शबक़दर के आसपास के सीमान्त पर एक गाँव में जा पहुंचे। उनमें आत्मविश्वास पूरा था और अपने पार्ट को वह पूरे तौर से निभाने के लिए तैयार थे। भोजन में भी एकाध दिन हिचकिचाहट हुई, लेकिन अब पूरे इतमीनान के साथ एक थालपर बैठकर वह बिसमिल्ला कर सकते थे और हर पठानी खाने को जीभ चटकार-चटकार कर खा सकते थे। शकल-सूरत और पोशाक से भी उन्हें कोई पहचान नहीं सकता था, लेकिन यदि कोई सवाल कर बैठता तो ? हां, भाषा न जानने के ख़याल से कभी-कभी करीमखाँ का दिल धड़क उठता।

मई १९३१ का आरम्भ था। वह एक छोटे से गाँव में किसी एक दोस्त के यहाँ ठहरे थे। गाँव में अंग्रेजी गुप्तचरों की भरमार थी। रात के वक्त तारों से भरे खुले आसमान के नीचे लेटे हुए वह सोच रहे थे कि कल या तो सूरज एक स्वतन्त्र भूमि में उगेगा या बेड़ियों से जकड़े जेल खाने में। चिन्ता के मारे वह सारी रात सो न सके। गाँव में ग़ैर इलाक़े का एक काफ़िला ठहरा हुआ था, उसी के साथ सबेरे करीमख़ाँ को भी सरहद पार करना था। सुबह · बजे ख़रमेदार सिपाही काफ़िले के आदमियों को देख गया। उनमें न जाने कितने करीमख़ाँ जैसे थे। झुटपुटे में ही १०० आदमियों का काफ़िला सीमा पार हुआ। लेकिन करीमख़ाँ की तब तक जान में जान न आयी, जबतक कि वह बन्दूक की मार से बाहर न हो गये। रात को उस पहाड़ी, ऊँची-नीची कंकरीली-पथरीली ज़मीन में चलना आसान काम न था, कहीं-कहीं जूता फिसलता।

काफ़िला शाम तक चलता गया। मई की गर्मी थी, सबसे ज़्यादा तकलीफ़ पानी की रही। अब वह स्वतन्त्र पठानों के इलाक़े में होते जा रहे थे। दूसरे दिन दोपहर को मोहमन्द इलाक़े में होते तुरंगज़ई पहुंचे। करीमख़ाँ के पास मुल्ला तुरंगज़ई के लड़के बादशाह गुल के लिये चिट्ठी थी, मगर बादशाह गुल उस वक्त घर पर नहीं थे। मुल्ला ने ख़ातिर की। बादशाह गुल भी आ गये, वह एक शिक्षित, समझदार और संस्कृत आदमी जान पड़े। करीमख़ाँ को मोहाज़िर के तौर पर परिचय देना पड़ा। बादशाह गुल ने जलालाबाद के गवर्नर के नाम चिट्ठी लिख दी और एक पथप्रदर्शक दिया। रात को उस दिन वह बादशाह गुल के दोस्त के घर पर ठहरे। जगह ख़तरे की थी। हर जगह डाकुओं का भय था, लेकिन रास्ता बताने वाला आदमी साथ में था, इसलिये वह जानते थे कि आगे क्या आने वाला है। अफ़ग़ानिस्तान की सीमा पार कर वह डाक्का पहुंचे। रात को होटल में सो गये। सबेरे लारी में चढ़ जलालाबाद पहुंचे। गवर्नर को इन्तज़ाम करने के लिये कहा; लेकिन पुलिस अफ़सर ने मोहम्मद अली (अब यही नाम था) को हिरासत में ले लिया और उनसे बयान माँगने लगा। मुहम्मद अली ने कहा, "मैं हिन्दी मोहाज़िर हूं। अंग्रेज़ों के राज से भागकर इस्लाम के मुल्क में आया हूं।" इससे ज़्यादा उन्होंने पुलिस अफ़सर से कुछ कहने से इनकार कर दिया और कहा कि मुझे गवर्नर के पास ले चलो। गवर्नर के पास गये और उससे

कहा कि एक हिन्दी मोहाजिर मुसलमान इस्लामी मुल्क से ज़्यादा आशा रखता है। गवर्नर ने पुलिस अफ़सरों को उन्हें तुरन्त काबुल भेज देने का हुक्म दिया। अफ़सर ने अब भी पूछा कि क्या हिरासत में? गवर्नर ने कहा, "नहीं, मामूली तौर से।"

पुलिस अफ़सर ने लारी वालों से उनको ले जाने के लिये कहा। लारीवाला समझ रहा था कि सरकारी बेगार होगी। वह गाड़ी में जगह न होने का वहाना करने लगा। मुहम्मद अली ने उसके कान में कहा, "मैं और पैसा दूंगा।" उसने चमड़े के गट्ठरों के ऊपर बैठने के लिये कह दिया। रास्ते में हिन्दू ड्राइवर से मुहम्मद अली की बातचीत हुई। वह कांगड़े का राजपूत था। यात्री को क्रांति और देशभक्ति की बातें करते देखकर उसकी श्रद्धा बढ़ गयी। उसने उन्हें खाना खिलाया। काबुल के भीतर दाखिल होते वक़्त पुलिस ने पासपोर्ट माँगा लेकिन ड्राइवर ने कह दिया, यह मोहाजिर है और गप्पें लगाता हुआ उन्हें साफ़ निकाल ले गया।

काबुल में मुहम्मद अली को डेढ़ माह रहना पड़ा। वहाँ कितने ही और हिन्दी मोहाजिर थे, किन्तु उनकी राजनीतिक चिन्तना बहुत निर्बल थी। मुहम्मद अली के लिये दिन काटने मुश्किल हो गये। उनके साथी उन्हें किसी अच्छे विश्वासपात्र पथ-प्रदर्शक के साथ भेजना चाहते थे, लेकिन ऐसा कोई व्यक्ति मिल नहीं रहा था। मुहम्मद अली को बराबर छिपकर ही रहना पड़ता। उधर उनके दोस्त पथ-प्रदर्शक खोजने की कोशिश कर रहे थे, इधर मुहम्मद अली भी चुपचाप न बैठे थे। संयोग से उनका परिचय घर के तरुण पठान से हो गया। महीने भर उसके घर में रहना पड़ा, दोनों में राजनीतिक, सामाजिक बातें हुआ करतीं। तरुण एक देशभक्त अफ़गान था। उसने मुहम्मद अली के दिल में जलती स्वतन्त्रता की आग का जब परिचय पाया, तो वह अनुरक्त बन गया। महीना बीतते दोनों घनिष्ट मित्र हो गये। मुहम्मद अली ने उससे अपने उद्देश्य को बताया और वह अच्छा पथ-प्रदर्शक बनने के लिये तैयार हो गया। जब मुहम्मद अली ने अपने साथियों से पथ-प्रदर्शक मिल जाने की बात कही तो उन्होंने बहुत समझाया। जब इस पर भी मुहम्मद अली जिद करने लगे तो साथियों ने कहा, "तुम बड़े मूर्ख हो, यदि तुम इस तरह से गये तो १० दिन के भीतर ही बेड़ियों में बँधे काबुल लौट

आओगे।" मुहम्मद अली ने भी जवाब दिया, "तुम चिर-प्रवासी भर हो, तुम्हें क्रांतिकारियों का तजुर्बा क्या है?" आखिर में उन्होंने जाने की इजाजत दे दी।

हिरात को

मुहम्मद अली की पठानी पोशाक में दाढ़ी थोड़ी और बढ़ गयी थी। उन्होंने हिरात जाने वाली एक लारी पर जाना ठीक किया। उनकी दोनों जेबों में अफ़गानी सिक्के भरे हुये थे और साथ ही काफी अमरीकन नोट भी। लारी चली! चार घन्टा चलने के बाद वह एक फ़ौजी चौकी पर खड़ी हुई। सिपाही यात्रियों को देखने आये और उनमें से सिर्फ़ मुहम्मद अली के पथ-प्रदर्शक को ही सन्देहजनक समझा। तरुण सीधे अफ़सरों के पास गया, उनसे बात की और फिर आकर मोटर पर बैठ गया।

लारी गज़नी पहुंची। उस वक़्त उनके दिमाग़ में कभी पृथ्वीराज की क़ैद का ख़याल आता और "अब न चूक चौहान" कानों में सुनायी देता और खच्चरों पर लदे हीरा, मोती, सोने, चांदी के विजय-पुरस्कार याद आते। गज़नी से लारी क़न्धार पहुंची। यहाँ मालूम हुआ कि वही लारी हिरात नहीं जा सकती। दूसरी लारी के लिये उन्हें पाँच दिन तक इन्तजार करना पड़ा। क़न्धार के सस्ते मेवे और शहर के बाहर के सुन्दर बाग़ उनके मन को सन्तुष्ट नहीं कर सकते थे। क्योंकि उनके मन की धुन किसी दूसरी ओर थी।

आखिर ख़ुदा-ख़ुदा करके एक लारी मिली और वह हिरात के लिये रवाना हो गये। क़न्धार से कुछ मील चलने के बाद उन्हें एक नदी मिली, जिस पर कोई पुल न था। लारी का इंजन धार के बीच में जाकर बन्द हो गया। मुसाफ़िरों को उतरकर अपना-अपना सामान सिर पर लादकर पार होना पड़ा। अब सवाल था लारी को उसके माल के साथ खींचकर बाहर लाने का। मुहम्मद अली ने सबसे पहले अपने को पेश किया। कहने-सुनने पर ३ या ४ आदमी और तैयार हो गये। मुहम्मद अली ने लारी निकालने में जितनी मेहनत की थी, उससे ड्राइवर और सभी मुसाफ़िर उन्हें विशेष सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। रात को भूखे ही लोगों को वहीं पड़ा रहना पड़ा। एक दिन की यात्रा के बाद फिर लारी

खड़ी हो गयी और घोर बियाबान में जहाँ कोई मदद नहीं मिल सकती थी। ड्राइवर ४ दिन तक मत्था पटकता रहा। आखिर उसे सफलता हुई। यात्रियों ने चलने के लिये ज़ोर देना शुरू किया। ड्राइवर रात को चलने के लिये तैयार नहीं था। चार घन्टा चलने के बाद बन्दूक की आवाज़ सुनाई दी। यात्रियों ने समझा, डाकू आ पहुंचे। लारी रोक दी गयी और लोग डाकुओं के आने की प्रतीक्षा करने लगे। यात्रियों में ४ धनी आदमी थे और वह हज करके लौट रहे थे। वह तुरन्त लारी से उतर पड़े और घुटने के बल हो अल्लाह से रहम की भीख माँगने लगे। दो यात्रियों के पास बन्दूकें थीं। लेकिन हिम्मत नहीं थी। हाजियों को प्रार्थना करते देख मुहम्मद अली पेशाब के बहाने कुछ दूर चले गये और ज़मीन खोदकर सारे नोट और पैसों को उसमें रखकर लौट आये। उन्होंने एक बन्दूक वाले से पूछा कि क्या तुम बन्दूक अच्छी तरह चला सकते हो। दुविधा में देखकर उन्होंने उससे बन्दूक माँग ली। यह शिकारी दुनाली थी। मुहम्मद अली बन्दूक में गोली भर लारी के पीछे झुक कर निशाना लेने की मुद्रा में बैठ गये। ५ मिनट बाद फिर दुबारा गोली दग़ने की आवाज़ सुनायी दी। इस बार सभी यात्री घुटने टेककर प्रार्थना करने लगे। महम्मद अली भी घुटना टेके हुए थे, मगर बन्दूक का निशाना लेने के लिये। २ घण्टे तक वह उसी तरह से इन्तजार करते रहे फिर एक गोली की आवाज आयी आखिर लोगों को पता लगा, यह डाकू नहीं हैं, किसान जंगली जानवरों को खेतों से भगाने के लिए खाली फैर कर रहे हैं। लारी फिर चली।

हिरात में

यद्यपि काबुल से हिरात ४ दिन में पहुंचा जा सकता है, लेकिन मुहम्मद अली को २० दिन लगे। लारी जब हिरात के दरवाज़े पर आयी तो देखा एक पहरे वाला काबुल से आने वाले मुसाफ़िरों को बहुत ध्यान से देख रहा है। हिरात का गवर्नर अमानुल्लाह के समय ही से चला आ रहा था। अब हुकूमत थी नादिर खान की।

इसीलिए गवर्नर को हमेशा काबुल से ख़ुफिया के आने का डर रहता था। मुहम्मद अली ने दो बार अपनी बहादुरी दिखलायी थी, इसलिये सभी यात्री अपने को उनका कृतज्ञ समझते थे। सभी उन्हें

हिन्दुस्तानी समझते थे और खयाल करते थे कि यह कोई रहस्यपूर्ण कामके लिए हिरात जा रहा है। यात्रियों ने जानते हुए भी मुहम्मद अली के बारे में कुछ नहीं बताया और वह बिना कठिनाई के हिरात पहुँच गये।

तरुण पथ-प्रदर्शक सोवियत सीमा तक साथ चलने के बारे में कोई निश्चय नहीं कर पाता था। सीमा पार पकड़े जाने पर बोल्शेविक बुरी तरह सताते हैं आदि आदि कितनी ही कथाएं लोगों में प्रचलित थीं। मुहम्मद अली उसे और ७० मील ले जाने के लिए ज़ोर नहीं देना चाहते थे। तरुण विश्वास-पात्र पथ-प्रदर्शक ढूंढ़ निकालने के लिए कोशिश करने लगा। मुहम्मद अली दो दिन के लिये १००) रु० देने को तैयार थे। २० दिन बीत गये, इतने में पुलिस को पता लग गया। दोनों थाने में बुलाये गये और पूछा गया कि क्यों गवर्नर की आज्ञा बिना तुम शहर में रह रहे हो? मुहम्मद अली दो दिन तक अपना बयान लिखवाते रहे और पुलिस दुभाषिये की मदद से उस बनावटी कहानी को लिखने में लगी हुई थी। तरुण को झूठी कहानी लिखाने की जरूरत नहीं थी, उसके पिता के कई घनिष्ट मित्र हिरात में रहते थे।

चौथे दिन दोनों को गवर्नर के सामने पेश होना था। गवर्नर बहुत कड़ा आदमी है, वह खुद अपने हाथों से पीटता है। इस तरह की बहुत सी बातें मशहूर थीं। मुहम्मद अली का तरुण साथी घबड़ा गया। उसने क्लर्क से प्रार्थना की कि आज हमें मत पेश करो और उस दिन दोनों पेशी से बच गये। इसी बींच तरुण के पिता के मित्रों को खबर लगी। उन्होंने पुलिस अफसर से मिलकर उसे जमानत पर छोड़ने के लिए प्रार्थना की। एक आदमी छोड़ने का परवाना लेकर थाने पर आया और बोला, "यह लो जमानत पर छोड़ने का परवाना आ गया।" सिपाही पढ़ा लिखा नहीं था। उसने दोनों को छोड़ दिया। मुहम्मद अली बाहर निकल आये और वह जानते थे कि एक ही दो घंटे में ग़लती मालूम हो जायेगी।

अब एक मिनट भी खोना भारी बेवक़ूफ़ी थी। उन्होंने अपने तरुण पथ-प्रदर्शक को १००) देकर बिदाई ली और पांच ही मिनट बाद सोवियत सीमा की ओर जाने वाले रास्ते पर चल रहे थे। लेकिन बड़े रास्ते पर चलना खतरे की चीज़ थी। इसलिए शहर से बाहर निकलते ही उन्होंने खेतों का रास्ता पकड़ा। वह जान छोड़कर दौड़ रहे थे क्योंकि किसी वक़्त भी पुलिस के सवारों के आ धमकने का डर था। जून की

गर्मी थी, वह पूरे ४ घंटे तक दौड़ते चले गये। एक पहाड़ पर पहुँच कर वह कुछ देर तक विश्राम लेने और सोचने के लिए बैठ गये। सड़क पकड़कर चलना खतरे से खाली न था। यद्यपि वह जानते थे सीमा उत्तर दिशा में है, लेकिन नाक की सीध में वह जा नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने तार के खम्भों के साथ-साथ चलने का निश्चय किया।

सूर्यास्त हो रहा था, देखा दो सवार दौड़े आ रहे हैं। उनका दिल कांपने लगा। तो भी वह छिपने के लिए पहाड़ के पीछे दौड़ गये। कुछ देर तक चट्टान पर वह लेटे रहे। प्यास अलग सता रही थी और सवारों के आ पहुंचने का भय अलग।

चांद निकल आया, ठंडी हवा के झोंके ने प्यास को कुछ दबाया। डाकुओं का जहां हर वक्त ख़तरा हो, वहाँ रात को कौन सफ़र करने की हिम्मत कर सकता है, लेकिन मुहम्मद अली तो जान को हथेली पर लेकर चल रहे थे। वह रात भर चलते रहे। सूर्योदय के वक़्त किसी खड्ड में छिपकर विश्राम लेने लगे। थकावट और भूख के मारे वह इस तरह दिन काट नहीं सकते थे। उनके पास रुपये थे। लेकिन, चाँदी-सोना तो नहीं खाया जा सकता। कुछ दूर जाने पर कुछ भिखमंगे आते दिखलायी पड़े। अपने फटे कपड़ों में वह भी भिखमंगे से दीखते थे। उन्होंने उनसे कुछ खाने के लिये माँगा। भिखमंगों ने रोटी के कुछ सूखे टुकड़े अपने चीथड़ों में से निकाल कर दिये। मुहम्मद अली ने खाने की कोशिश की लेकिन वह पत्थर की तरह कड़े थे। आगे एक जलाशय मिला जिसमें टुकड़ों को पहले भिगो दिया, फिर खाने लगे। इन टुकड़ों का स्वाद इतना मधुर था, जितना कि उन्हें किसी खाने में नहीं आया था। आखिर भूख भी तो गजब की था! रात को वह सड़क के साथ-साथ भले ही चल लेते, लेकिन दिन को उनके कदम तार के खम्भों के साथ-साथ चलते थे। एक जगह तार और सड़क साथ-साथ जा रहे थे। मुहम्मद अली ने खेतों का रास्ता लिया। पहाड़ के किनारे कुछ ख़ानाबदोश डेरा डाले पड़े थे। मुहम्मद अली ने बच्चों में कुछ पैसे बांटे, जिस पर घर वालों ने मक्खन, पनीर, रोटी और दूध दिया। मुहम्मद अली ने लड़कों को पैसा प्रेम-प्रदर्शन करने के लिये दिया था, दाम देने के लिए नहीं। लेकिन वह डेरे वालों की मित्रता प्राप्त करने के लिए काफी था।

ख़ानाबदोशों ने उनसे इस तरह पहाड़ों में घूमने का कारण पूछा। मुहम्मद अली ने कहा, "मेरा प्यारा भाई कुश्क में एक दूकानदार के यहां नौकर है। वह बीमार है। आख़िर वक़्त में भाई को देख लेना चाहता हूं। मेरे पास इतने पैसे नहीं थे कि हिरात से लारी पर चढ़ ; जाता।

उन सीधे-सादे लोगों ने मुहम्मद अली की बात पर विश्वास किया और कुछ की तो आंखें भी गीली हो आयीं, जब उन्होंने देखा कि भाई के प्यार में मजनूं इस आदमी के पांव में कितने छाले पड़ गये हैं; एक आदमी ने कुश्क के पास तक के लिये अपना घोड़ा देना चाहा, जिस पर मुहम्मद अली अपनी टूटी-फूटी फारसी में बोलने लगे, "ओह बिरादर! अल्लाह का हुक्म है कि मैं इन सब तकलीफ़ों को बर्दाश्त करूं। मैं उसके हुक्म से भागना नहीं चाहता। अल्लाह तुम्हारी भलाई करे।" जब मुहम्मद अली ने घोड़ा लेने से इनकार कर दिया तो उनकी करुणा और बढ़ गयी और उनमें से एक ने उन्हें रास्ते के बारे में पूरे विवरण के साथ बताया। सूर्यास्त होने लगा था, तभी मुहम्मद अली ने खानाबदोशों के डेरे को छोड़ दिया। मील-डेढ़ मील जाने के बाद वह रात के अंधेरे की प्रतीक्षा में एक जगह पड़ रहे। यद्यपि रात उजाली थी, मगर उस वक्त सड़क से चलने की हिम्मत करने वाले मुश्किल ही से मिलेंगे, यह मुहम्मद अली को मालूम था। अब उन्होंने सड़क पकड़ी। अगले २० मील उन्हें रात-रात में पूरे करने थे और रास्ते में ३ सरकारी चौकियों से बचते हुए। वह तेज़ी से आगे बढ़ते जा रहे थे। एक जगह भेड़वालों के बड़े-बड़े कुत्तों ने आ घेरा। मुहम्मद अली के पास उन्हें मारने के लिए डंडा भी न था। यदि डंडा होता तो भी क्या वह कुत्तों को मारकर भगा सकते? उसी वक्त उन्हें रूमाल में बंधी रोटी की याद आयी। उन्होंने एक टुकड़ा कुत्तों के सामने दूर फेंका। कुत्ते उधर दौड़े और इसी बीच में वह जितना भाग सकते थे, भागे। कुत्ते रोटी खतम कर फिर पीछा करते और वह फिर एक टुकड़ा फेंकते। इस तरह वह कुत्तों के डेरे से दूर निकल आये। अब उन्होंने पीछा करना छोड़ दिया, मगर थकावट के मारे उनका शरीर चूर-चूर हो रहा था। कुछ देर फिर वह ज़मीन पर पड़े रहे, लेकिन दिन निकलने से पहले अफ़ग़ानिस्तान की सीमा न पार कर लेना खतरे की बात होगी, यह वह अच्छी तरह जानते थे। फिर उठकर चलने लगे। कुछ देर बाद पीछे से उन्हें घंटी की

आवाज़ टन, टन सुनायी दी। देखा, एक लदा ऊंट बेतहाशा दौड़ा आ रहा है और पीछे से उसका मालिक पकड़ने की कोशिश कर रहा है। मुहम्मद अली यद्यपि आदमियों से बचकर चल रहे थे, लेकिन उस वक्त मदद करना उन्होंने हानिकारक नहीं समझा। ऊँट के पास आते ही उन्होंने कूदकर उसकी नकेल पकड़ ली और थोड़ी सी दिक्कत के बाद ऊँट को खड़ा करने में सफल हुये। ऊँट वाला बहुत बहुत धन्यवाद देने लगा। उसने ऊँट को बैठाया और साथ बैठने के लिए कहा, लेकिन मुहम्मद अली ने धन्यवाद के साथ बड़े नरम शब्दों में न चढ़ने की बात कही। दोनों कितनी ही दूर तक पैदल ही चले। इस वक्त कुश्क और सोवियत सीमा के बारे में उसने उन्हें कई ज्ञातव्य बातें बतायीं। उसने खास तौर से सजग किया कि नदी के किनारे मत चलना। नदी उनके दाहिने से बह रही थी। नदी अफ़ग़ानिस्तान और सोवियत की सीमा पर है और उसे पार करने की कोशिश करने में गोलीखाने का ख़तरा है। सबेरा होने को आ रहा था। मुहम्मद अली ने नमाज़ के बहाने हाथ-मुंह धोने के लिए ऊँट वाले से छुट्टी ली।

सोवियत की भूमि पर

पूर्व दिशा में सूर्य की लाली फैल रही थी। मुहम्मद अली झाड़ियों के बीच से होते हुए नदी के किनारे पहुंचे। नदी में पानी ज्यादा गहरा नहीं था, लेकिन धार चौड़ी थी। वह आखिरी छलांग मारने से पहिले ज़रा देर ठहर कर कुछ सोचने लगे। उन्होंने दौड़ते हुए ही धार को पार करने का निश्चय किया, जिसमें कि सीमा-रक्षक सिपाहियों को निशाना ठीक करने का मौक़ा न मिले। आख़िर ख़तरे के वे चन्द मिनट भी बीत गये और गोलियोंकी वर्षा नहीं हुई। इस प्रकार २८ जुलाई, १९३१ को पृथ्वीसिंह समाजवाद की भूमि पर पहुंच गये।

पिछले दो दिनों की दौड़-धूप ने उन्हें इतना अधिक थका दिया था कि उनका सारा शरीर अकड़ गया। वह कितनी ही देर तक एक जगह लेटे रहे। यह भी ख्याल में आया कि कोई आकर पकड़ेगा और किसी अधिकारी के पास ले जायगा। जब किसी को आते नहीं देखा तो ख़ुद वहाँ से उठे और एक मजदूर के पास जाकर बोले कि मुझे किसी जवाब-देह पुरुष के पास ले चलो। मजदूर उन्हें एक अफ़सर के पास ले गया।

अफ़सर का पहला सवाल था, "तुम क्यों यहाँ आये हो?" पृथ्वीसिंह ने बड़ी नर्मी के साथ फ़ारसी ज़बान में कहा, "मैं एक भारतीय क्रांतिकारी हूँ। मुझे किसी जवाबदेह अफ़सर के पास ले चलें, तो मैं वहाँ सब बातें बताऊँ।" उसके चेहरे से मालूम हुआ कि वह बातों को तो अच्छी तरह समझ नहीं पाया, लेकिन उनकी गम्भीरता को जान गया। वह पृथ्वीसिंह को एक अफ़सर के पास ले गया। अफ़सर एक अजनबी को आफ़िस में देखकर एक दो मिनट तक कुछ सोचता रहा, फिर मुस्कराते हुए रूसी भाषा मे बोला। पृथ्वीसिंह ने अंग्रेजी में बात करनी चाही। इस पर अफ़सर ने कहा, "इंगलिश नेत्।" पृथ्वीसिंह ने समझा कि वह अंग्रेजी नहीं जानता। पृथ्वीसिंह ने फ़ारसी में बोलना शुरू किया, अफ़सर ने एक दुभाषिये को बुला लिया। पृथ्वीसिंह ने कहा कि पहले तो एक बाल्टी गर्म पानी मँगा दीजिये। पानी आया, पृथ्वीसिंह ने बूट पहने ही दोनों पैरों को बाल्टी में डाल दिया और बात-चीत आधा घंटे तक होती रही। फिर सावधानी के साथ हल्के हाथ से बूट को उतार दिया। कितनी ही जगह चमड़ा निकल गया था। दवा लगाकर पट्टी बाँध दी गयी। पृथ्वीसिंह को कुछ भोजन कराकर, बगल के कमरे में सोने के लिये छोड़ दिया गया। दोपहर बाद कार में उन्हें एक दूसरे शहर में पहुंचाया गया। वहाँ उनसे कितने ही सवाल पूछे गये और एक सप्ताह तक वहीं रखा गया।

अब विशेष जाँच के लिये उन्हें ताशकंद भेजा गया। दुभाषिये की मदद से अफ़सर ने उनका बयान लिया। पृथ्वीसिंह को उसके सामने किसी चीज को छिपाने की ज़रूरत न थी। उन्होंने अमरीका जाने से लेकर आज तक की सारी कथा कह सुनायी।

लेकिन यदि ऐसी कथाओं को सुन करके ही अफ़सर मान लिया करते, तो सोवियत सीमा की रक्षा हो चुकती। दुनियां की सभी पूंजीवादी सरकारें, किसान-मजदूरों के इस राज से भयभीत थीं; उनको पूरा डर था कि ख़रबूज़े को देखकर ख़रबूज़ा रंग पकड़ेगा और दुनियाँ की ९० फ़ीसदी जनता जो कि ग़रीब किसान-मजदूरों की जनता है—अब और अधिक दिनों तक शासन को धनिकों के हाथ में रहने देकर खुद नरक की ज़िन्दगी बिताने के लिये तैयार न होगी। वह खुद इन जोंकों को सिंहासन से हटाकर शासन सूत्र को अपने हाथ में लेगी। हंगरी, जर्मनी और

योरप के दूसरे मुल्कों में उन्होंने जनता को ऐसे प्रयत्न करते देखा था। इसलिए पूंजीवादी सरकारें अपने गुप्तचरों को बराबर किसी न किसी तरह सोवियत के भीतर भेजने की कोशिश करती थीं। इसलिए अफ़सर ने तब तक पृथ्वीसिंह के ऊपर रोक-थाम रखना जरूरी समझा, जबतक कि मास्को में रहने वाले ग़दर पार्टी के नेताओं से पूछकर पृथ्वीसिंह के बयान की तसदीक़ न कर ली जाय।

ताशकन्द में उन्हें एक महीने तक इसी तरह रहना पड़ा। वह एक राजबन्दी का जीवन बिता रहे थे।

मास्को में

एक दिन सबेरे पृथ्वीसिंह ताशकंद के सबसे अच्छे होटल में थे। अधिकारियों को पृथ्वीसिंह की बात की सच्चाई का प्रमाण मिल गया। अब सभी उन्हें स्नेह और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने ताशकंद के कितने ही भागों को घूमकर देखा और यह भी देखा कि किस तरह वहाँ के लोग एक दूसरी ही दुनियां में बसे हुए हैं, जहाँ मनुष्य, मनुष्य के भीतर वह भेद-भाव नहीं है, जिसे कि उन्होंने अब तक की देखी दुनियां में देखा था।

अब उन्हें मास्को जाना था और अकेले ही इतने दिनों में उन्होंने पचीस-पचास रूसी शब्द सीख लिये थे। यद्यपि रेल में भीड़ थी, लेकिन पृथ्वीसिंह को अपनी चार दिन की यात्रा के लिये एक आराम-देह सीट दी गयी थी। पृथ्वीसिंह को यह ख़याल करके बहुत आनन्द हो रहा था कि वह दुनियाँ की पहली मजूर—सरकार की समाजवादी राजधानी में जा रहे हैं। मास्को, जिसकी ओर सारी दुनियां की जाँगर चलानेवाली जनता बड़े ही सम्मान के साथ देखती है, अब उसी मास्को में वह क्रांतिकारी मार्क्सवाद का पाठ पढ़ने जा रहे हैं। अब वह उस आखिरी मंजिल पर पहुंच रहे हैं, जिसके लिये उन्होंने इतने जोखिम और कष्ट उठाये। सितम्बर का अन्त था, वर्षा हो रही थी, जबकि उन्होंने गाड़ी पकड़ी।

रेल के सभी यात्री पृथ्वीसिंह को हर तरह से खुश रखने की कोशिश करते। वह भारत और भारत से बाहर गोरे लोगों के सम्पर्क में आये थे, लेकिन उनके अभिमान और अपमान भरे बर्ताव ने पृथ्वीसिंह के दिल में गोरे रंग के प्रति जबरदस्त घृणा पैदा कर दी थी। लेकिन

यहाँ गाड़ी में मास्को यात्रियों की अधिक संख्या गोरे रूसियों की थी। यहाँ इस चार दिन की यात्रा में उन्हें पता लग गया कि गोरे रंग का कोई दोष नहीं है। दोष है धनी-ग़रीब के वर्ग-भेद में, धनियों की शासन-व्यवस्था में। महात्मा और सिंहासन वाले स्वयं जात-पाँत, रंग-रूप लेकर आदमी-आदमी में घृणा पैदा करते हैं। यहाँ उन्हें मालूम हुआ कि मनुष्य वस्तुतः भाई-भाई हैं। सिर्फ़ अपने ही प्रति लोगों का भाव उन्होंने मधुर नहीं देखा, बल्कि मध्य एशिया के "काले" लोग भी गोरे रूसियों में सगे भाई से जान पड़ते थे। जो बातें वह अपनी आँखों के सामने देख रहे थे और जिनके कारण उनके सारे जीवन में ज़बरदस्त परिवर्तन हो रहा था, उन्हें वह सुनी-सुनायी बातों से नहीं समझ सकते थे। पृथ्वीसिंह का मधुर स्वभाव हमेशा ही छोटे-छोटे बच्चों को आकृष्ट करता रहा है। ट्रेन में चलने वाले लड़के उन्हें बराबर घेरे रहते और हर एक उन्हें अपनी भाषा सिखलाने की कोशिश करते। नौजवान आकर उनके पास बैठते, उनके व्यायाम-पुष्ट हाथों और पेशियों को दबाकर भीतर के बल का अनुभव करते, फिर खुश होकर बोल उठते, "खोची", "खोची" (मजूर) मजूर शब्द रूस में वही अर्थ नहीं रखता जो कि दुनिया के दूसरे मुल्कों में। मजूर वह है जो अन्न-धन पैदा करता है, लेकिन गँवार उजड्ड कह कर अपमानित किया जाता है, क्योंकि उसने शासन की बागडोर दूसरे के हाथ में दे रखी है। लेकिन रूस में मजूर अन्न-धन पैदा करता है, साथ ही शासन की बागडोर भी उसके हाथ में है। इसलिए वह सबसे ज्यादा सम्मान का पात्र है और "मजूर" शब्द एक बड़े उच्च सम्मान का शब्द है। तरुण पृथ्वीसिंह के मज़बूत हाथों को देखकर समझ लेते थे कि यह जोंकों के वर्ग का नहीं, बल्कि हमारे अपने ही वर्ग का आदमी है। तरुण सुन्दरियाँ और वयस्क लड़कियाँ उनकी आँखों की ओर देखकर मुस्कराते हुए कहतीं, "ओ, काक ख़रोशया चोर्नी ग्लज" (ओह, कितनी सुन्दर काली आँखें हैं!)।

पृथ्वीसिंह के वह चार दिन इतनी जल्दी बीत गये कि उन्हें इसका अफ़सोस हुआ। पाँचवें दिन वह मास्को की सड़कों पर थे।

मार्क्सवाद के विद्यार्थी (१९२१-२३)

स्टेशन से कोमिन्टर्न तक पहुंचने में दिक्क़त नहीं थी। उनके पास परिचय पत्र था, जिसे उन्होंने कामरेड मेयर को दिखलाया और वह उसी

दिन पूर्वी विश्वविद्यालय में पहुंचा दिये गये। उनके सभी प्रोफ़ेसर रूसी थे। हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों में कामरेड वासुदेवसिंह भी थे। जो आठ साल तक पंजाब की जेलों में राजबन्दी रहकर अभी हाल ही में छोड़े गये हैं और पंजाब के किसानों में जान पैदा कर रहे हैं।

पृथ्वीसिंह ने यद्यपि अम्बाला में स्कूल छोड़ने के बाद फिर किसी स्कूल या कालेज का मुंह नहीं देखा, लेकिन उनकी ज्ञान-पिपासा हमेशा ही तेज रही। अंडमान और राजमहेंद्री की जेलों में हिन्दी–उर्दू की जो भी काम की पुस्तकें उन्हें मिलतीं, वह उन्हें चाटे बिना न रहते। भावनगर में वह काफ़ी समय किताबों के पढ़ने में लगाते। पूर्वी विश्वविद्यालय में पढ़ने का जो कोर्स था, वह उन्हें बहुत कम मालूम हुआ। वह था भी प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिये। वह नहीं चाहते थे कि उनके दो साल का एक दिन भी बेकार जाय। उन्होंने पढ़ाई के कम होने की शिकायत की। उन्हें पता लगा कि लेनिन स्कूल की पढ़ाई ऊँची है, वह उसमें जाने के लिए ज़ोर देने लगे।

नवम्बर आया। ७ तारीख को महान् क्रांति का दिवस मनाया जा रहा था। शहर के हर एक भाग से लोग जुलूस बना-बनाकर क्रेमलिन के पास लाल मैदान की ओर जा रहे थे। पृथ्वीसिंह भी अपने विश्वविद्यालय के छात्रों के जुलूस में शामिल थे। सोवियत के बड़े-बड़े नेता लेनिन की समाधि की छत पर खड़े थे और सामने से बड़े-बड़े जुलूस निकल रहे थे। भारी टैंक पाँती से गड़गड़ाते आगे बढ़ रहे थे, फिर फ़ौजी लारियों पर सवार आधुनिक हथियारों से लैस सेना चल रही थी, फिर हल्के टैंकों की क़तारें। कहीं चुस्त सवार अपने दृढ़ घोड़ों पर चढ़े मार्च कर रहे थे और पीछे-पीछे पैदल सैनिक आ रहे थे। फिर मजदूरों की फ़ौजी गारद आ रही थी और अन्त में मजदूरों का वृहद जुलूस। बरफ़ पड़ चुकी थी और अभ्यास न होने से पृथ्वीसिंह एक–दो जगह बिछलकर गिरे भी। लाल मैदान के आसमान में सैकड़ों सैनिक विमान घन-घना रहे थे। समाजवादी जनता के इस अपार उत्साह को देखकर पृथ्वीसिंह ने अपने जन्म को सफल समझा। कामरेड स्तालिन, कलिनिन, वोरोशिलोफ़ आदि जन नायकों के साथ, चालीस पचास गज पर ही पृथ्वीसिंह का जुलूस गुज़र रहा था। उन्होंने नेताओं के चेहरों को बड़े ग़ौर से देखा।

पृथ्वीसिंह लेनिन स्कूल में जाने के लिए ज़ोर दे रहे थे। लेनिन स्कूल में कम्युनिस्ट पार्टी के मेम्बर ही लिए जाते थे। पृथ्वीसिंह अभी पार्टी मेम्बर नहीं थे। कठिनाई को उन्हें पार्टी में भर्ती करके दूर कर दिया गया।

लेनिन स्कूल में ५०० के क़रीब विद्यार्थी थे, जिनमें १०० स्त्रियां थीं। अंग्रेज़, फ्रान्सीसी, जर्मन, अमरीकन के अतिरिक्त चीन, जापान, मलाया, सुमात्रा आदि एशियाई मुल्कों के भी कम्युनिस्ट छात्र वहां मौजूद थे। पृथ्वीसिंह अंग्रेज़ी माध्यमवाली क्लास में शामिल हुए।

पढ़ाई के विषय थे—मजदूर वर्ग का इतिहास, क्रान्तिकारियों का इतिहास, अर्थशास्त्र, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। पृथ्वीसिंह अब अपनी पढ़ाई में पिल पड़े और छः महीने बीतते-बीतते अध्यापकों ने उनकी पढ़ाई की दाद देनी शुरू की।

१९३२ की जनवरी या फरवरी में, उन्हें बुखार हो आया। पूरी तरह से स्वस्थ होने के लिए मास्को के पास ही उन्हें एक स्वास्थ्य-भवन में भेजा गया। लेकिन वह वहाँ दस बारह दिन से ज़्यादा नहीं ठहर सके। वज़न ठीक होते ही पढ़ाई में पीछे रह जाने का डर मालूम हुआ। यहां उनका नाम था पॉलरिचार्ड मार्को! मेक्सिको-निवासी मॉर्को मास्को में कम्युनिज़्म सीखने आये हैं। लेकिन पढ़ाई में सैनिक शिक्षा भी शामिल थी और हफ्ते में कुछ दिन क़बायद-परेड, रिवाल्वर, रायफ़ल, हैन्डग्रेनेड, मशीन गन चलाना, सड़कों पर लड़ना आदि की शिक्षा पहले ही साल उन्हें समाप्त करनी पड़ी।

राज महेन्द्री जेल में रहते वक़्त असहयोग काल में पृथ्वीसिंह भी राजनीतिक समस्याओं पर ख़ास तौर से सोचने लगे थे और उसमें धर्म, राजनीति और रूढ़ियों की एक अजब सी खिचड़ी पका रहे थे। वह समझते थे—सतयुग में ब्राह्मणों का राज था, फिर क्षत्रियों का, अब वैश्यों का है और आगे पूर्ण पुरुष का राज होने वाला है। हाथ से काम करने वालों के लिए उन्होंने यह नया शब्द गढ़ा था। यहाँ उन्हें समाज के विकास पर लेक्चर सुनने पड़े और उन्हें मालूम हुआ कि कैसे आरम्भ में शिकार और फल--संचय के जीवन में लोगों का सब कुछ साझे में था। वैयक्तिक सम्पत्ति नहीं थी, लेकिन पशु-पालन और उससे भी ज्यादा कृषि और तांबे-लोहे के इस्तेमाल के साथ धनी-गरीब का भेद उग्र

रूप लेने लगा। जिन थोड़े से लोगों के पास पशु या अन्न के रूप में ज्यादा सम्पत्ति आ गयी, वे दूसरों को मजूरी पर रख कर उनसे अपने लिए और धन कमवा सकते थे, उनकी सम्पत्ति की ओर कोई आँख न फेरे, इसके लिए वह भाड़े पर लड़ाके रख सकते थे। पृथ्वीसिंह भावनगर के सारे जीवन में समझते थे कि "भारतीय तरुण" एक जादू भरा शब्द है, बस एक बार तरुणों को कसरत, अनुशासन, संगठन और कष्ट-सहिष्णुता का अच्छा पाठ दिया जाय, फिर बेड़ा पार। उन्हें यह कहावत याद नहीं आती थी कि वही दूध सांप के पेट में विष बन जाता है। तरुणों में भी अपने वर्ग के आर्थिक स्वार्थ से बँधे तरुण कभी क्रान्ति के सच्चे सिपाही नहीं हो सकते। मास्को में पृथ्वी सिंह ने वर्ग-भेद और वर्ग-संघर्ष के बारे में पढ़ा तो उन्हें खुद अपने काठियावाड़ी तरुणों के उदाहरण याद आने लगे और मार्को को यह बिल्कुल नयी बात मालूम हुई।

स्कूल में उन्हें और कामों के अतिरिक्त भारत के हिन्दी-उर्दू पत्रों से अंग्रेज़ी में अनुवाद करना पड़ता था। यह प्रथम पंच वार्षिक योजना के कठिन दिन थे, जब कि सोवियत राष्ट्र ने जल्दी से जल्दी सैनिक और औद्योगिक साधनों के सम्बन्ध में दूसरे मुल्कों से आज़ाद होने के लिए पक्का निश्चय कर लिया था और उसी योजना के अनुसार लकड़ी, तेल और रोटी भी बेचकर बाहरी मुल्कों से यान्त्रिक सामान मंगाये जा रहे थे। अभी तक भगवान के भरोसे खेती होती थी, ट्रैक्टर, पानी की नहरों और बिजली के पम्पों का सहारा नहीं मिला था; इसलिए उस साल खाने की चीजें कम रहीं। सभी खाने की चीज़ों पर कंट्रोल या राशनिंग थी, तो भी लेनिन स्कूल के विद्यार्थियों—जिनमें बाहर से आये तरुणों की संख्या अधिक थी—के खाने-पीने का सबसे अच्छा इन्तज़ाम था।

मई (१९३२) का महीना आया। सात महीने की कड़ी पढ़ाई के बाद शरीर को स्वस्थ और दिमाग़ को ताज़ा करने के लिए कुछ विश्राम करने की ज़रूरत थी। मार्को को कोह काफ़ भेजा गया। उन्होंने मनीपुर और आसाम को देखा था, हिमालय को भी दूर से देखा था; हिमालय के देवदारों और बरफ़ बिछी घाटियों में घूमने का यदि मौक़ा मिला होता, तो मार्को एकतर्फ़ा फ़ैसला न दे पाते, कि

दुनिया का यही सब से सुन्दर दृश्य है। वस्तुतः हिमालय और कोहकाफ़ सहोदर हैं। वह किस्लोव्स्की की सुन्दर उपत्यका में ठहरे थे। किस्लोव्स्की अपने धातु मिश्रित स्वास्थ्यकर जल के लिए मशहूर है और उसके पास की चोटी कोहक़ाफ़ के सुन्दर दृश्यों की झांकी के लिए भी प्रसिद्ध है। मॉर्को का मन उस चोटी पर चढ़ने के लिए बहुत ललचाने लगा। एक दिन वह बड़े आनन्द के साथ चोटी की ओर चढ़े जा रहे थे। दिया जलते वक़्त चोटी पर पहुंचे। चारों तरफ़ अद्‌भुत दृश्य था। एक बार वह सौन्दर्य पान में आत्म-विस्मृत हो गये। लेकिन एकाएक उनके कलेजे में हूक उठ खड़ी हुई। उनका मन कहने लगा, "ओ गुलाम, क्या अधिकार है तुझे इस प्राकृतिक सुषमा के पान करने का ? इसके अधिकारी वही हैं, जिन्होंने अपने बल से स्वतन्त्रता की प्राप्ति की है।"

मॉर्को जल्दी-जल्दी चोटी से उतरते दिखाई दिये। उन्होंने जल्दी से जल्दी तैयारी करके अपनी मातृ भूमि को लौट जाने का निश्चय किया।

महीने भर बाद वह मास्को लौट आये। एक महीने बाद अब वोल्गा की यात्रा का प्रबन्ध हुआ; लेकिन यह सिर्फ़ यात्रा नहीं थी, विशाल वोल्गा के वक्ष पर तैरते जलपोत में ३०० विद्यार्थियों का एक स्कूल चल रहा था। मास्को से कज़ान तक रेल में गये, वहां से जहाज़ पर सवार हुए। जहाज़ दिन में चलता, शाम को ठहर जाता। प्रथम पंचवार्षिक योजना समय से पहले ही समाप्त हो रही थी। नगरों और सामूहिक खेतों में, सभी जगह लोगों में अपार उत्साह था। लेनिन स्कूल के विद्यार्थियों को कभी कहीं कारख़ाना देखने को जाना पड़ता, कभी सामूहिक खेतों को। छः महीने बीतते ही बीतते मॉर्को रूसी समझने लगे थे। वोल्गा की विशाल, शान्त, गहरी धारा को देखकर उन्हें प्यारी गंगा और सिंधु की याद आती। वह ख्याल करते, क्या हिन्दुस्तान में भी एक दिन तरुणों के चलते-फिरते स्कूल अपनी सुन्दर नदियों पर विचरण करते हुए ज्ञान-वृद्धि के साथ-साथ प्रकृति की शोभा का आनन्द लेंगे ? वोल्गा का पानी कहीं हल्का नीला दिखलायी पड़ता और कहीं कुछ हरा सा। उसके किनारे के कगार बिना जंगल के कहीं दृष्टि को दूर तक फैलने की इजाजत देते और कहीं अपने पास ही रोक लेते। वोल्गा की मछली खाने में बहुत स्वादिष्ट मालूम देती

और कपूर सी चाँदनी जिस वक्त वोल्गा की धारा पर छायी रहती और दूर वृक्षों की काली पंक्ति और नज़दीक की बस्तियों के सौध देखने में अद्भुत से मालूम होते। तरबूज़ और दूध की इस यात्रा में खूब भरमार रही। जहाज़ पर मॉर्को के सिवा और कोई दूसरा भारतीय नहीं था। शारीरिक व्यायाम में जो अभ्यास उन्हें करना पड़ा, उसमें था तैरना, कूदना, भार उठाना, फ़र्स्ट--एड आदि।

अस्त्रखान जाकर उन्होंने रेल पकड़ी और रोस्तोफ़, खारकोफ़ देखते हुए महीना भर बीतते--बीतते मास्को लौट आये।

मॉर्को का अब तक का ३९ वर्ष का जीवन एक दूसरे साँचे में ढला था। बाज़ वक़्त बिल्कुल अस्वाभाविक सा लगता। परन्तु अब वह बदल चुके थे। आदर्श के लिए सर्व-त्याग की भावना मॉर्को में कई गुना बढ़ चुकी थी। पहले जहां उनके सारे त्याग और तपस्या में श्रद्धा का बल ज़्यादा था, वहाँ अब बुद्धि भी सोलहो आना सहयोग देने के लिये तैयार थी।

मॉर्को स्कूल के बहुत ही परिश्रमी विद्यार्थी थे, इसलिये भी उनका अधिक सम्मान होता था। अगले साल के क्रांति-महोत्सव (नवम्बर) में जब वह जुलूस और सैनिक प्रदर्शन देखने लाल मैदान में गये, तो वहाँ और भी नये-नये हथियार देखे। ७०० सैनिक विमानों से आसमान ढंक गया था। पिछली बार बहुत से सैनिक हथियारों का वह नाम तक नहीं जानते थे, लेकिन अब उनका परिचय बहुत बढ़ गया था, इसलिये सोवियत बल के इस जबरदस्त प्रदर्शन से वह बहुत संतोष और आनन्द लाभ करते थे।

जाड़ों में अब वह सारी ताक़त लगाकर पढ़ाई में जुटे हुये थे। भारतीय समस्याओं के अध्ययन के लिए उन्हें अकसर पूर्वी विश्वविद्यालय में जाना पड़ता। वह सब काम मन लगाकर किन्तु जल्दी-जल्दी कर रहे थे, क्योंकि अगले साल (१९३३) के बसंत में उन्हें भारत लौटना था।

भारत के लिए प्रस्थान (अप्रैल १९३३)

इस वक़्त तक बाबा गुरुमुख सिंह मास्को पहुंच गये थे। भारत में चलकर क्या करना है, इसके बारे में उनसे बात-चीत होती थी। अप्रैल में बाबा गुरुमुख सिंह के साथ वह रेल से ताशकंद होते हुए स्तालिनाबाद

आये। अब वह पामीर में थे, जिसकी सीमा एक ओर काश्मीर से मिलती है और दूसरी ओर अफ़गानिस्तान से। अफ़गानिस्तान और फिर से स्वतंत्र क़बीलों के इलाक़े (दाग़िस्तान) के रास्ते उन्हें भारत लौटना था।

रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा था। अभी बरफ़ पूरे तौर से पिघली नहीं थी। एक पथ-प्रदर्शक जिसके साथ ४ दिन चलने के बाद वह आमू दरिया के किनारे पहुंचे। दरिया का पानी बहुत ठंडा था, धार भी तेज़ थी। अफ़गानिस्तान के सैनिकों से आँख बचाकर इसी पानी में होकर एक जगह पार होना था। रात को पृथ्वीसिंह मशक पर छाति रखकर हाथ के सहारे जिस वक़्त नदी पार कर रहे थे, उस वक़्त ठंडक के मारे शरीर शून्य सा होता जा रहा था। गुरुमुख सिंह घोड़े की पूंछ पकड़ कर पार हो रहे थे। पूंछ टूट गयी और धार ने उनको बेक़ाबू कर दिया। इसी समय पथ-प्रदर्शक सहायता के लिये न पहुंच गया होता तो वह ख़तरे में पड़ गये थे।

पार होकर वे रात ही रात चल पड़े। केश और दाढ़ी, भेष छिपाने में बाज़ वक़्त बहुत ख़तरे की चीज़ होती है; लेकिन बाबा गुरुमुखसिंह ने अपने साथी सिख को केश काटने के लिये नहीं कहा। वह उस पहाड़ी और जंगल के रास्ते से २० मील तक गये। एक पुलिस पार्टी जा रही थी, उसको शक हुआ और उसने तीनों को पकड़ लिया। पूछने पर तीनों ने अपने को हिन्दुस्तानी व्यापारी कहा और बताया कि हम व्यापार करने सोवियत के भीतर गये थे, लेकिन बोल्शेविक अफ़सरों ने हमें पकड़ लिया और बड़ी मुश्किल से हम उनके पंजे से निकल भागे हैं। अफ़गान पुलिस वालों ने उनकी बात पर विश्वास किया और एक आदमी साथ करके फ़ैजाबाद भेज दिया। फ़ैज़ाबाद में १०, १५ दिन पड़े रहे। वहाँ उन्हें ताजिकिस्तान (सोवियत) से घर-फ़सल जलाकर भागे कितने ही धनी किसान मिले; जो सभी सोवियत-शासन के सख्त विरोधी थे, क्योंकि अब वह ग़रीबों का ख़ून नहीं चूस सकते थे। इन सोवियत-शत्रुओं में कितने ही रूसी और यहूदी भी थे। पहले उन्होंने अपने कपड़ों और दूसरे सामान को बेच-बाचकर खाया और फिर वे दूकानों पर भीख माँगते फिरते थे। जबतक भगोड़ों की संख्या कम थी, तबतक तो अफ़गानिस्तान वाले उन्हें भीख माँगने के लिये भी छोड़ देते। मगर अब संख्या बढ़ती देख उन्होंने एक दूसरा ढंग अख़्तियार किया था। अफ़गान सिपाही

भगोड़ों को घेरकर पामीर के ऐसे इलाके में छोड़ आते, जो अफ़गानिस्तान, काश्मीर और ताजिकिस्तान के बीच में पड़ता है; और जिस निर्जन भूमि का कोई मालिक नहीं। वहाँ उन पर क्या-क्या बीतती, वह वे ही जानें। नारायनदास (पृथ्वीसिंह) ने एक दिन देखा कि सिपाही काफ़िले को पामीर के लिए तैयार कर रहे हैं। दो ही चार घन्टे पहले एक रूसी लड़की के बच्चा पैदा हुआ था और अब उसे चलने का हुक्म हुआ था। गन्दी सराय से अपना बच्चा गोद में दबाये लड़की, उसके कपड़ों में से अब भी खून जा रहा था। नारायनदास को यह देखकर आश्चर्य और खेद हुआ। मनुष्य वैयक्तिक स्वार्थ के लिए कितना पतित हो सकता है और कितने कष्टों तक के सहने को तैयार हो जाता है, इसका यह एक अच्छा उदाहरण था। ज़रा भी देर करने पर अफ़गान सिपाही कोड़े मार रहे थे।

फ़ैज़ाबाद से नारायनदास, बाबा गुरुमुखसिंह और हुकुमसिंह ख़ानाबाद भेजे गये। वहाँ हुकुमसिंह के एक परिचित आदमी ने ज़मानत दी और तीनों छोड़ दिये गये। पुलिस ने इस शर्त के साथ छोड़ा था कि वह बीस दिन के भीतर काबुल में गवर्नर के सामने हाज़िर हो जायेंगे। हुकुमसिंह ताजिकिस्तान का रहने वाला था। वह उधर लौट गया। बाक़ी दोनों जने एक घोड़ा और एक खच्चर लिये तेजी से काबुल की ओर चले। काबुल एक दिन दूर रह जाने पर उन्होंने अपने घोड़े और खच्चर को बेच दिया।

जुलाई या अगस्त का महीना था। दोनों जने काबुल पहुंच गये। २० दिन बाद हाज़िर न होने पर पुलिस फिर उनके पीछे पड़ती, इसलिए वह एक पथ-प्रदर्शक लेकर अफ़गानिस्तान की ओर चल पड़े। दूसरे दिन जब वह पहाड़ के किनारे नदी के साथ-साथ चल रहे थे, तो फ़ौजी चौकी वालों को शक हुआ और उन्होंने उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। वहाँ से भी किसी तरह निकलने में सफल हुये। लेकिन सीधे रास्ते में ख़तरा ज़्यादा था। पथ-प्रदर्शक को ज़्यादा रुपया दिया और उसने एक पहाड़ को पार कर बे-रास्ते ले जाना चाहा। लेकिन वहाँ कोई निकलने का रास्ता नहीं मालूम हुआ। ऊपर से सूखे पहाड़ की गर्मी और प्यास ने इतना सताया कि उन्हें लौट आना पड़ा। दिन भर झाड़ी में पड़े रहे, रात को जलालाबाद की सड़क पर जा निकले। एक चौकी पार कर उन्होंने ताँगा कर लिया। यदि पैदल ही चले होते, तो पुलिस को शक न होता। पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया और एक-एक चीज़ की तलाशी ली। हज़ार रुपये का सोना और जो कुछ भी पैसा कौड़ी उनके पास मिला, उसे पुलिस वालों ने अपना लिया और आवारागर्दी का अपराध लगाकर उन्हें पुलिस के हवाले कर दिया।

अध्याय १२

काबुल जेल की नरक यातना

काबुल जेल का सुपरिन्टेण्डेण्ट और पुलिस का बड़ा अफ़सर गुरुमुखसिंह से पहले ही से अदावत रखता था। अब उसे अच्छा मौक़ा मिला। पृथ्वीसिंह को क्या-क्या यातनाएँ सहनी पड़ीं, उनके बारे में उन्होंने "**बॉम्बे सेन्टिनल**" (१४, १५ जून १९३८) में जो लिखा है, उससे पता चलेगा। उनके शब्द हैं :—

"साहसी तरुण सिर्फ़ बहादुरी और उत्तेजना के आनन्द के लिये अपने को जोखिम में डालना पसन्द करते हैं। लेकिन हम दोनों पृथ्वीसिंह और गुरुमुखसिंह न तरुण थे और न तरुणाई का नशा हमारे ऊपर सवार था। हम लोगों ने परिस्थितियों से मजबूर होकर अफ़गानिस्तान के पहाड़ी जंगलों में अपने को डाल दिया। जून १९३३ की किसी तारीख को जब हमने इस खतरे के रास्ते पर पैर रखा, तो हमारे दिल में सिर्फ़ एक ही हविस थी कि भारत चलकर वहाँ की कमकर जनता की आज़ादी के लिये जो लोग सर्वस्व लगाये हुए हैं, उनके सामने अपने अनुभव और सेवाओं को भी पेश करें।"

" ...भारत आने के सभी रास्ते हमारे लिये बन्द थे। इसलिए हमें हिंदुकुश की बर्फ़ानी चोटियों का चक्कर काटकर भारत का रास्ता निकालने के लिये मजबूर होना पड़ा।"

"डक्का में गिरफ़्तारी के ४० दिन बाद प्रधान-मन्त्री के ख़ास हुक्म के अनुसार हमें १६ हथियार बन्द सैनिकों के साथ मामांखेल (काबुल) की जेल में भेजा गया। हम दोनों जिस लॉरी पर लाये गये थे उसी पर १६ सिपाही भी थे। लॉरी काबुल के बाहरी दरवाज़े पर समय से कुछ पहले पहुंची, इसलिए उसे आगे जाने की इजाज़त नहीं मिली। सूर्यास्त के समय सिपाहियों को लॉरी से उतरने का हुक्म हुआ और वे भरी बन्दूकें लिये हमसे ५० गज़ पर खड़े होकर आपस में सलाह करने लगे। हम गोली खाने की आशा में थे लेकिन हमें निराश होना पड़ा। छः सिपाहियों को लॉरी पर चढ़ने का हुक्म हुआ। वे रायफ़ल को नीचे रखकर लॉरी

के फ़र्शपर लेट गये। लॉरी रवाना हुई और थोड़ी ही देर बाद हम काबुल सेण्ट्रल जेल के भीतर थे।"

"जेल के भीतर घुसते ही कामरेड गुरुमुखसिंह बोल उठे 'जिन्दादा-गोर' अर्थात् ज़िन्दा ही दफ़न कर दिये गये। जेल में हमारे साथ जो बदला लेने का बर्ताव होने लगा, उसमे हमें निश्चय हो गया कि अब हम फिर जीवित बाहर न जा सकेंगे। जेल सुपरिन्टेन्डेण्ट जो शहर कोतवाल भी था, हमारा इन्तज़ार कर रहा था और जैसे ही हम आये, उसने जेल के दूसरे अफ़सरों और सिपाहियों से कहा–'अगर कोई दूसरा क़ैदी या सिपाही अफ़ग़ानिस्तान के इन दुश्मनों के पास जाता पाया गया, तो उस पर बड़ी बेरहमी से कोड़े पड़ेंगे और यदि ये किसी के पास जाते दीख पड़े, तो इन पर खूब मार पड़ेगी।' हमको अपनी सेल में पहुंचाया गया, जिसमें एक ही द्वार था और वह भी जेलर के ऑफिस में खुलता था। जेलर का ऑफिस ही उसके रहने का घर था।

"काबुल आये हम लोगों को चार ही दिन हुए थे कि एक अफ़ग़ान तरुण ने काबुल के ब्रिटिश दूतावास पर गोली चलायी। अंग्रेज़ कूटनीतिज्ञों ने ज़रा भी देर किये बिना, इस घटना को हम लोगों के साथ जोड़ दिया और अफ़ग़ान सरकार पर दबाव डाला। लेकिन अफ़ग़ान सरकार ने हमें अंग्रेज़ों के हाथ में देने से इनकार किया, यद्यपि वह इस बात के लिये तैयार थी कि अंग्रेज़ जिस तरह बतायें वह हमारे साथ उसी तरह का बर्ताव करें।

"अफ़ग़ान सरकार अपनी बात की पक्की उतरी और उसने साफ़ साबित कर दिया कि अफ़गानिस्तान की सरकार से भारतीय क्रांतिकारियों को किसी भी तरह की दया की आशा नहीं रखनी चाहिये। न डाक्टर की सहायता हमारे लिए थी, न अफ़गानिस्तान या हिन्दुस्तान में अपने मित्रों को पत्र लिखने का अधिकार था; न हम अफ़गान बादशाह या मंत्री अथवा जेल के सुपरिन्टेण्डेण्ट से कोई अपील कर सकते थे। जेल के सुपरिन्टेण्डेण्ट ने अपने ऊपरी अधिकारियों और अंग्रेज़ों को विश्वास दिलाया था कि जहाँ ये लोग बन्द हैं, वहाँ पंछी भी पर नहीं मार सकता... ।

"सामन्तशाही मुल्क में मामूली से मामूली कसूर पर भी आदमी को गिरफ्तार किया जा सकता है। पहले उस पर खूब मार पड़ती है,

जो तभी बन्द होती है जब कि वह अभागा आदमी अपना सारा रुपया-पैसा या उसके पास जो भी माल मताब हो उसके अधिकांश भाग को उन्हें दे दे। वह अपनी धन-संपत्ति को पकड़ने वालों की आँखों से छिपा नही सकता।

शान्ति और व्यवस्था के ठेकेदार जानते हैं कि उसे कैसे मालूम किया जा सकता है। क़ैदियों को न खाना दिया जाता है और न कपड़ा। फिर जब सम्बन्धी जेल के दरवाज़े पर क़ैदी की सुधि लेने आते हैं, तो खाने की किस्म, बिस्तर और सम्बन्धी की शकल-सूरत देखकर वे भाँप लेते हैं कि क़ैदी धनी है या नहीं। फिर तो जब तक जेल वालों की भेंट-पूजा होती रहती है, तभी तक क़ैदी को खाना कपड़ा भी मिलता है।

"गिरफ़्तारी के बाद ही तुरन्त पाँच-सात सेर की बेड़ी क़ैदी के पैरों में डाल दी जाती है। मुक़दमा स्थानीय क़ाज़ी (जज) के पास जाता है और फ़ैसला तो कितने ही महीनों या वर्षों तक में होता रहता है। फ़ैसले में जल्दी या देर होना भी गिरफ़्तार आदमी की थैली पर निर्भर करता है।"

"सज़ा हो जाने पर क़ैदी को किसी छोटी या बड़ी जेल में भेज दिया जाता है। सवारी का कोई इन्तज़ाम नहीं, इसलिये क़ैदी को बेड़ी पहिने यह सारी यात्रा पैदल ही तै करनी पड़ती है। यदि क़ैदी पैसे वाला है तो उसे साथ चलने वाले सिपाहियों को भी खिलाना पड़ेगा, नही तो खुद भूखा रहना पड़ेगा। अगर क़ैदी के पास कुछ नहीं है, तो हर पड़ाव पर उसे सड़कों पर भीख माँगने के लिये घुमाया जायगा। छोटी या बड़ी जेल में पहुंचने पर क़ैदी को बराबर जेलर और सिपाहियों की भेंट-पूजा करते रहना पड़ेगा, नहीं तो जेल से ज़िन्दा निकलने की आशा छोड़ देनी होगी।"

"पैरों की बेड़ी को वहाँ दण्ड में नहीं गिना जाता। सबसे क्रूर दण्ड है वह शारीरिक दन्ड, जिसमें चार तगड़े आदमी क़ैदी के हाथ-पैरों को पकड़ कर फैलाये हुये उसे हवा में उठा लेते हैं। फिर दो मज़बूत आदमी हाथ में बेंत और कोड़ा लेकर आते हैं। यदि और कुछ नहीं मिला तो पठानों के मोटे चप्पल ले लेते हैं। मार की कोई गिनती नहीं है, वह तब तक जारी रहती है जब तक कि क़ैदी का चिल्लाना बन्द नहीं हो जाता

या जब तक उसकी सुगबुगाहट ख़तम नहीं हो जाती। फिर उसी मूर्छित अवस्था में उसे या तो पानी में डाल दिया जाता है, या उसी जगह बिना दवाई- दर्पन के अपने भाग्य पर छोड़ दिया जाता है।"

"शारीरिक दण्ड के बारे में कहीं काग़ज़ पर कुछ लिखा नहीं जाता। कैसे अपराधी को शारीरिक दन्ड देना चाहिये कैसे को नहीं, इसका कोई नियम नही बना है। यह सब वहाँ मौजूद अफ़सर की इच्छा पर निर्भर करता है। सिपाही किसी क़ैदी को कोड़े मार सकता है, हवलदार किसी सिपाही को कोड़े मार सकता है और हमने कप्तान जैसे अफ़सर को मेजर के हाथों बेंत खाते अपनी आँखों से देखा है, ऐसी भी अफ़वाहें सुनी हैं कि प्राइममिनिस्टर अपने अन्य साथी मिनिस्टरों पर भी बेंत चला देता है। यदि यह बात सच हो तो हमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये।"

".... यदि किसी क़ैदी की कोई मदद करने वाला नहीं है, तो उसे अपने मामले को लिखकर अफ़सर के पास देना होगा। अगर अफ़सर दयालु हुआ, तो वह क़ैदी को एक अधपकी पठानी रोटी सवेरे और एक शाम को दे देगा। दाल-भाजी का कोई सवाल ही नहीं है। रोटी का वज़न छः छटांक बताया जाता है, मगर वह कभी उतनी नहीं उतरती। पकाना भी नाम के लिए ही होता है; आटे को गूंथ और दबाकर बाटी के शकल में भी दिया जा सकता है। अगर ग़रीब क़ैदी को रोटी देने की कृपा जेलर ने नहीं की तो उसके लिये आहार का एक ही रास्ता है कि वह धनी क़ैदियों की ख़िदमत करे और उनके जूठन पर जीवन-निर्वाह करे।"

"काबुल शहर के चारों तरफ़ बहने वाले नालों से ही क़ैदी को पानी मिल सकताहै, इन खुले गन्दे नालों में जो पानी बहता है, उसी को नहाने, कपड़ा धोने और पीने के लिए इस्तेमाल करना होता है। पास के एक गाँव से होता हुआ ऐसा ही एक नाला जेल के हाते से गुजरता है। नाला दो फुट चौड़ा और डेढ़ फुट गहरा है। अगर कोई बहुत ध्यान से देखे तभी पानी बहता मालूम देगा। उसमें सारे गाँव की गन्दगी होती है। फिर उसी में हज़ार के क़रीब क़ैदियों का नहाना-धोना होता है। उसके बाद नाले का पानी मनुष्य के पीने लायक़ नहीं रह जाता............यदि एक प्याला पानी लेकर देखें तो उसमें चार-पाँच जूं तो ज़रूर मिलेंगी।"

"काम वैसे ही लिया जाता है जैसे हिन्दुस्तानी जेलों में; हाँ, उसमें कोई नियम नहीं है.........।"

"क़ैदियों को जेल के भीतर अपने साधारण कपड़ों को पहिनना पड़ता है। अपने जीर्ण-शीर्ण शरीर को, सिले लत्तों से ढाँके कंगालों को देखकर दिल फटने लगता है। जाड़े के दिनों में ग़रीब क़ैदियों के लिये कपड़ों का इन्तज़ाम करने के लिये परेड होती है।"

"इस परेड के लिये बहुत थोड़े आदमी चुने जाते हैं और उसमें भी सिर्फ़ वे ही आदमी लिये जाते हैं जिनके बारे में यह निश्चित समझा जाता है कि ठीक कपड़ा-लत्ता न होने से वे ज़्यादा दिन ज़िंदा नहीं रह सकेंगे। जब इन अभागों में से कोई मर जाता है, तो उसके कपड़ों को बिना धोये ही दूसरे कृपा पात्र क़ैदी को दे दिया जाता है।"

"हेड क्लर्क, जेलर और असिस्टेन्ट जेलर ने कपड़े की ज़रूरत वाले क़ैदियों में हम दोनों का भी नाम लिख दिया, यह सिर्फ दया से प्रेरित होकर। लेकिन जब सुपरिन्टेण्डेण्ट ने हमारा नाम पढ़ा तो नाम लिखने वाले का खूब गालियाँ देने लगा। एक पखवारे बाद दूसरी सूची तैयार की जा रही थी, हेड क्लर्क ने फिर हमारा नाम दे दिया। इस बार बेचारे पर खूब मार पड़ी।"

"अत्यन्त ख़तरनाक राजनीतिक बन्दियों को छोड़कर सभी क़ैदी ठूस-ठूसकर एक ही बैरक में बन्द कर दिये जाते हैं। मैंने सिर्फ़ एक सेल में दस क़ैदियों को ठूसे देखा था। उनका अपराध यह था कि वह सोवियत भूमि से अफ़गानिस्तान भाग आये थे। यह सेल १० फुट चौड़ी १२ फुट लम्बी और १४ फुट ऊँची थी। चौबीसों घन्टे उन्हें इसी सेल में रहना पड़ता, दरवाज़ा उसका सदा बन्द रहता और सिर्फ़ एक छोटी सी खिड़की खुली रहती....... ।"

"समय पर छूटना उन्हीं का हो सकता है, जो किसी तरह प्रभाव डलवा सकते हैं। नहीं तो सज़ा की मियाद पूरी होने के महीनों बाद तक क़ैदी को छोड़ने का ख़याल नहीं किया जाता।"

"हम दोनों के साथ जेल में बहुत ही क्रूर बर्ताव होता था, जिससे हमारा स्वास्थ्य ख़तम हो चला। हम प्रयत्न कर रहे थे कि जब तक अफ़गानिस्तान के बाहर की राजनीतिक संस्थाओं से सम्बन्ध नहीं हो जाता, तब तक किसी न किसी तरह अपने को ज़िन्दा रक्खें। लेकिन

जेल वालों के अमानुषिक अत्याचार को बर्दाश्त से बाहर देखकर हमें भूख हड़ताल के लिये मजबूर होना पड़ा।"

"लेकिन इसका जेल के अधिकारियों पर ज़रा भी प्रभाव न पड़ा...। न कोई डाक्टर आया और न सरकारी मुलाकाती ही हमारी सेल में आये। लेकिन धीरे-धीरे बाबा गुरुमुखसिंह का बुढ़ापा और हम लोगों का दुस्सह कष्ट हमारे सिपाहियों के दिल को हिला देने में सफल हुआ ....।"

"एक दिन हमने देखा कि जेल वाले अफ़सर सारे सिपाहियों के साथ किसी काम में बड़ी तत्परता दिखा रहे हैं।...तीन लट्ठों को फाँसी के चौखटे के तौर पर खड़ा किया गया। ऊपर से एक रस्सी लटक रही थी। सभी क़ैदी समझ रहे थे कि अब दो हिन्दुओं का ख़ात्मा होने वाला है। ...लेकिन तैयारी हमारे लिये नहीं हो रही थी।"

"जब जेल का बड़ा फाटक खुला, तो हमने देखा अच्छे कपड़े-लत्ते पहिने पाँच भद्र लोग आ रहे हैं। उनके चेहरों पर आत्माभिमान और रईसी की छाप थी। उनको यह नहीं मालूम था कि उन्हें कहां ले जाया जा रहा है। एकाएक बांई ओर मुड़ने पर उन्होंने फांसी की टिकठी को देखा।..... बड़े शांत और गम्भीर भाव से उन्होंने पानी मांगा, फिर हाथ पैर धोकर आख़िरी नमाज़ पढ़ने लगे।"

"जल्दी ही हमें मालूम हो गया कि यह पांचों अमानुल्लाह के प्रगतिशील शासन में अफ़ग़ानिस्तान के बड़े-बड़े वज़ीर थे। वे सभी जल्दी से जल्दी छुट्टी पा लेने के लिए आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन उन्हें अपनी आयु और दर्जे के अनुसार टिकठी पर जाना पड़ा। ६० वर्ष से ज़्यादा उम्र से भूतपूर्व वज़ीर-आज़म को पहले झूलना पड़ा। पहली पारी के तीन आदमियों में से एक की गर्दन में फन्दा ठीक से नहीं लगा। बीस मिनट तक तड़पने के बाद उसकी जान निकली। जिस जगह यह हृदय-द्रावक नाटक खेला जा रहा था, वह जगह हमारी सेल से मुश्किल से २५ गज़ दूर होगी। इसलिये यह सारा दृश्य हमारे स्मृतिपटल पर अच्छी तरह अंकित हो गया।......वज़ीर-आज़म की लाश सारे दिन उसी तरह लटकती रही, क्योंकि उसकी एक ही बुढ़िया बीबी बच रही थी और दूसरे सम्बन्धी या तो फांसी पर लटक चुके थे या क़ैद थे।"

"नादिर खां ने इस तरह अपने रास्ते के सभी कांटों को दूर करके समझा कि अब उनका तख़्त सुरक्षित है। लेकिन ज़्यादा दिन नहीं बीतने पाये कि एक गोली ने उनके भी काम को ख़तम कर दिया। जिस तरुण ने यह काम किया था, उसको सामन्तशाही की सारी यातनाओं का शिकार होना पड़ा और अन्त में खुले आम फांसी पर चढ़ा दिया गया। जिस जगह इस तरुण को क़तल किया गया, उसे हम अपनी खिड़की से देख सकते थे। सिर काटने के पहले उस असहाय तरुण के साथ राज्य के प्रमुख वज़ीर बड़ी क्रूरता से पेश आये। चाकू से उसके नाक और काम काट लिये गये.........।"

"जाड़े के दिन थे, थर्मामीटर हिमरेखा से २०-२५ डिग्री नीचे जा रहा था। खिड़की और दरवाज़े की चौखटों, दरारों से बर्फानी हवा आकर हमारे शरीर को छेद रही थी। चीथड़ों, रस्सियों, ऊन और कपास से हम इन दरारों को मूंदना चाहते थे, लेकिन हमें उसमें सफलता नहीं मिली। अन्त में हमने फ़र्श की मिट्टी को खुरचकर उसे पानी में भिगोया और उससे दरारें बन्द कीं। इस तरह हम हड्डियों तक को छेदने वाली बर्फ़ानी हवा से अपने को बचा सके।"

"अफ़ग़ान सरकार हमें फांसी पर न चढ़ा, ठंडी मौत के घाट उतारना चाहती थी। उसने पूरा इन्तजाम किया था कि बाहरी दुनियां से हमारा कोई सम्बन्ध न हो सके। सर्व साधन-सम्पन्न और संगठित सरकार एक ओर थी और दूसरी ओर थे दो असहाय बेड़ियों में जकड़े, कड़े पहरे में बन्द, क़ैदी। हमने अफ़ग़ान सरकार को नीचा दिखाने का निश्चय किया था।"

नरक यातना से मुक्ति

पृथ्वीसिंह और गुरुमुखसिंह की नारकीय यातनाओं से उनके पहरे वाले सिपाहियों का भी दिल द्रवित होने लगा था। उनकी सेल का दरवाज़ा जेल के आफिस में खुलता था। जेलर का एक तरुण सम्बन्धी जो जेलर की बीबी का प्रेमी भी था, अक्सर वहाँ आता था। धीरे-धीरे वह तरुण दोनों हिन्दी क़ैदियों के प्रभाव में आया। वह भी समझता था कि दोनों हिन्दू खूब मंत्र-तंत्र जानते हैं। उसने अपनी मुराद पूरी होने के लिये पृथ्वीसिंह से तावीज़ मांगी। पृथ्वीसिंह ने सोवियत के राज्य चिन्ह लाल

सितारे को लिखकर दे दिया। इसी तरह एक दिन दोनों के दुःखों की करुण कहानी सोवियत दूतावास में पहुंच गयी और फिर कोमिन्टर्न से होते-होते दुनियां के कोने-कोने में पहुंच गयी। सारी दुनियां में जबरदस्त आन्दोलन होने लगा और अफ़ग़ान सरकार के पास तार पर तार आने लगे। अमरीका के एक बैरिस्टर ने उनके मुक़दमे की पैरवी के लिये काबुल आने के लिये लिखा।

अफ़ग़ान सरकार सब जगह बदनाम होने लगी। जेल के सुपरिन्टेण्डेण्ट ने अफ़सरों और पहरेदार सिपाहियों से पूछा कि कैसे हिन्दुस्तानियों की लिखी चिट्ठी हिन्दुस्तान और लंदन पहुंची। कुछ अफ़सरों ने जवाब दिया—"साहब, यह क़ाफिर भारी जादूगर है।"

४ जुलाई, १९३४ को तड़के ही जेल का दरवाज़ा खुला और उन्हें सोते से जगाया गया। काबुल के हवाई स्टेशन पर सोवियत हवाई जहाज उनका इन्तजार कर रहा था। वह उसपर चढ़कर फिर सोवियत-भूमि में पहुंच गये। पहले अफ़ग़ान सरकार चाहती थी कि पामीर के किसी निर्जन स्थान में उन्हें छोड़ दिया जाय जहां विदेशी सरकार के गुण्डे उनका काम खतम कर दें। अंग्रेज़ जोर भी लगा रहे थे कि उन्हें उनके हाथ में दे दिया जाय। अमेरिका की ग़दर पार्टी ने जोर लगाया कि चूंकि वह किसी सरकार की प्रजा नहीं हैं, इसलिए सोवियत सरकार उनका ज़िम्मा ले। सोवियत सरकार ने ज़िम्मा लिया भी।

अध्याय १३

सोवियत भूमि से फिर भारत में

सोवियत हवाई जहाज उसी दिन उन्हें ताशकन्द ले गया, जहां से दो दिन बाद वे मास्को के लिये रवाना हो गये। दोनों बहुत ही कमज़ोर थे, मौत के मुंह से बाल-बाल बचे थे। उन्हें साइबेरिया के एक सेनिटोरियम में १० या १२ दिन रक्खा गया। फिर एक मास के लिये क्राइमिया के स्वास्थ्य-वर्धक नगर याल्ता में लाया गया। उन्होंने १९३४ की नवम्बर क्रांति के महोत्सव को फिर मास्को के लाल मैदान में देखा। अबकी बार पृथ्वीसिंह एक सम्मानीय मेहमान के तौर पर बैठकर लाल सेना के प्रदर्शन को देख रहे थे। पिछले ३ सालों के भीतर-भीतर लाल सेना कहां से कहाँ पहुंच गयी, यह उन्हें अच्छी तरह मालूम हुआ।

भारत के लिये रवाना

अब पृथ्वीसिंह ने भारत जाने का निश्चय किया। अबकी बार यात्रा और भी मुश्किल थी। अफ़ग़ानिस्तान में गिरफ्तार होने से पहले अंग्रेज़ी ख़ुफ़िया विभाग नहीं जानता था कि पृथ्वीसिंह कहाँ हैं। काबुल जेल में अंग्रेज़ी सरकार की शह से उनका फोटो लिया गया और शरीर के हर एक चिन्ह को नोट किया गया।

हिन्दुस्तान में हर जगह उनके स्वागत के लिये ख़ुफ़िया वाले तैयार थे। लेकिन पृथ्वीसिंह को भारत जरूर जाना था। उन्होंने पास-पोर्ट तैयार कराया, जो देखने में असली-सा मालूम होता था, लेकिन था जाली। सबसे बड़ी गलती उसमें यह हुई कि उमर ४३ की जगह २७ लिखी थी। रही सही कमी को विदेशी जहाज के अफ़सर ने पूरा कर दिया। उसने पास-पोर्ट पर लिख दिया "रूस के ओदेसा बन्दरगाह से रवाना।"

ऐसे पासपोर्ट को लेकर पृथ्वीसिंह अंग्रेजी हिन्दुस्तान में कहीं भी सुरक्षित रूप में नहीं उतर सकते थे। पृथ्वीसिंह दिसम्बर में एक इतालियन जहाज से मार्साई (फ्रान्स) के लिये रवाना हुए। नेपल्स में फासिस्ट पुलिस ने टोका और कहा कि कोई कम्युनिस्ट मालूम होता है; लेकिन

कप्तान ने यह कहकर छुड़वा दिया कि नहीं, कोई भलेमानुष आदमी हैं। अब जहाज से जाना उन्होंने अच्छा नहीं समझा। नेपल्स से रोम और जेनेवा होते हुए वह रेल द्वारा पेरिस पहुंचे। ओदेसा का नाम उन्होंने काट दिया। पेरिस सारी दुनियां के गुप्तचरों का अड्डा है। पृथ्वीसिंह ने सिर्फ रात को घूम-घूमकर फ्रांस की राजधानी देखी।

अब पान्डिचेरी में उतरने को ही उन्होंने एकमात्र सुरक्षित रास्ता समझा। जनवरी १९३५ में एक फ्रांसीसी जहाज पकड़कर वह भारत के लिये रवाना हुए। जहाज कोलम्बो और मद्रास में भी लगा, मगर उन्होंने किनारे की ओर झांका तक नहीं। अन्त में २४ जनवरी, १९३५ को वह पान्डिचेरी में उतरे।

भारत भूमि पर

किनारे पर उतरते ही फ्राँसीसी ख़ुफ़िया पुलिस पीछे पड़ी। पृथ्वीसिंह होटल में गये। दो गुप्तचरों की ड्यूटी लग गयी थी। उनके पास हिन्दुस्तानी रुपया नहीं था। उन्होंने ख़ुफ़िया वालों से बदलने के लिए कहा। इस पर उन्होंने कहा कि हम चार बजे आकर बदल देंगे। उन्होंने समझा इसके पास पैसा तो है नहीं इसलिये जायेगा कहाँ? पृथ्वीसिंह कितने ही समय तक इन्तज़ार करते रहे, फिर बाजार गये, पैसे बदले, धोती खरीदी और अंधेरा होते ही शहर से निकल पड़े। खेतों में जाकर झाड़ के नीचे धोती बदल ली।

जिस वक्त वह कडलूर की सीमा से बाहर हो रहे थे, उसी समय एक सादे कपड़े वाले आदमी ने उन्हें रोकना चाहा, लेकिन वह क्यों रुकने लगे। उन्होंने समझाने-बुझाने की कोशिश की। लेकिन वह आदमी उन्हें थाने में जाने के लिए जोर दे रहा था। जब समझाना और प्रलोभन बेकार हुआ, तो उनके लिये दूसरा तरीका अख्तियार करना जरूरी हो गया। पृथ्वीसिंह ने उसे कुछ और पास आने दिया और फिर एकाएक उस पर टूट पड़े। उसे जमीन से उठाकर खूब जोर से पटका। आदमी मजबूत और जवान था, वह उठकर भागने लगा। लेकिन इस तरह आसानी से निकल जाने देना भी तो ठीक नहीं था। उन्होंने दौड़कर फिर उसे पकड़ लिया। अबकी बार पीटने की जगह उन्होंने उसकी धोती खोली और बांधकर

उसके मुंह में कपड़ा ठूंस देना चाहा। जिस वक़्त वह उसके मुंह में कपड़ा डाल रहे थे, उस वक़्त उस आदमी ने उनकी अंगुली काट खानी चाही। उन्होंने दो-चार घूंसे, कोहनी और घुटनों की मार लगायी। अंगुली तो मुंह से निकल आयी, मगर चमड़ा और नसें कट चुकी थीं। इस बीच में आदमी धोती छोड़ नंगे ही निकल भागा। पृथ्वीसिंह ने भी खेतों का रास्ता लिया और दौड़कर घने जंगलों से घिरे एक पहाड़ में घुस गये। लेकिन वह जानते थे कि पुलिस उनके पीछे होगी, इसलिये यहाँ से निकलना ही अच्छा है। वह सारी रात चलते रहे। दिन को झाड़ी में सो जाते और रात को सफ़र करते। वह अंग्रेज़ी भारत में थे, लेकिन तो भी स्टेशन पर जाकर टिकट कटाने की हिम्मत नहीं होती थी।

पृथ्वीसिंह के पैरों में नया बूट था, जिसे उन्होंने पेरिस में खरीदा था। १०० मील की यात्रा को खेतों, पहाड़ों और जंगलों में से होते हुए जल्दी से जल्दी पार करना था। कई सालों से नंगे पैर न घूमने की वजह से बूट को निकालकर चलने में कंकड़ियां चुभती थीं, इसलिए उन्हें बूट पहने ही दौड़ना पड़ा।

चलते और दौड़ते हुए आख़िर वह मद्रास पहुंचने में सफल हुए। वहाँ उन्हें अपने एक परिचित गुजराती सज्जन का पता लगा। लेकिन परिचय सिर्फ़ एक दूसरे के नाम से था। नौकर पृथ्वीसिंह को मालिक के पास ले गया। मालिक ने एक ऐसे दरिद्र से आदमी को सामने आया देख, आश्चर्य ज़रूर किया होगा, मगर उन्होंने पृथ्वीसिंह से बैठने का इशारा किया। पृथ्वीसिंह ने खड़े ही खड़े कहा—"मुझे एक ग्लास पानी मँगा दीजिए।" उन्हें प्यास भी बहुत लगी थी, साथ ही यह भी नहीं चाहते थे कि नौकर के सामने कोई बात कहें। नौकर पानी लेने गया। उन्होंने धीमे स्वर में कहा—"मैं स्वामीराव हूँ, यह जानना आपके लिए काफ़ी होगा। बड़ी मुश्किल से मैं यहाँ तक पहुँचा हूँ। अब आगे जाने के लिए मेरे पास ताकत नहीं रह गयी है। अगर आप मेरी सहायता करने के लिये तैयार हों तो मैं बैठूंगा, नहीं तो मैं किसी दूसरे भाई की सहायता लूंगा।" थोड़ी देर तक वह चुपचाप कुछ विचार में डूब गये, लेकिन १–२ मिनट के बाद ही उनके होंठों पर मुस्कराहट थी। उन्होंने पृथ्वीसिंह से कुर्सी पर बैठने के लिए कहा।

नौकर पानी ले आया। मालिक ने उसे अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को बुला लाने के लिए भेजा। सेक्रेटरी के आने पर मालिक ने कहा, "यह श्री स्वामीराव हैं। इनकी बातें सुनो और जो कहें उन्हें पूरा करो।"

सेक्रेटरी स्वामीराव के नाम से परिचित था। वह उन्हें रसोईघर में ले गया। उन्होंने जूता पहने खाना खाने की इजाजत माँगी। एक हिन्दू घर में जूता पहनकर खाना जरूर आश्चर्य की बात थी। मगर पृथ्वीसिंह ने पाँच दिन से अपने कपड़े नहीं बदले थे। उनका दाहिना हाथ खून सने गन्दे चीथड़े से बंधा हुआ था। नौकरों और स्त्रियों ने समझा होगा कि कोई पागल भिखमंगा है। भोजन करने के बाद अब उनमें चलने की ताक़त नहीं रह गयी। दूसरों के सहारे वह एक घोड़ा-गाड़ी में बैठे। कुछ दूर जाने पर घोड़ा-गाड़ी से टेक्सी में और फिर पनाह लेने के स्थान पर पहुंच गये।

पृथ्वीसिंह ने अपने दोस्त से कहा, "पहले तो मुझे बदलने के लिये कपड़ा दीजिये और हजामत बनवाइये, फिर चाकू-कैंची ले आइये।" फूले पैरों से बूट निकालना संभव नहीं था। उन्होंने जूते को काट-काट ही नहीं निकाला बल्कि उन्हें उसके साथ मांस और चमड़ी को भी कहीं-कहीं काटना पड़ा। वह उस अवस्था में किसी डाक्टर की सहायता को खतरे की बात समझते थे। इसलिए सब कुछ उन्होंने अपने हाथ ही से किया, फिर दवा लगाकर पट्टी बांध दी। दर्द तो बहुत हो रहा था, लेकिन वह कई दिन-रात के थके और नींद के मारे थे, इसलिए इस अवस्था में भी सो गये। पूरे छः दिन तक वह जमीन पर पैर नहीं रख सकते थे, सातवें दिन वह जमीन पर खड़े हुए। पृथ्वीसिंह के मित्र के लिये यह खतरे की बात थी लेकिन उन्होंने उसकी परवाह न की, अब वह उस जगह और अधिक नहीं रहना चाहते थे।

श्री जोशी से भेंट

डाक्टर सुब्रह्मण्यम् और साम्बमूर्ति पृथ्वीसिंह के राजमहेंद्री जेल के ही परिचित थे, उन्होंने इस अवस्था में पृथ्वीसिंह की बड़ी सहायता की। भले चंगे होकर मार्च के (१९३५) महीने में पृथ्वीसिंह बम्बई आये। वहाँ मिरकर, घाटकर, इक़बाल आदि कम्युनिस्ट साथियों से मुलाक़ात की। पृथ्वीसिंह भारतीय पार्टी के सेक्रेटरी कॉमरेड पूरनचन्द्र जोशी

से मिलकर कुछ बातें करना चाहते थे, साथियों ने स्थान और समय बताकर कहा कि वहाँ एक जिम्मेवार आदमी आयेगा और वह तुम्हें जोशी के पास ले जायेगा। किसी वजह से जोशी खुद वहां पहुंच गये। जोशी के पास ले चलने की बात कहने पर जब उत्तर मिला कि मैं ही जोशी हूं तो पृथ्वीसिंह को सन्देह हो गया। उन्होंने साफ़ कह दिया, "मुझे अफ़सोस है कि मैं तुमसे बात नहीं कर सकता।" जोशी के कितना ही कहने पर भी पृथ्वीसिंह टस से मस नहीं हुए और घरवालों से यह कहकर चले गये कि घन्टे भर से पहले इन्हें जाने न देना। जोशी बहुत मुश्किल में पड़े, क्योंकि उनके विरुद्ध खुद वारंट था और इनाम की भी घोषणा थी।

साथियों ने सलाह दी कि पृथ्वीसिंह को ज़्यादा घूमना-फिरना न चाहिये। सात-आठ महीने तक वह इसी तरह छिपे रहते और पार्टी के पत्र-व्यवहारकी सुरक्षा में सहायता करते।

उस समय पृथ्वीसिंह के एक दोस्त उन्हें २५) मासिक की सहायता देते थे। अपने दो क्रान्तिकारी साथियोंके साथ बम्बई के एक ग़रीब मोहल्ले में वह रहा करते। २५)में से ८) मकान किराये में चला जाता था, २) का अख़बार मंगाते थे। बाक़ी १५) में तीनों आदमियों का खाना, कपड़ा धोना और मिट्टी का तेल आता था। ऐसी असह्य दरिद्रता में वह छः महीने तक रहे। ऐसा जीवन वह और उनके साथी तब बिता रहे थे, जब विरोधी बदनाम कर रहे थे कि कम्युनिस्टों के पास तो मॉस्को से ढेर का ढेर सोना आता है मॉस्को अपने यहाँ आये हुए किसी भी क्रान्तिकारी की दिल खोलकर सहायता कर सकता है; लेकिन वह जानता है कि जनता की क्रांति बाहर के सोने के बल पर नहीं हो सकती। जनता को क्रांति के लिये तैयार करने पर जनता ख़ुद सारे खर्च का बोझ अपने ऊपर उठा लेगी।

चपरासी, दरबान और मैनेजर

१९३५ के अन्त में पृथ्वीसिंह ने बाहर आने का निश्चय किया। कुछ दिनों एक समाचार पत्र के आफिस में चपरासी और दरबान रहे, फिर उन्होंने एलिमोनियम आदि की एजेन्सी ले ली। पार्टी की आर्थिक अवस्था ऐसी थी कि आर्थिक आय का कोई रास्ता निकालना वैसे भी ज़रूरी था, मगर यहाँ तो एक ग़ैर क़ानूनी पार्टी को देश-विदेश के साथ

सम्बन्ध रखना भी जरूरी था। पृथ्वीसिंह ने इस काम में बेहद मदद की। यद्यपि अब उन्हें रात को नहीं दिन के उजाले में लोगों के सामने आना पड़ता था, लेकिन वह अपनी प्रत्युत्पन्न मति पर पूरा भरोसा रखते थे। बम्बई शहर के सबसे बड़े व्यवसाय केन्द्र में वह रहते थे, जहाँ से हजारों उनके परिचित चेहरे गुजरते रहते थे। यह जोखिम की बात जरूर थी, लेकिन पृथ्वीसिंह को विश्वास था कि उनके परिचित उच्च और मध्यमवर्ग के व्यक्ति हैं; वे निम्न श्रेणी के चेहरों में अपने परिचितों को नहीं ढूंढ सकते। लेकिन चेहरा देखने से कोई भी पूर्व परिचित व्यक्ति उनको आसानी से पहचान सकता था। वह खुद हज़ारों परिचितों को अपने सामने गुज़रते देखते थे। लेकिन जब बड़े आदमियों को उनका सलाम लेने तक की फुर्सत न मिलती थी, तो उनके चेहरे को पहचानने का क्या सवाल था।

सफरी एजेण्टी

पृथ्वीसिंह एक कारख़ाने के टाइम कीपर मुक़र्रर हुये। मैनेजर ने उनके चेहरे और बात-चीत को देखकर समझा कि यह आदमी अच्छा ट्रेवलिङ्ग (सफरी) एजेन्ट हो सकता है। पृथ्वीसिंह ने उनकी बात स्वीकार की, अब पृथ्वीसिंह भिन्न-भिन्न तरह की चीजों का नमूना तथा आर्डर की किताब लेकर एक जगह से दूसरी जगह घूमने लगे। अपने ४० दिन के पहले सफ़र में वह कम्पनी के लिए बहुत से आर्डर लाने में सफल हुये। मैनेजर को उनकी सफलता से बहुत खुशी हुई।

एक बार वह बंगलोर के एक गुजराती होटल में भोजन कर रहे थे। उनके सामने दो तरुण बैठे थे। आधा घन्टा तक वह मेज़ पर बैठे रहे। एक तरुण पृथ्वीसिंह को ध्यान से देख रहा था। पृथ्वीसिंह को सन्देह होने लगा किन्तु तरुण ने कुछ नहीं पूछा। इसके बाद ऐसा संयोग हुआ कि दोनों कितने दिनों तक एक ही दिशा में चक्कर लगाते रहे। तरुण उनके प्रति ज़्यादा स्नेह दिखाने लगा था, लेकिन तब भी अपने पुराने परिचय के बारे में एक शब्द मुँह से बाहर नहीं निकाला। पृथ्वी-सिंह का भी उस तरुण की ओर ज़्यादा झुकाव हुआ, क्योंकि वह कोरा व्यापारी एजेन्ट ही नहीं था, बल्कि उसमें दूसरी तरह की सुरुचि थी। छः महीने तक दोनों एक दूसरे के सामने कभी दिल नहीं खोलते। तरुण

उन्हें अपना गुरु मानता और पृथ्वीसिंह उसमें भविष्य के एक अच्छे क्रांतिकारी होने की आशा रखते। एक दिन संयोग से एक दूसरे साथी मुलाक़ात हुई और फिर पता लगा कि जिस तरुण को वह धीरे-धीरे करके पार्टी में ले जाने का ख़याल रखते थे, वह पहले ही से पार्टी में है। पृथ्वीसिंह अबकी बार किसी दूसरे व्यापार केन्द्र में अपने काम के लिये गये थे। एक ख़ूबसूरत से तरुण ने बड़ी श्रद्धा के साथ उन्हें प्रणाम किया। लेकिन पृथ्वीसिंह ने उसे उस अर्थ में स्वीकार नहीं किया। तरुण मुश्किल से २० साल का था। उनके काठियावाड़ छोड़ने के वक्त वह १० साल से ज्यादा का न होगा। कोशिश करने पर भी वह तरुण के बारे में कुछ स्मरण नहीं कर सके। खाने के बाद रात को सभी एजेन्ट ताश खेलने लगे। पृथ्वीसिंह भी उसमें शरीक हुए। तरुण उनके प्रति बहुत सम्मान प्रदर्शित कर रहा था और जब तब गुरु जी कह कर सम्बोधित करता। पृथ्वीसिंह ने कहा—"भाई, यह अच्छा नौजवान है, मुझे तो इसने गुरु भी बना दिया और बाक़ी लोगों को काका।" तरुण जरा सा मुस्कराया और फिर वैसे ही खेलने में लग गया। आधी रात बाद जब खेल बन्द हो गया तो पृथ्वीसिंह ने जाकर उस तरुण से उसके विचित्र बर्ताव के बारे में पूछा। तरुण ने कहा, "स्वामी जी, तुम अपने उन विद्यार्थियों को धोखे में नहीं रख सकते, जो तुम्हारी गोद में खेले हैं।"

एक दिन पृथ्वीसिंह अपने दो नये दोस्तों के साथ दुकान में कपड़ा खरीदने गये। उन्होंने कपड़ा बेचने वाले तरुण से कुछ कपड़े दिखलाने के लिए कहा। तरुण उनके चेहरे की ओर देखने लगा। पृथ्वीसिंह के भीतर कुछ घबराहट हुई। तरुण ने मुस्कराते हुये कहा—"आप भावनगर के स्वामीराव तो नहीं हैं ?" पृथ्वीसिंह ने ठहाका लगाते हुए अपने दोनों दोस्तों की ओर मुड़ कर कहा, "आप लोग बता सकते हैं, मेरे चेहरे में क्या खास बात है कि एक आदमी तो मुझे शान्ति भाई कह के पीछे दौड़ने लगा। ख़ैर, उसे तो मैंने पागल समझा, लेकिन यहां देखिये यह मुझे स्वामीराव कह रहे हैं।" तीनों दोस्त हंसने लगे। तरुण ने झेंपकर नम्रता पूर्वक कहा, "माफ कीजिये, मैने गलती से आपको भावनगर के अपने स्वामीराव जी समझा।"

"कौन हैं यह स्वामी जी और कहां है भावनगर ?"

"भावनगर काठियावाड़ में है। वहां एक आदमी थे, जिन्हें हम प्यार से स्वामी कहा करते थे। उनका नाम था स्वामीराव।"

एक दिन पृथ्वीसिंह अपने दोस्त के साथ "तुकाराम" फ़िल्म देखने गये। जब वह सड़क पर आये तो सामने रेस्तरां में कुछ खाते-पीते एक तरुण की नजर अपने ऊपर पड़ते देखी। तरुण पैसे और प्याले को वहीं छोड़ छलांग मारकर पृथ्वीसिंह के सामने आकर खड़ा हो गया। वह खूब हट्टा-कट्टा मजबूत जवान था और अच्छी तरह एक हाथ मिला सकता था। एक मिनट से ज्यादा वह उसी तरह मुस्कराता अविचल दृष्टि से पृथ्वीसिंह के चेहरे को देखता रहा। पृथ्वीसिंह को याद नहीं आ रहा था तो भी उनके मनमें घवड़ाहट नहीं पैदा हुई; क्योंकि वह तरुण की आँखों में स्नेह और सम्मान को झलकता हुआ देख रहे थे। फिर तरुण ने कहा, "कितना आश्चर्य है ? कितनी जल्दी आप मुझे भूल गये ? मैं अमुक का छोटा भाई हूं।" पृथ्वीसिंह को अब याद आ गया। उन्होंने भी प्रेम प्रदर्शित किया। तरुण घर चलने के लिए आग्रह करने लगा। अपने दूसरे दोस्त के सामने पृथ्वीसिंह किसी बात को खोल नहीं सकते थे। पृथ्वीसिंह ने अपने पैरों से तरुण के अंगूठे को जोर से दबाया। उसने बात समझ ली और फिर आग्रह नहीं किया।

० ० ०

उस समय पृथ्वीसिंह एक बहुत बड़े शहर में एक नकली एजेण्ट बनकर रह रहे थे। उन्होंने बहुत तरह की चीजों के नमूनों को इस तरह के सिलसिले से लगा रक्खा था कि मालूम होता था कि दरअसल बहुत सी कम्पनियों की एजेन्सी इनके हाथ में है। एक दिन पाँच बजे शाम को सादे कपड़े में दो खुफ़िया वालों ने उनका पीछा करना शुरू किया। उनको यह नहीं मालूम था कि वे एक बड़े क्रान्तिकारी का पीछा कर रहे हैं। वह समझ रहे थे, शायद कोकीन, अफीम बेचने वाला कोई आदमी हो। पृथ्वीसिंह ने पीछा छुड़ाने की बहुत कोशिश की, मगर वह पीछा नहीं छोड़ते थे। अन्त में एक हड्डी बैठाने वाले के कमरे में गये। उससे कहा कि मुझे समय-समय पर छुट्टियों में गठिया का दर्द होता है। आदमी ने एक घन्टे तक खूब मालिश की। पृथ्वीसिंह ने दर्द बढ़ जाने की

मुद्रा दिखलाते हुए टेक्सी बुला देने के लिए कहा। टेक्सी ले वह वहां से ज़ोर से निकल गये और ख़ुफ़िया वाले मुंह ही ताकते रह गये।

० ० ०

पृथ्वीसिंह ने अपनी कम्पनी के काम को ट्रेवलिङ्ग एजेन्ट के तौर पर खूब अच्छी तरह निबाहा था। कम्पनी के मालिक अब उनपर बहुत विश्वास रखते थे। एक बार मालिक जो कंपनी के मैनेजर भी थे। किसी काम के लिये २० दिन की छुट्टी गये। उनकी अनुपस्थिति में पृथ्वीसिंह को मैनेजर का काम दिया गया। उन्हें सब काम की देख-भाल करना और काग़जों पर सही भी करना पड़ता था। कितनी ही बार उन्हें अपने हस्ताक्षर के काग़ज़ पुलिस के पास भी भेजने पड़ते। दो बार अंग्रेज सारजेंट उनके आफिस में कुछ पूछताछ करने आया। इसी समय एक पंजाबी छुट्टी पर घर जा रहा था, वह देखने में खूब चुस्त और चालाक मालूम होता था। ख़ुफ़िया वाले ने क्राँतिकारी समझ उसे गिरफ्तार कर लिया। नौजवान ने अपना पता ठिकाना दिया और सी. आई. डी. वाले मैनेजर से उसके बारे में कुछ पूछ-ताछ करने आये। पृथ्वीसिंह ने मैनेजर के तौर पर उन्हें समझाया कि नौजवान भला आदमी है, उसे खामख्वाह हैरान न करो उन्होंने उसके लिये सिफारिश की और नवजवान उसी वक़्त छोड़ दिया गया।

उस वक़्त बम्बई में वह जिस मालिक के पास काम कर रहे थे, उसने प्रदर्शनी में अपने कारखाने की सबसे अच्छी-अच्छी चीजें दिखाने और बेचने को रक्खी थी। मालिक ने समझा कि पृथ्वीसिंह जैसा रोबीला और अच्छा बोलने वाला आदमी यदि वहाँ रहेगा तो उसे बड़ी सफलता होगी। लेकिन जहां हज़ारों आदमी देखने के लिए आते हों, वहां, पृथ्वीसिंह कैसे खड़े हो सकते थे। वहाँ उन्हें बोलना पड़ता, बहस करनी होती और हंसते—मुस्कराते खरीदारों को खरीदने के लिए तैयार करना पड़ता, ऐसी स्थिति में अपने को छिपाना उनके लिये बहुत मुश्किल होता। विशेषतया जब कि प्रदर्शनी भी एक महीने तक चलने वाली थी। पृथ्वीसिंह ने मालिक को बहुत समझाया-बुझाया, लेकिन वह फिर भी जाने के लिए आग्रह करता रहा। आखिर में पृथ्वीसिंह को नौकरी से इस्तीफा दे देना पड़ा।

अध्याय १४

आत्म-समर्पण और जेल में

सन् १९३७ में भारत के प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल शासन करने लगे थे। बम्बई के कांग्रेसी मंत्रियों के कितने ही दोस्त पृथ्वीसिंह के भी मित्र थे। उस वक़्त किसी न किसी से भेंट हो जाती थी। अब उनके सामने सवाल था या तो इसी तरह गुमनाम अपना समय बितायें और जनता के साथ खुलकर सम्बन्ध स्थापित करने से वंचित रहें; अथवा ऐसा कोई रास्ता निकालें, जिससे उन्हें फिर जनता के भीतर खुलकर काम करने का मौक़ा मिले। उन्होंने पार्टी के अपने साथियों से सलाह ली। गांधी जी बंगाल के क्रांतिकारियों को छुड़ाने की कोशिश कर रहे थे। साथियों ने कहा—"महात्माजी से मिलिये। यदि वह आपको छुड़ाने की कोशिश करने का वचन दें, तो आत्म-समर्पण कर देना अच्छा होगा। इस प्रकार कुछ दिनों बाद आपके लिए खुलकर काम करना संभव हो जायगा।"

महात्मा जी से भेंट

१९३८ का मई का महीना था। महात्मा जी काँग्रेस कार्य कारिणी की बैठक में बम्बई आये थे और जुहू में बिड़ला भवन में ठहरे थे। महात्मा जी स्वयं भी भावनगर के स्वामीराव को जानते थे। पट्टाभी सिता-रमय्या तथा स्वामीराव के कितने ही गुजराती दोस्तों ने उनके बारे में महात्मा जी को सूचित किया और बताया कि वह अब आपके साथ काम करना चाहते हैं। महात्मा जी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पृथ्वीसिंह को भेजने के लिए कहा। नियत समय पर पृथ्वीसिंह बिड़ला भवन गये। महादेव भाई देसाई ने कहा कि, "महात्मा जी थके हुए हैं, अभी वह किसी से मिल नहीं सकते।"

पृथ्वीसिंह ने कहा—"आप ज़रा महात्मा जी से कहिये कि वह आदमी आ गया है, जिसे आपने इस वक़्त बुलाया था।"

महात्मा जी ने खबर पाते ही पृथ्वीसिंह को बुला लिया। पृथ्वीसिंह की महात्मा जी से कितनी ही देर तक बात होती रही। उन्होंने कहा—

"मेरा अब आतंकवाद पर बिल्कुल विश्वास नहीं रहा। मैं जनता के बल पर विश्वास करता हूँ और समझता हूँ कि आपने जन-बल को जागृत करने में बहुत बड़ा काम किया है।" महात्मा जी ने आत्म-समर्पण के बारे में बात-चीत होते वक्त कहा—"यह बड़े खतरे की बात है। कौन जानता है सारी जिन्दगी तुम्हें जेल में ही रहना पड़े।"

"कोई परवाह नहीं। लेकिन यदि आप मेरे छुड़ाने की कोशिश करने की जिम्मेदारी लेते हैं, तो अपने मित्रों से पूछकर आत्म-समर्पण के लिए तैयार हूँ।"

पृथ्वीसिंह बात-चीत करके लौट आये। उस वक्त कम्युनिस्ट पार्टी ग़ैर कानूनी थी और उसके सभी प्रमुख व्यक्ति पुलिस के पंजे से बचने के लिये अंतर्ध्यान रहा करते थे। जिस साथी से उन्हें अंतिम सम्मति लेनी थी वह किसी कारण-वश नहीं मिल सका। वह महात्मा जी को वचन दे आये थे। इधर साथी मिला नहीं। अकेले निर्णय कर लेने के वह खिलाफ़ थे, मगर अब कोई चारा नहीं था। गांधी जी ने उन्हें अपने बारे में संक्षिप्त तौर से कुछ लिखने के लिये कहा था। वह रात भर लिखते रहे।

आत्म-समर्पण (२० मई १९३८)

२० मई को सवेरे १० बजे पृथ्वीसिंह गांधी जी के पास पहुंचे और उन्हें अपना लिखा वक्तव्य दिया। वक्तव्य लिखा था:—"राष्ट्र के प्रतिनिधि के सामने मैं बिना किसी शर्त के आत्म-समर्पण करता हूं।"

पहले तै हुआ था कि पृथ्वीसिंह को वर्धा लेजाकर सरकार के हाथ में दिया जाय। लेकिन उसी दिन उनके एक दोस्त को पार्टी के किसी साथी से इस बात का पता लग गया और उन्होंने जुहू में जाकर महादेव भाई से कहा—"मैं सरदार पृथ्वीसिंह से मिलने आया हूं।"

सारी बात गुप्त रक्खी थी, इस तरह अचानक एक आदमी को पृथ्वीसिंह के बारे में पूछते देख उन्हें सन्देह हो गया कि यह जरूर पुलिस का आदमी है। उसी वक़्त महात्मा जी ने महादेव भाई के हाथ से बम्बई के कलेक्टर के पास पत्र लिखवाया और शाम से पहले ही वह थाणा जेल में पहुँचा दिये गए।

थाणा जेल (२० मई १९३८)

सरदार पृथ्वीसिंह को पौने-दो महीने तक थाणा जेल में रहना पड़ा। वहां और कोई दूसरा राजनीतिक क़ैदी नहीं था और मामूली क़ैदियों को उनके पास नहीं आने दिया जाता था। अब उनका समय सिर्फ़ पठन और चिंतन में लगता था।

सारे हिन्दुस्तान के पत्रों में सरदार पृथ्वीसिंह के आत्म-समर्पण की खबरें मोटे-मोटे अक्षरों में छपीं। उनके भाई को भी पता लगा और वह भाई से मुलाक़ात करने बम्बई चले आये। १९ जून को जेल के फाटक पर भाई से मिलने के लिये वह बुलाये गये। एक युग के बाद दोनों मिले। उन्होंने साथ में दो और नौजवानों को देखा। संदेह हुआ कि वह शायद ख़ुफ़िया के आदमी हों। जेलर से पूछने पर उसने बताया कि यह भी आपके ही भाई हैं। उससे पहले वह समझते थे कि दुनियां में उनका सगा सम्बन्धी अब कोई नहीं रहा! लेकिन अब उन्होंने डिप्टीसिंह, धर्मसिंह और रामसिंह अपने तीन-तीन भाइयों को देखा। जब पृथ्वीसिंह ने पिता के बारे में पूछा तो तीनों भाई अपने आँसुओं को न रोक सके थे। दूसरे दिन फिर उनके भाई दो घण्टे के लिए मिलने आये। उन्होंने चलते वक़्त भाइयों से कहा—"तुम्हें अपने ऐसे भाई का अभिमान होना चाहिये जिसने अपने देश के लिये अपना जीवन दे दिया। भाई के तौर पर मुझसे और किसी बात की आशा नहीं रखना। मुझे अपने जीवन के आदर्श के पीछे चलने को छोड़ दो।"

थाणा में रहते-रहते सरदार ने अपने आरम्भिक जीवन के बारे में कुछ संक्षेप से लिखा। महात्मा जी ने ऐसे बहादुर की जीवनी को देश के लिए उपयोगी समझ कर लिखने के लिये आग्रह किया था।

रावलपिण्डी जेल में

६ जुलाई १९३८ को सुपरिन्टेण्डेन्ट ने सूचित किया कि आपको पंजाब की किसी जेल में जाना होगा। पृथ्वीसिंह के जितने परिचित बम्बई और उसके आस-पास में थे। उतने पंजाब में नहीं थे, लेकिन सरकार की आज्ञा को कौन टालता। पंजाब का नाम सुनते ही उन्होंने यह भी समझ लिया कि अब हम ऐसी गवर्नमेंन्ट के हाथ में आ रहे हैं।

जिस पर गाँधी जी और सार्वजनिक राय का सबसे कम प्रभाव पड़ सकता है और उसकी आड़ में अंग्रेज सरकार अपने सारे मलाल को निकालना चाहेगी । आखिर १९६६ तक के लिये तो उनकी पुरानी सजाएँ मौजूद थीं ।

पजाब सरकार ने एक सब-इन्सपेक्टर और दो कान्स्टेबिल लाने के लिये भेजे थे । जब सुपरिन्टेन्डेन्ट ने सब-इन्सपेक्टर के हाथ में पृथ्वीसिंह का चार्ज देना चाहा तो सब-इन्सपेक्टर ने लेने से इनकार कर दिया । उसने कहा—"इतने ख़तरनाक क़ैदी को हम तीन आदमी नहीं ले जा सकते ।" आखिर में बम्बई सरकार को पांच कान्स्टेबिल और एक जमादार और देना पड़ा । हो सकता है सब-इन्स्पेक्टर को उसके मालिकों का ऐसा ही आदेश रहा हो । उनको यह ध्यान में लाने की ज़रूरत नहीं थी कि क्रान्तिकारी जिसने स्वयं अपनी खुशी से अंग्रेजी सरकार के हाथों में अपने आपको दे दिया और जिसे कलेक्टर अपनी प्राइवेट कार में बिना एक भी कान्स्टेबिल के लाकर थाणा जेल में रख गया, उसे एक जेल से दूसरे जेल में ले जाने के लिए इतने आदमियों की क्या ज़रूरत है ! पंजाब सरकार ने शरीर से बहुत मज़बूत एक सिक्ख सब-इन्सपेक्टर को इसी लिये भेजा था, कि अपनी इच्छा से आत्म-समर्पण करने वाले सरदार पृथ्वीसिंह को हाथ से निकलने का मौक़ा न मिल सके । सब इन्स्पेक्टर और उसके साथियों को उनके ऊपर के अफ़सरों ने तरह-तरह की कहानियां सुनाकर यह समझाने की कोशिश की थी कि तुम एक जंगली परिन्दे को पकड़ने जा रहे हो । थोड़ी देर की बात-चीत के बाद सब-इन्स्पेक्टर को मालूम हो गया कि, उसे किसी ख़ूख्वार परिन्दे से पाला नहीं पड़ा है, बल्कि एक सुशिक्षित, सुसंस्कृत मनुष्य के साथ चलने का मौक़ा मिला है । पंजाब सरकार ने सब सोच-समझकर पृथ्वीसिंह के लिए रावलपिंडी जेल को ही क्यों चुना गया ? क्योंकि वह अपनी कड़ाई के लिये मशहूर थी; वहाँ एक भी राजनीतिक बन्दी न था; वहाँ का डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट राजनीतिक बन्दियों के साथ कठोर बर्ताव करने के लिये मशहूर था, अतएव सरकार का बहुत ख़ैरख्वाह था ।

पोर्टब्लेयर के जेल में सुपरिन्टेन्डेन्ट रह चुका आदमी ही अब पंजाब के जेलों का इन्स्पेक्टर-जनरल था । उसकी कोशिश थी कि पृथ्वीसिंह दूसरे राजबन्दियों से न मिलने पायें । पुराने रिकार्ड को पढ़कर ऊपर के

अधिकारियों ने खूब कड़ा रहने का आदेश दिया था, लेकिन डिप्टी-सुपरिन्टेन्डेन्ट ने सरदार पृथ्वीसिंह को जिस रूप में सामने देखा, उससे उसने उनके प्रति विश्वास करना ही अच्छा समझा।

जहाँ तक जेल के कायदे-कानून का विरोध नहीं पड़ता था, जेल के अफ़सर उनके साथ सहृदयता का बर्ताव करते थे। जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट कैप्टन हैदर बहुत ही साफ दिल के आदमी थे। कई बार ऊपर से कड़े बर्ताव का हुक्म आया लेकिन सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उसकी परवाह न कर अपना ही तरीका इस्तेमाल करना पसन्द किया। बम्बई सरकार ने सरदार पृथ्वीसिंह को "ए" श्रेणी का क़ैदी बना करके भेजा था; लेकिन पंजाब सरकार इसे क्यों पसन्द करने लगी। आई. जी. ने "ए" वर्ग छीन लेने का हुक्म भेजा। कैप्टन हैदर ने दो महीने तक उसके लिए लिखा पढ़ी की और अन्त में मजबूर होकर उन्हें वैसा करना पड़ा। सरदार पृथ्वीसिंह ने अपने को खुश-किस्मत समझा कि 'ए" वर्ग के साथ उनकी किताबें नहीं छीन ली गयीं। हां, सरकार ने उनके पास काग़ज़ कलम और स्याही नहीं रहने दी। गांधी जी से उनका पत्र-व्यवहार बराबर होता रहा गांधी जी ने अपने एक पत्र में लिखवाया था कि, "हमको तो उनसे यही कहना है कि शान्ति से रहें, छूटने की आशा न रक्खें। जब निकलेंगे उनके लिये काम मौजूद है। किन्तु जितना समय जल में बितायेंगे, उनकी शान्ति उतनी ही बढ़ेगी इसमें मुझे शंका नहीं है। मैं खुशामद करूँ इससे उन्हें मुक्ति नहीं मिलेगी। मुक्ति प्रतिष्ठापूर्वक आन्दोलन करने से ही मिल सकेगी।"

प्यारेलाल से मुलाक़ात

पंजाब सरकार ने भेंट मुलाक़ात के लिए बहुत सी रुकावटे खड़ी कर रक्खी थीं। सरदार को आश्चर्य हुआ जब उन्होंने महात्मा गाँधी के प्राइवेट सेक्रेटरी प्यारेलाल को एक दिन सवेरे अपने वार्ड (हाते) में देखा। उन्होंने प्यारे लाल को कभी नहीं देखा था और उनकी पतली दुबली शकल को देखकर समझे कि वह पंजाब के नहीं, बल्कि दक्षिण भारत की किसी जगह के हैं।

प्यारेलाल सीमा-प्रान्त से लौट रहे थे। गांधी जी ने इसलिये उन्हें सरदार के पास भेजा था कि जिसमें वह उन्हें बतला दें कि गांधी जी

अपनी जवाब देही को खूब याद रक्खे हुए हैं। सरदार ने प्यारे लाल जी द्वारा महात्मा जी के पास कहला भेजा कि मैं वैयक्तिक स्वतंत्रता के लिये जेल से बाहर नहीं आना चाहता।

प्यारेलाल जी के जाने के कुछ दिनों बाद लाला दुनीचन्द (अम्बाला) उनसे मिलने आये। लाला दुनीचन्द ने १९१४ में जब कि किसी क्रान्तिकारी के मुक़दमे की पैरवी करने के लिए कोई वकील तैयार नहीं होता था, सरदार पृथ्वीसिंह के मुक़दमे की पैरवी की थी। लाला दुनीचन्द ने सरदार के साहसपूर्ण जीवन के लिये अनेक साधुवाद दिये।

पंजाब, गुजरात और दूसरे प्रान्तों से बहुत से मित्रों और सम्बन्धियों ने मुलाक़ात करने की दरख़ास्त दी थी, मगर पंजाब सरकार ऐसी दया दिखाने के लिए तैयार न थी। रावलपिण्डी के १४ महीने के कारावास में सिर्फ ५ मुलाक़ातें होने पायीं।

प्यारेलाल की मुलाक़ात के बाद पंजाब के खुफ़िया विभाग में एक जबरदस्त तूफान खड़ा हो गया था। किसी अख़बार वाले ने लिख दिया कि महात्मा जी ने प्यारेलाल के द्वारा सरदार पृथ्वीसिंह के पास एक संदेश भेजा है। उन दिनों एपी का मुल्ला और पठान कबीले सीमा-प्रान्त में कुछ गड़बड़ी पैदा कर रहे थे, इसलिए खुफ़िया विभाग 'गुप्त सन्देश को जानने के लिए बहुत उत्सुक था। अंग्रेज सुपरिन्टेन्डेन्ट ने लिख दिया कि मुलाक़ात जेलर के सामने हुई थी और कोई गुप्त संदेश नहीं दिया गया था।

आई. जी. से बात-चीत

कर्नल बार्कर उस समय सुपरिन्टेन्डेण्ट थे, जब सरदार अंडमान के जेल में बन्द थे। अब वह पंजाब के जेलों के आई. जी. (इन्सपेक्टर-जनरल) थे। वह सरदार को अच्छी तरह जानते थे, क्योंकि जेल की दुसह यातना के प्रतिकार के लिए जितने संघर्ष हुए थे, पृथ्वीसिंह उन सब में आगे-आगे थे। कर्नल बार्कर रावल पिण्डी जेल का मुआइना करने आये थे। वह सरदार के पास से भी गुजरे लेकिन सरदार को कुछ भी कहना नहीं था। वार्ड से जाते समय कर्नल बार्कर ने सरदार के पास आकर पूछा—"तुम्हें कुछ कहना है, तो कहो।"

सरदार ने कहा—"मुझे कुछ कहना, मांगना या शिकायत करना नहीं है। महात्मा जी के द्वारा सरकार को समर्पण करते वक़्त मैंने अपनी सारी इच्छाएँ और आवश्यकताएँ समर्पित कर दीं।"

कर्नल बार्कर खुश बड़े थे। वह हाते में बेडमिन्टन खेलने का इन्तज़ाम करने के लिए जेल वालों को आदेश देते गये। उन्होंने लाहौर जाकर व्यायाम करने को कुछ सामान भी भेज दिया।

राजकोट सत्याग्रह

राजकोट में महात्मा जी के उपवास करने की बात सुनकर उन अफ़सरों को बड़ी चिन्ता हुई, जो सरदार को मुक्त देखना चाहते थे। कैप्टन हैदर इसके लिए बहुत उत्सुक थे। वह रोज़ उपवास और समझौते की बातचीत सुनने जाया करते थे। जब भूख हड़ताल छोड़ देने की ख़बर रेडियो पर आयी तो उसी वक़्त ख़ुश-ख़बरी सुनाने के लिए वह सरदार के पास आये। यह बहुत ही सुखद समाचार था इसमें सन्देह नहीं, मगर उन्होंने राजकोट के सारे काण्ड पर एक दृष्टि डाली। अपने विश्लेषण को उन्होंने एक पत्र में गांधी जी के पास लिख भेजा। "······दो भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्तियाँ विजय प्राप्ति के लिये अखाड़े में डटी थीं। रियासत के मालिक राज्य के सारे बल पर पूरा भरोसा रखते थे और वे उसके सारे साधनों को पक्के दांव-पेंच के साथ इस्तेमाल करना चाहते थे। न्याय अन्याय का कुछ भी ख़याल किये बिना वह चाहे जिन तरीकों का इस्तेमाल कर सकते थे। दूसरा पक्ष था शोषित और पीड़ित लोगों का जिसका नेतृत्व कर रहा था एक ऐसा नेता जो कि जानबूझ कर न्याय को न्याय साधनों द्वारा ही प्राप्त करने की कोशिश करता था।

मुलाक़ातों का तांता

यद्यपि सरदार को मित्रों और सम्बन्धियों से मिलने की इजाज़त नहीं थी, तब भी उनके नाम से ख़ास आकर्षण पैदा किया था और सरकारी अफ़सर और दूसरे भी, जो जेल के भीतर जा सकते थे, सरदार से मिलने की कोशिश करते थे। यह सभी अंग्रेज़ और हिन्दुस्तानी मुलाक़ाती उनके बारे में तरह-तरह के पनाड़े सुन और पढ़ चुके थे।

एक बार रावलपिण्डी का डिप्टी कमिश्नर जेल में आया। उसने सरदार के पास आकर पूछा—"तुम क्यों यहाँ जेल में बन्द हो ?"

"क्योंकि तुम यहाँ थे।"

डिप्टी कमिश्नर ने पूछा–"तुम्हारा क्या मतलब है ?"

"क्या मैं बतलाऊँ, मेरा क्या मतलब है ? अच्छा सुनो, अपने साथियों के साथ मिलकर हमने सम्राट के खिलाफ़ युद्ध छेड़ने के लिए षड़यन्त्र किया और भारत भूमि से गोरे लोगों को निकाल बाहर करने के लिए अपने देशवासियों की सेनाओं को संगठित किया। तुम्हारी खुश किस्मती और हमारी बदक़िस्मती समझो, हम अपने प्रयत्न में असफल रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि तुम आज भी हमारे भाग्य पर शासन कर रहे हो और मैं क़ब्र की ओर जाने वाले क़दमों को गिन रहा हूँ।"

एक दिन कमिश्नर जेल में आया। उसने सरदार से पूछा—"तुम कब छूटने जा रहे हो ?"

"१९६६ में"

"क्या यह सम्भव है कि तुम १९६६ तक जियोगे ?"

"हो सकेगा तो मैं जीऊँगा, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य १९६६ तक ज़िन्दा नहीं रह सकता।"

"ऐसा कहने के लिए तुम्हारे पास क्या कारण हैं ?"

"हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय चेतना की यह जागृति और अन्तर्राष्ट्रीय अखाड़े में सभी शक्तियों का जो पारस्परिक सम्बन्ध दीख रहा है, उसी के आधार पर मैं यह कह रहा हूँ।"

"ब्रिटिश साम्राज्य के लिए ऐसा कहना अकृतज्ञता नहीं है जबकि सरकार ने जेल में तुम्हारे जीवन के सुख के लिए इतने साधन प्रदान किये हैं।"

"मैं भारत पर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह इसलिए नहीं करता हूं कि मैं व्यक्तिगत आराम चाहता हूँ बल्कि मैं चाहता हूँ, अपने देश की स्वतन्त्रता, देश के स्वतन्त्र नागरिक के तौर पर सुखी जीवन बिताने की स्वतन्त्रता। तुम्हारी सरकार ने मुझे १९६६ तक के लिए दंडित किया है, सिर्फ़ इसलिए कि विदेशी जुआ उतार फेंकने के लिए मैंने एक योजना बनायी थी।"

• • • •

पंजाब सरकार के गृह-सचिव लाला मनोहर लाल, जिनके हाथ में जेल विभाग था, रावलपिण्डी जेल में खास तौर से इसलिए आये कि पृथ्वी सिंह के बारे में साक्षात् कुछ जान सकें। राजनीतिक समस्याओं पर दोनों में देर तक बात होती रही। पृथ्वीसिंह के छोड़ने की बात चलने पर लाला मनोरहर लाल ने कहा—"आप को छोड़ने के बारे में हम पूरी कोशिश कर रहे हैं, मगर सब कुछ भारत सरकार के ऊपर निर्भर करता है।"

० • ० •

दूसरी जगहों की तरह पंजाब के किसान भी टैक्सों के बोझ के मारे पिसे जा रहे हैं। वर्तमान मंत्रि-मंडल ने जबसे हुकूमत की बागडोर संभाली, तब से तो और भी टैक्स बढ़ा दिये गये हैं। किसान सभा ने सरकार से बोझ हल्का करने के लिए बहुत प्रार्थना की, लेकिन उनकी मांगों को ठुकरा दिया गया। अन्त में कोई चारा न रहने से सत्याग्रह छेड़ना पड़ा। हज़ारों किसानों ने उसमें भाग लिया। पंजाब के जेल किसान क़ैदियों से भर गये। भिन्न-भिन्न ज़िलों से २०० किसान क़ैदी रावल पिन्डी जेल में रक्खे गये। सत्याग्रही क़ैदियों में से कितने ही सरदार पृथ्वीसिंह के पुराने साथी थे।

जेल में इन बन्दियों के साथ जैसा बर्ताव हो रहा था, उससे किसी वक़्त भी संघर्ष छिड़ सकता था। पृथ्वीसिंह उनसे मिलना चाहते थे और वे भी देर से बिछुड़े हुए साथी से मिलने को उत्सुक थे। अधिकारियों ने सोचा कि पृथ्वीसिंह से मिलने से शायद किसान बन्दियों पर असर पड़े। उन्हें मिलने का मौक़ा मिला। अधिकारियों ने स्लेट, नोट-बुक, ब्लेक-बोर्ड आदि लिखने-पढ़ने की चीजें दीं। किसान क़ैदियों में आधे अनपढ़ थे। तय हुआ कि उनको पढ़ाया जाय। पढ़ाने के साथ-साथ पृथ्वीसिंह रोज दो घन्टा भिन्न-भिन्न समस्याओं पर बोलते थे। सवेरे दो घन्टे कसरत, कवायद-परेट कराते। तीन महीने इसीतरह बहुत अच्छी तरह बीत गये।

महादेव देसाई से भेंट

सीमा प्रान्त से लौटते वक़्त गांधी जी के सेक्रेटरी महादेव भाई देसाई जेल में सरदार से मिलने आये। दोनों पहिले ही से एक दूसरे

से परिचित थे। महादेव भाई अपने साथ गांधी जी का सन्देशा लाये थे, जिसे पहले उद्धृत किया जा चुका है। सरदार को यह जान कर सन्तोष हुआ कि गांधी जी उन्हें भूले नहीं हैं।

जेल से मुक्ति

सितम्बर (१९३९) महीने के पहले हफ्ते में जेल सुपरिन्टेण्डेण्ट कैप्टन हैदर ने दूसरे अफ़सरों के साथ आकर बहुत ही खुशी से सरदार को यह ख़बर सुनाई—"पंजाब सरकार ने कुछ शर्तों के साथ आपको छोड़ने का हुक्म दिया है।"

उन्हें आफ़िस में ले जाया गया। वहाँ सरकारी हुक्म को सरदार ने पढ़ा। शर्त यह थी कि सरदार पंजाब सरकार की आज्ञा लिये बिना पंजाब में नहीं दाखिल होंगे। सरदार को उज्र नहीं था। उन्होंने काग़ज़ पर हस्ताक्षर कर दिये।

जेल अधिकारियों ने यह भी कहा कि अभी आप अपनी रिहाई की खबर किसी से न कहें।

२० सितम्बर १९३९ को सुपरिन्टेण्डेण्ट ने कहा कि पंजाब सरकार का आख़िरी हुक्म आ गया; अब पुलिस आप को वर्धा जेल ले जायगी और वहीं से आप छोड़े जायेंगे। सरदार अपने किसान साथियों से जा कर गले मिले। सभी को अपार खुशी थी, यद्यपि यह बात चुभती ज़रूर थी कि सरदार पृथ्वीसिंह अपने जन्म-प्रान्त में नहीं आ सकेंगे।

२१ सितम्बर को उन्होंने रावलपिण्डी जेल छोड़ा। अब पुलिस की इतनी बड़ी पलटन साथ नहीं जा रही थी। एक सब-इन्सपेक्टर उन्हें तांगे से स्टेशन ले गया। लाहौर जाने पर ज़रूर चार पुलिस वाले साथ हो लिये। वर्धा स्टेशन पर उन्हें मध्य-प्रान्त का सब-इन्सपेक्टर मिला और उसने उन्हें वर्धा जेल में पहुंचा दिया। पहले जेल में आने के कागज-पत्र ठीक किये गये। दो घन्टा जेल में रहने के बाद २३ सितम्बर १९३९ को सरदार पृथ्वीसिंह को जेल से मुक्त कर दिया गया। सब-इन्सपेक्टर और जेल के डाक्टर सेवाग्राम तक उनके साथ गये। महात्मा गांधी और आश्रम के दूसरे लोग उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

अध्याय १५

गांधी जी के संसर्ग में

२५ वर्षों बाद सरदार पृथ्वीसिंह ने भारत के स्वतंत्र वायु-मंडल में साँस ली। दो ही दिन बाद (२५ सितम्बर को) गाँधी जी वायसराय से मिलने दिल्ली जा रहे थे। उस दिन की प्रार्थना में गाँधी जी ने मज़ाक के तौर पर पृथ्वीसिंह का परिचय देते हुए आश्रम वासियों से कहा—"होशियार रहना, एक बड़ा डाकू आश्रम में आ गया है।"

जब गाँधी जी को पता लगा कि पृथ्वीसिंह मालिश-विद्या में सिद्ध हस्त हैं, तो उन्होंने गउओं की भी मालिश करने की सलाह दी। पृथ्वी-सिंह अब तक जो कुछ सीख पढ़ चुके और जहाँ तक विकास कर चुके थे, उससे पीछे नहीं हटे थे। मगर अभी तक उन्हें गाँधी जी के सिद्धांतों को नज़दीक से समझने का मौक़ा नहीं मिला था। इसलिए वह बड़ी ईमानदारी से उसे समझना चाहते थे। गाँधी जी जानते थे कि सरदार मॉस्को में रहे हैं और कम्युनिज़्म को मानने वाले हैं। साथ ही वह यह भी जानते थे कि उनका दिमाग़ खुला हुआ है, वह सत्य तथा अहिंसा को समझने के लिए बहुत उत्सुक हैं। प्रार्थना की बात चलने पर पृथ्वीसिंह ने कहा—"प्रार्थना पर मेरी श्रद्धा नहीं, लेकिन आश्रम वासियों की एकता के लिए मैं शामिल ज़रूर होऊँगा।

पृथ्वीसिंह के आश्रम में आने के बारे में महादेव भाई ने समाचार पत्रों में एक वक्तव्य निकाला था, जिसमें कहा गया था कि अब वह आश्रम से नहीं जा सकते। सरदार को यह बात खटकी ज़रूर मगर उन्होंने उसकी ओर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। भारत और बरमा के सभी अख़बारों में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पृथ्वीसिंह के जेल से छूटने की ख़बरें छपीं और यह भी कि अब वह सेवाग्राम के सन्त की बछिया बन गया है। उनके पास ढेर की ढेर चिट्ठियाँ आने लगीं और बाज़ वक्त उनकी संख्या गाँधी जी की चिट्ठियों से भी ज़्यादा होती।

बरमा से भाइयों की चिट्ठी आने लगी, वे उनसे मिलने के लिए

बहुत उत्सुक थे। पृथ्वीसिंह भी अपने भाइयों के परिवार को देखना चाहते थे। उन्होंने महात्मा जी से कई बार बरमा जाने की इजाज़त माँगी, लेकिन वह न मिली। इधर-उधर की बात-चीत से भी सरदार को मालूम हुआ कि महात्मा जी चाहते हैं कि पृथ्वीसिंह कहीं जाने आने का नाम न लें। वह आश्रम में रहकर सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त को अच्छी तरह समझें। दो-ढाई महीना रहते-रहते पृथ्वीसिंह का आश्रम और आश्रम वासियों से काफी परिचय हो चुका था। वह नहीं समझते थे कि आश्रम में रहकर ही वह सत्य और अहिंसा सीख सकते हैं। बल्कि उस वायु-मंडल में जब वह यह देखते कि गांधी जी और दो एक व्यक्तियों को छोड़कर बाकी सभी आत्म-वंचना और पर वंचना में एक दूसरे का कान काटते हैं तो उनका दम सा घुटता मालूम होता था। एक दिन उन्होंने मीरा बहिन से कहा :—

"महात्मा जी यदि एक जेल से छूटने के बाद यहाँ मुझे दूसरे जेल में बन्द रखना चाहते हैं, तो मुझे यह मंजूर नहीं है; मैं इस जेल की जगह उसी जेल में जाना ज़्यादा पसन्द करूँगा।"

बर्मा की यात्रा

गांधी जी को जब यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने कहा—"मैं तुमसे बड़ी आशा रखता था। कोई बात नहीं। मैं तुम्हें बाँधकर नहीं रखना चाहता। तुम जहाँ चाहो, जा सकते हो।"

दिसम्बर (१९३९) में पृथ्वीसिंह भाइयों से मिलने बर्मा गये। सात दिन अपने परिवार में रहे और पन्द्रह दिन संस्थाओं में व्याख्यान और भेंट मुलाक़ात करके, जनवरी (१९४०) में वह फिर सेवाग्राम लौट आये।

गांधी जी सत्य और अहिंसा को स्थूल अर्थों में ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक अर्थों में भी लेते हैं। पृथ्वीसिंह के लिए यह समझना मुश्किल था। गांधी जी सत्य, अहिंसा की प्राप्ति के लिये उपनिषद के ऋषियों की तरह आध्यात्मिक साधना की आवश्यकता समझते थे और इसलिए वह आश्रम-वास और अविचल श्रद्धा के साथ गुरू की आज्ञाकारिता को बहुत ज़रूरी समझते थे। लेकिन पृथ्वीसिंह ने अपने जीवन को सत्य और अहिंसा के आध्यात्मिक अर्थ को समझने के लिये नहीं अर्पण किया था।

उन्होंने अपने जीवन को अर्पण किया था, देश की स्वतंत्रता के लिये। यदि देश की स्वतंत्रता में सत्य और अहिंसा सहायक हो सकते हैं, तो उसे समझने और स्वीकार करने के लिये वह तैयार थे। महात्मा जी ने अपने प्रति सरदार पृथ्वीसिंह की सच्ची श्रद्धा का अर्थ समझा था कि उन्होंने आत्मिक, शारीरिक और मानसिक तौर से आत्म-समर्पण कर दिया है, लेकिन अब वह उनकी स्वतंत्रता की भावना को देखते थे। उन्होंने एक बार सरदार से कहा भी, "तुममें आत्म-विश्वास ज़्यादा है।" सरदार आत्म-विश्वास को दूषण नहीं भूषण समझते थे। जहाँ तक गांधी जी के प्रति श्रद्धा का सवाल है, वह उनकी कभी भी कम नही हुई; क्योंकि उनकी श्रद्धा अंध-श्रद्धा नहीं थी, लेकिन वह किसी तरह की आत्मिक उन्नति की—गांधी जी के अर्थों में—सेवा ग्राम से आशा नहीं रख सकते थे।

मानसिक संघर्ष

सरदार ने देखा कि उनकी शक्ति का पूरा उपयोग सेवाग्राम में नहीं हो सकता, इसलिए उन्होंने बाहर जाकर काम करने का निश्चय किया। नौजवानों की प्रकृति से उनका अच्छा परिचय था। उनकी शारीरिक, मानसिक दृढ़ता और संगठन को वह अपना ध्येय बनाना चाहते थे। गांधी जी से पूछने पर उन्होंने स्वीकृति दे दी।

काठियावाड़ में समुद्र तट पर घोघा एक सुन्दर स्थान है। सरदार ने व्यायाम और कवायद-परेड के साथ मानसिक शिक्षा के लिए वहां एक क्लास खोला, जिसमें ४०० तरुण-तरुणियां गुजरात के भिन्न-भिन्न भागों से आकर शामिल हुये।

दस साल पहले के तरुणों के उस कैम्प की उन्हें याद आयी जिसके बाद वह सत्याग्रह में शामिल हुए और फिर पुलिस के हाथ से भाग निकले थे। इस वर्ष के बाद अब जिन तरुण-तरुणियों को उन्होंने अपने सामने देखा, उससे उन्हें इस काम में बहुत उत्साह प्राप्त हुआ। सरदार ने इस तरह की शिक्षा की एक पूरी योजना बनाई। वल्लभ भाई ने उसे पसन्द किया और गांधी जी ने देखकर कहा कि, "अपने काम में लग जाओ, पैसों की परवाह न करो। बारडोली को अपना केन्द्र बनाओ।"

पूना में कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई और वहां जो प्रस्ताव पास

हुआ वह महात्मा जी को पसन्द नहीं आया। वल्लभ भाई भी प्रस्ताव में महात्मा जी के विरुद्ध थे और अंग्रेजों से समझौता करने के लिये भारत को युद्ध में शामिल करने के पक्ष में थे। महात्मा जी शंकित हो उठे कि देश उनकी अहिंसा को छोड़ हिंसा का रास्ता लेना चाहता है। अब सरदार की व्यायाम योजना को भी वह सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। उन्होंने सरदार से कहा–"तुमने जो व्यायाम में भाला, तलवार, छुरा आदि रक्खा है, यह ठीक नहीं है। इन चीजों को हाथ में लेने से हिंसा की भावना उठती है। इसलिए इन्हें नहीं रखना चाहिये।" सरदार ने कहा—"मैंने इन हथियारों को सीखा है। मगर मेरे दिल में तो हिंसा की भावना कभी नहीं आती। हथियार ही क्यों एक थप्पड़ ही से आदमी को मारा जा सकता है। तव तो हाथ में बल होना भी हिंसा की भावना को जगायेगा। फिर व्यायाम करना भी हिंसा है। क्यों कि, उससे सारे अंगों में बल आता है।" गांधी जी ने कहा–"हाँ, यह भी नहीं होना चाहिये।"

पृथ्वीसिंह को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने कह दिया कि, "मैं आपकी ऐसी योजना में शामिल नहीं हो सकता।"

१९४० के अन्त तक पहुंचते-पहुंचते सरदार ने समझ लिया कि "सेवा ग्राम" में वही रह सकता है, जिसके लिए दुनियां में कहीं ठाँव नहीं या जिसके भीतर महात्मा जी के प्रति अंध-श्रद्धा हो। यद्यपि अपनी सेवा के कारण वह आश्रम में सर्व प्रिय थे, किन्तु अपनी शक्ति को बरबाद जाते देख उन्हें बहुत असन्तोष होता। उन्होंने सोचा, महात्मा जी की इच्छा के अनुसार मैं अपने को मिटा नहीं सकता और न अपनी इच्छा के अनुसार यहाँ काम करने का क्षेत्र ही पा सकता हूं।"

उनका मन अब वहाँ बिल्कुल नहीं लगता था, यह बात दूसरों को भी मालूम हो गयी। कॉमर्शियल कालेज (वर्धा) के प्रिन्सिपल चाहते थे कि वह होस्टल का इन्तजाम अपने हाथ में लें। जमुना लाल बजाज सारी मदद देने के लिए तैयार थे और कहते थे कि व्यायाम शिक्षा का केंद्र बनाने के लिए किसी स्थान को पसन्द करो। यद्यपि सरदार पृथ्वीसिंह का जेल से बाहर अज्ञात-वास का समय अधिकतर गुजरात के उच्च और मध्यम वर्ग में बीता था और उनके मित्रों में भी उन्हीं की संख्या अधिक थी, तो भी सेवा-ग्राम में यह देखकर उन्हें दुख होता कि

जहाँ साधारण आदमियों के आने पर कह दिया जाता कि महात्मा जी को छुट्टी नहीं, वहाँ बिड़ला, बजाज, साराभाई के पहुंच जाने पर उनका दरवाजा सदा खुला रहता था। पृथ्वीसिंह जानते थे कि इसमें महात्मा जी का दोष नहीं है, दोष है द्वारपालों का जिनकी दृष्टि में ग़रीब अकिंचन हैं और धनी भगवान के कृपा-पात्र।

महात्मा जी के नाम पत्र

सरदार बहुत दिनों तक अपने को रोके रक्खे थे और अपने मन की बातों को खोलकर कहने में हिचकिचाते थे। अब उन्हें सेवाग्राम के भरोसे बैठा न रहकर खुद अपना रास्ता निकालना था। उन्होंने १८ जनवरी १९४१ को गाँधी जी के पास अपने भावों को प्रकट करते हुये यह पत्र लिखा—

सेवाग्राम
१८-१-४१

पूज्य बापूजी,

"आपके आदर्श जीवन ने ही मेरे जीवन में एक ज़बरदस्त क्रांति पैदा की है। उसी मक़सद के लिए जेल गया। वर्षों के दिली-मित्रों को छोड़ा। जो मुझे पूजते थे, उनके मुंह से गालियाँ और ताने सहे। यह सब इसलिए हुआ कि आपने मेरे अपने लिए एक जबरदस्त प्रेम पैदा किया। ......उसी प्रेम ने मुझे आज तक आपके साथ बांध रक्खा है। लेकिन जो प्रेम मेरे दिल में देश के लिए है और जो तमन्ना देश के लिए मर मिटने की मेरे दिल में है, उसकी किसी के लिए कल्पना करना भी कठिन है। आपका प्रेम मुझे आपकी तरफ खींचता है और देश का प्रेम मुझे मजबूर करता है कि मैं उसकी हालत सुधारने के लिए अपनी इच्छा और शक्ति के साथ काम करूं। मैं आपका प्रेमी बनना चाहता हूं (और), दिल और जान से आपको चाहता हूं; लेकिन मैं अपने देश का सच्चा आशिक हूँ, देश की आजादी की वेदी पर मर मिटने की तमन्ना रखनेवाला एक परवाना हूँ। मैं अपने देश की आजादी के लिए कुछ न कुछ करना चाहता हूँ। ...... मैंने बार-बार सेवाग्राम में रहने की कोशिश की लेकिन मैं रह न सका और ऐसा मालूम होता है कि मैं सेवाग्राम और वर्धा में नहीं रह सकता। मुझे आज तक यहां किसी प्रकार का लाभ नहीं हुआ और न होने की आशा है।... डर क्या चीज़ है मैं नहीं जानता। आज तक मैंने किसी प्राणी का, मनुष्य का, सत्ताधारियों का, हवा-पानी या आग का डर नहीं

माना, लेकिन आपसे मुझे डर लगता है। मैं हिम्मत नहीं कर सकता कि मेरी तरफ से आपको किसी तरह का दुःख पहुँचे।...आज मेरा दिल बहुत बेचैन है। अपने आँसुओं से यह पत्र लिख रहा हूँ। मेरे सब्र की आज हद हो गयी। जेल से छूटने के बाद १ वर्ष और ४ महीने मैंने गुजार दिये और देश के लिये कुछ भी न किया और न ही आपकी नजरों में कुछ करने लायक बन सका। आज मैंने इन दोनों बातों पर खूब सोचा है। सोचते-सोचते मेरा दिल टूट गया। अगर मेरी हालत ऐसी ही रही तो मालूम नहीं इसका मेरे मन और शरीर पर क्या असर होगा। आप मेरी हालत पर दया करके मुझे देश में जाकर कुछ करने की आज्ञा दीजिए।... मुझे हर एक काम को सफलतापूर्वक करने के लिये आपकी सहायता की ज़रूरत रहेगी। यदि किसी खास कारण से आप सहायता न देना चाहे तो न सही; लेकिन मुझे आपका प्रेम और आशीर्वाद तो ज़रूर चाहिये।"

महात्माजी का उत्तर

गांधीजी ने उसी दिन उन्हें उत्तर दिया—

"भाई पृथ्वीसिंह,

तुम्हारा खत बहुत ध्यान से पढ़ गया हूँ, मेरे साथ बात करने में डर क्या?"

"मैं तुमको यहाँ खींचकर रखना नहीं चाहता हूँ, पूर्ण शांति से और मन से रह सकते हो, तो ही तुम्हारे रहने से मुझे आनन्द हो सकता है, लेकिन मैं समझता हूँ कि जबतक आश्रम-जीवन के साथ ओत-प्रोत नहीं हो सकते, तुम्हारा यहाँ रहना निरर्थक है। मैं यह भी समझ सकता हूं कि जिसने सब डर को छोड़ा है वह आश्रम से क्या लेगा, इसलिये तुमको जहाँ जाना है वहाँ जाने का और जो करना है वह करने का सम्पूर्ण अधिकार है। तुमको मेरा आशीर्वाद तो है ही मैं जानता हूँ जहाँ जाओगे, जो कुछ करोगे उसमें अहिंसा और सत्य होगा। मुझे लिखा करो, ठिकाना दिया करो और हो सकता है तो बताया करो क्या करते हो। जब इस तरफ आने का दिल हो, अवश्य आ जाओ। मेरे साथ इस बारे में बात करना है तो अवश्य करो। शुभ-वृत्ति से जुदा होने में भी दुःख क्यों? धर्म पालन में सुख ही है। बापू के आशीर्वाद।"

मलाड कैम्प

जनवरी में सरदार ने वर्धा छोड़ा। वैसे पहले भी वह वर्धा में लगातार नहीं रहते थे। वह सीधे बम्बई आये। अपने व्यायाम की योजना मित्रों के सामने रखी। उन्होंने उसे बहुत पसन्द किया। तय हुआ कि व्यायाम सिखलाने के लिये एक अच्छा कैम्प खोला जाय और बम्बई के पास मलाड में कैम्प शुरू हो गया। कैम्प में ६९६ लड़के थे जिनमें १०२ लड़कियां थीं। नौकर-चाकर मिलाकर १००० आदमी थे। मलाडमें आमों के एक विशाल बाग में इसके लिये चटाई की झोपड़ियाँ बनायी गयीं। १००० और नौजवानों ने आवेदन पत्र भेजा था, मगर जगह की कमी के कारण अस्वीकार करना पड़ा।

बम्बई के राष्ट्रीय-पत्रों ने व्यायाम-शिविर की प्रशंसा में बहुत लेख लिखे। हर इतवार को हज़ारों आदमी व्यायाम देखने के लिए बम्बई से मलाड जाते थे, जिनमें ४००–५००मोटरें होतीं। उस समय बगीचे में ख़ूब आम फले हुए थे। कुछ लोगों ने सन्देह प्रकट करते हुए कहा—"बन्दरों से एक भी आम बचने नहीं पायेगा।" सरदार ने कहा—"यदि हम अपने बच्चों पर विश्वास रक्खेंगे तो आम जरूर रहेंगे।" लड़कों में दस-दस वर्ष के बच्चे तक थे; लेकिन सब अपना फर्ज़ समझते थे कि कोई आम न तोड़े। पके आम जो जमीन पर गिर पड़ते उन्हें लड़के आफिस में लाकर हाज़िर करते। माली हैरान रहते थे।

काम करने में मध्यम वर्ग के ये शिक्षित लड़के-लड़कियाँ, गन्दे से गन्दे काम में जुट जाने के लिए तैयार रहते। कोई गन्दी पाखाने से भरी जगह थी। सरदारने १०० नौजवानों को मांगा और एक मिनट में ही उन्हें लेकर सारी जगह साफ़ कर डाली।

अनुशासन की जबरदस्त पाबन्दी थी। उसकी कड़ी परीक्षा के एक दिन रात को सीटी दी। लड़के भाला लेकर सोया करते थे। सीटी बजते ही बिना वर्दी पहने भाला लिये कुछ ही सेकेन्डों के भीतर सारे इकट्ठे हो गये।

लोग सरदार के इस काम में सहायता देने के लिए कितने तैयार थे, यहाँ इसी से मालूम होगा कि रुपये के लिए अपील करने पर रुपया

इतना आ गया कि कुछ ही मिनटों के बाद उन्हें चन्दे की सूची बन्द करनी पड़ी।

मलाड शिविर बहुत ही सफ़ल रहा और पत्रों में उसका प्रचार तो और भी ज़ोर का हुआ। इस सफलता की ख़बर वर्धा भी पहुंची। महात्मा जी ने भी इस सफलता के लिए खुशी प्रकट की और उन्होंने पृथ्वीसिंह के इस कार्य में सहयोग देने के लिए कहा।

पृथ्वीसिंह ने व्यायाम--संघ की एक पाँच साल की योजना बनायी। जिसके अनुसार हर साल १०० नौजवान लिये जायं एक साल तक उन्हें व्यायाम आदि की शिक्षा दी जाये, फिर दो-तीन महीने महात्मा जी के केन्द्रों में खादी और हरिजन उद्धार की शिक्षा दी जाय, फिर देश में अलग-अलग केन्द्र बना कर काम पर लगा दिया जाय। सब काम राष्ट्रीय काँग्रेस के मातहत हों। रुपये के लिए कहने पर कुछ दिन में ही साल भर के खर्च के लिए ३०,०००) आ गये। ऐसे देश सेवकों में खास शारीरिक और मानसिक योग्यता होनी चाहिए। सरदार नौजवानों की खोज में युक्त प्रांत, महाराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़ और बिहार में घूमे। लेकिन जैसे नौजवानों को वह चाहते थे, वैसे उन्हें बहुत कम मिले। उनका उत्साह कुछ ढीला जरूर हुआ। लेकिन जब तक एक राजनीतिक आदर्श, एक सामाजिक ध्येय को लेकर कोई काम न हो, उस वक़्त गंगा-जमुनी तरुणों को इकट्ठा करना मेढकों की तौल है। सरदार को पैंतिस नौजवान मिले, जिनमें से पांच को अलग करना पड़ा।

संघ का नाम यद्यपि गांधी जी के सुझाव के अनुसार "अहिंसक व्यायाम संघ" रक्खा गया था, मगर दो-एक को छोड़ कर अहिंसा में किसी की श्रद्धा न थी। यह कैम्प भी मलाड के रामबाग में किया गया था। नौजावनों की शिक्षा खूब हुई। उनकी डिसीप्लिन (अनुशासन) को देख कर जनता भी बहुत खुश थी।

रात को कोई आदमी एक लड़की को मोटर पर भगाये लिये जा रहा था। बाग के पास लड़की मोटर से कूद कर चिल्ला उठी। लड़कों ने सीटी बजायी। मोटर ड्राईवर ३०० गज भाग सका था कि वहाँ कैम्प के फाटक पर नौजवान उसे धरने के लिए तैयार थे। उन्होंने मोटर वाले को पकड़

कर पुलिस के हवाले किया। जिस वक़्त यह घटना घटी उस दिन सरदार कैम्प में नहीं थे।

महात्माजी से मिला

जर्मनी ने जब सोवियत पर हमला किया तो सरदार ने गांधी जी को लिखा, "अब हमारे चुप रहने का समय नहीं है। यह जनता के जीवन-मरण का प्रश्न है। आपने एक बार कहा था कि जिस दिन वेस्ट मिनिस्टर पर बम गिरेगा, उस दिन मेरी आँखों से आँसू आयेंगे। आज के रूस के मजदूरों-किसानों के घरों पर बम पड़ रहे हैं, तो आप एक अक्षर भी क्यों नहीं बोलते।"

महात्मा जी ने इसका उत्तर (२०-९-४१) देते हुए लिखा था, "अब रूस की बात हम कुछ नहीं कर सकते हैं। तीनों में मैं बहुत फर्क नहीं मानता हूं। यह ठीक है कि रूस में लोगों के लिए काफ़ी काम हुआ है।" सरदार ने महात्माजी का ध्यान देवली कैम्प में अनशन करने वाले राजबंदियों की ओर भी दिलाया और इनके बारे में कुछ कहने के लिए कहा। देवली में जान की बाज़ी लगाने वाले क़ैदियों में बहुत से सरदार के गहरे मित्र थे और बाबा सोहनसिंह, बाबा रूरसिंह जैसे कितने ही फांसी के तख्ते का इन्तज़ाम करने वाले पुराने साथी भी थे।

१९४२ का शायद मार्च का महीना था, बम्बई में काँग्रेस कार्य-कारिणी की बैठक थी। सरदार ने पंडित जवाहरलाल को मलाड में बुलाया। व्याख्यान को सुनने के लिए १०,००० आदमी जमा हुए थे। सरदार के शागिर्दों ने इतना अच्छा इन्तजाम किया था कि एक भद्र पुरुष ने कहा, "हमारी कल्पना में भी जो सभा प्रबन्ध नहीं आ सकता था वह आज हमने प्रत्यक्ष देखा।"

सरदार जब महात्मा के प्रभाव में थे तब भी राजनीतिक बातों पर उनसे ज्यादा चर्चा नहीं करते थे। हां कभी कभी उन्होंने यह जरूर कहा, "महात्मा जी जो आपको समझते हैं, वे आपके मार्ग पर नहीं चलते और जो आप पर श्रद्धा रखते हैं वे आपको समझते नहीं।"

गाँधी जी के दर्शन के पंडित श्री किशोरलाल मशरूवाला ने एक बार सरदार से कहा था, "बड़ी मुश्किल है, तुम समझते हो कि मैं गांधी जी का सहकारी हूँ और गांधी जी समझते हैं कि तुम उनके शिष्य हो।"

१९४२ की जनवरी का महीना था। भावनगर में खेल और व्यायाम प्रतियोगिता के लिए एक बड़ा वार्षिक सम्मेलन हो रहा था। सरदार ने कहा कि ऐसे सम्मेलनों में जैसे हम कांग्रेस नेताओं का सम्मान करते हैं, वैसे ही तरुण नेताओं को भी बुलाकर उनका सम्मान करना चाहिए, उन्हें फूल हार देना चाहिये, उनका जुलूस निकालना चाहिए।" भूतपूर्व कांग्रेस मंत्री मुरार जी देसाई को यह बात बुरी लगी। उन्होंने कहा—"क्या हम फूलों के हार के लिए हैं ?" सरदार ने यह भी कहा था, "ज़माना बदल रहा है, नेताओं को भी बदलना होगा। यदि बदलेंगे तो वह प्रतिगामी बनकर रहेंगे।" कुछ पुराने विचार के नेताओं को यह बात बुरी लगी। गांधी जी के पास सभी लोग इसे नहीं पसन्द कर सकते थे। उन्होंने महात्मा जी के पास शिकायत की। महात्मा जी को पृथ्वीसिंह ने भी एक चिट्ठी लिखी और उन्होंने उनके विचारों के साथ अपनी सहमति प्रकट की।

क्रिप्स के आने के समय गांधी जी दिल्ली गये हुए थे। एक दिन मोटर छोड़ वह सरदार पृथ्वीसिंह के साथ पैदल ही चल पड़े। उस वक़्त महात्मा जी ने उनसे कहा कि मैं जानता हूँ कुछ लोग मेरे पास तुम्हारी शिकायत इसलिये करते हैं कि मेरा मन तुमसे फिर जाये, मगर मैं उनके कहने की परवाह नहीं करता। सरदार ने उस वक़्त कहा था, "दुर्भाग्य से कितने ही नेता समझते हैं कि मैं कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से जासूस बनाकर आपके पास भेजा गया हूँ। वह कम्युनिस्ट पार्टी का नाम लेकर चाहते हैं कि इस तरह आसानी से कितने ही दूसरे आदमियों को मेरे खिलाफ़ कर सकेंगे। लेकिन मैं कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से नहीं भेजा गया, मेरे विचार कम्युनिज़्म के भले ही हों।"

मई १९४२ में महात्माजी एण्ड्रूज़ स्मारक के लिए बम्बई आये थे और बिड़ला हाऊस में ठहरे थे। सरदार पृथ्वीसिंह भी उनसे मिलने गये। गांधीजी ने बात करते हुए कहा कि बहुत कड़ा वक़्त आया है, मेरे ही साथ रहो। यह मेरे आखिरी दिन और अन्तिम युद्ध है।

महात्माजी ने यह भी कहा, "अहिंसक व्यायाम संघ तोड़ दो और मेरे साथ चलो।" पृथ्वीसिंह संघ के तोड़ने के लिए सहमत नहीं हुए। लेकिन उसे वर्धा ले जाने के बारे में नाथजी और कुलकर्णी से सलाह ली। उन्होंने भी महात्माजी के साथ जाने की सलाह दी। सरदार फिर गांधी-

जी से मिले और संघ के नौजवानों और उनकी शिक्षा के बारे में बताया। गांधीजी ने बड़े आश्चर्य से कहा, "मुझे तो मालूम नहीं।"

सरदार को बहुत दु:ख हुआ, क्योंकि दस ही दिन पहले गांधीजी ने बिड़लाको संघ के खर्च का भार उठाने को कहा था! बिड़ला से कहने के बाद मालूम होता है वह बात महात्माजी के दिमाग़ से निकल गयी थी। पर सरदार को इससे बहुत अनुताप हुआ और चोट पहुँची।

सरदार इससे पहले ही गाँधीजी को संघ के कैम्प को देखने के लिये मलाड आने का निमंत्रण दे चुके थे और गांधीजी ने कई लोगों के काफी बिरोध के बाद भी आना स्वीकार कर लिया था। उन लोगों ने महात्मा कहा था कि अब और संस्थाएं भी आपको निमंत्रण देंगी। गांधीजी ने जवाब दिया, "मैं मलाड तो जाऊंगा, किन्तु और जगह नहीं।"

लेकिन गांधीजी की उपर्युक्त बात से सरदार को इतना दु:ख हुआ था कि फिर उन्होंने महात्माजी से वहां जाने का अनुरोध नहीं किया। "वह अकेले ही लौटकर मलाड गये। कार्यकर्ताओं को बुलाकर कहा, "यह है आपका अहिंसक व्यायाम संघ, यह हैं लड़के और यह संघ के रुपये। आप लोग सब संभालिये, अब मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं।"

कार्यकर्ता दंग रह गये। दूसरे ही दिन गांधीजी वहां आने वाले थे। रात ही को संघ के सभापति श्री केदारनाथजी को टेलीफोन करके बुलाया गया। नाथजी ने बहुत समझाया, लेकिन सरदार ने कहा, "मेरा निश्चय हो चुका है।" नाथजी को टेलीफ़ोन करके पूछा, "आपको सबेरे आना है न?" जवाब में "हां" मिला।

दूसरे दिन गाँधी जी मलाड आये। उनके साथ बिड़ला, वल्लभ-भाई और महादेव भाई भी थे। कैम्प के प्रबन्ध और शिक्षा को देखकर सभी ने प्रसन्नता प्रकट की। फिर नाथ जी ने महात्मा जी को सरदार का निश्चय सुनाया। गाँधी जी बहुत चकित हुए और सरदार को बुलाने के लिए कहा। नाथ जी ने जब उन्हें गाँधी जी के पास जाने के लिए कहा तो सरदार ने कहा—

"इस सम्बन्ध में अब मेरे भीतर वह पूज्यभाव नहीं रह गया है, इसलिए जाना फिजूल है।" तो भी वह गये। गाँधी जी ने हंसते हुए कहा, "क्या हो गया।" सरदार कितनी ही देर तक सुनते रहे और फिर कहा, "मैंने आप से बारडोली ही में कह दिया था कि मैं हिंसा और अहिंसा

नहीं जानता । जब तक आप पर मेरा विश्वास रहेगा तब तक साथ रहूंगा, नहीं तो अलग हो जाऊँगा । आप की बात से मैं समझ गया हूं कि आप मेरे जीवन का पूरा उपयोग नहीं कर सकते । अब मेरा विश्वास नहीं रह गया ।"

"मेरे पर नहीं, पर अहिंसा पर तो विश्वास कर सकते हो ।"

"अहिंसा को तो मैं कभी समझ नहीं पाया, फिर विश्वास कहाँ से करता । मैंने मार्क्सवाद की दृष्टि से अहिंसा को समझना चाहा था । राज्य (शासन-यंत्र) फ़ौज और पुलिस जैसी हिंसक शक्तियों पर अवलम्बित है । जब समाज में धनी-ग़रीब, शोषक शोषित नहीं रह जायेंगे तो यह हिंसा पर अवलम्बित शासन-यंत्र मुरझा और मर जायेगा । उस वक़्त समाज में पूर्ण रूपेण अहिंसा विराजमान होगी । उसी अहिंसा के अनुसार मैं भी आपको समझने की कोशिश करता रहा ।"

महात्मा जी ने बहुत समझाने की कोशिश की, फिर वर्धा में आकर बात-चीत करने के लिए कहा, मगर सरदार तैयार नहीं हुए ।

किशोर भाई मशरूवाला और दूसरे मित्रों ने भी वर्धा आने के लिए कई पत्र भेजे, लेकिन सरदार फिर अपने को वहाँ जाने के लिये राज़ी नहीं कर सके ।

———

अध्याय १६

पार्टी में काम और जेल में

रूसी क्रान्ति ने सरदार पृथ्वीसिंह के दिल पर पहले ही बहुत प्रभाव डाला था। करांची कांग्रेस में अपने पुराने साथियों से मिलकर सोवियत और कम्युनिज़्म की ओर उनका मन और भी आकृष्ट हुआ। सोवियत के निवास और अध्ययन काल में वह पूर्ण रूप से क़ायल हो गये थे कि भारत में क्रान्ति का यही एक रास्ता है। जितना उनका दिल क्रांति के आदर्श के लिये सब कुछ त्याग देने के लिए था, अब उनका मस्तिष्क भी उसी उत्साह के साथ उनको सहयोग देने लगा। वह जीवित कम्युनिज़्म और सक्रिय कम्युनिस्टों के सम्पर्क में आये थे और वह अपने दिल और दिमाग़ से पक्के कम्युनिस्ट बने थे। आत्म-समर्पण के समय तक भारत में वह एक कम्युनिस्ट की तरह काम करते रहे। बाद के चार सालों में यद्यपि उनके विचारों से कम्युनिज़्म का प्रभाव दूर नहीं हुआ, फिर भी वह ईमानदारी के साथ गांधी जी और उनकी कार्य-प्रणाली को समझना चाहते थे। वह समझते थे कि तरुणों के शरीर और मस्तिष्क को मज़बूत बनाना साम्यवाद के लिये उतना ही ज़रूरी है, जितना गांधी-वाद के लिये।

वह चाहते थे कि भारत से गुलामी और ग़रीबी दोनों दूर हों। वह गांधी जी को भी समझाने की कोशिश करते थे क्यों कि वह जानते थे कि गांधी जी भी देश की ग़रीबी को मिटाना चाहते हैं; किन्तु जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, आश्रम का वातावरण उनके अनुकूल नहीं था। वह आश्रम छोड़ आये।

पार्टी अब भी गैर-क़ानूनी थी। डाक्टर अधिकारी उस वक्त बम्बई में ही अन्तर्ध्यान थे। सरदार ने उनके पास उसी दिन सूचना भेज दी और दूसरे दिन काम मांगने के लिए पार्टी के पास आ गये। पूंजी-पतियों के दासों ने अख़बारों में तरह-तरह की अफवाहें फैलायीं और कहा कि गांधी जी ने ठीक न समझकर मलाड आश्रम को बन्द कर दिया। सरदार ने गांधी जी को लिखा कि आप खुद अपना बयान

दीजिये। महात्मा जी ने अपना बयान दिया और सरदार ने भी वक्तव्य दिया। दोनों वक्तव्य जून १९४२ के "हरिजन" के किसी अंक में पहले पृष्ठ पर छपे।

जब से जर्मनी ने सोवियत पर आक्रमण किया, तब से सरदार पृथ्वीसिंह ने हिन्दुस्तान के मजदूर और किसानों के भाग्य को सोवियत तथा तमाम दुनियां की फ़ासिस्ट-विरोधी जनता के भाग्य से नत्थी हुआ समझ लिया। उन्होंने कहा कि दुनियां की शोषित ग़रीब जनता का भविष्य फ़ासिस्टों की पराजय पर ही निर्भर करता है। इसलिए जर्मन-जपानी फ़ासिस्टों के नाश करने में जो भी शक्तियां लगी हुई हैं उनके काम में बाधा पहुंचाने को सरदार ने बुरा समझा। क्रिप्स के जाने के बाद जब संघर्ष और आन्दोलन की बात चलती तो वह समझाते कि राष्ट्रीय आन्दोलन और आज़ादी का रास्ता यह नहीं है। हमें राष्ट्रीय एकता करके राष्ट्रीय रक्षा के भार को अपने हाथ में लेना चाहिये। हमारी स्वतंत्रता का यही मार्ग है। १९४२ में वह सूरत, बड़ौदा, नड़ीयाद, अहमदाबाद, भावनगर, राजकोट, गुजरात और काठियावाड़ आदि के बहुत से शहरों में गये और शिक्षित जनता को इसी तरह समझाया।

अगस्त के पहले सप्ताह में आल इन्डिया कांग्रेस के वक्त वह बम्बई आना चाहते थे। लेकिन रास्ते में वर्षा के कारण रेल की लाइन टूट गयी जिससे उन्हें अहमदाबाद ही में रह जाना पड़ा।

९ अगस्त को जब वह बम्बई आये, तब गांधी जी गिरफ़्तार हो चुके थे।

१४ अगस्त को प्रसिद्ध कम्युनिस्ट और कांग्रेसी नेता डाक्टर अशरफ के साथ सरदार भी इन्दौर की फ़ासिस्ट-विरोधी कान्फ्रेन्स में शामिल हुए।

उसके बाद गोरिल्ला ट्रेनिङ्ग-कैम्प चलाने के लिए सरदार भावनगर गये। उनके मित्र और साथी इस काम में काफ़ी उत्साह दिलाते थे; किन्तु नौजवान क्रोध से पागल हो रहे थे। सरदार ने काफी समझाया लेकिन उन नौजवानों का जवाब था—एक नोटिस। इस नोटिस का शीर्षक था, "हृदय की मूर्ति का खंडन।"

सरदार के भावनगर पहुंचने के तीन-चार दिन बाद ही वहां के राष्ट्रीय नेता पकड़ लिये गये। विद्यार्थियों ने प्रदर्शन किया, पुलिस ने लाठी चलाई और तीन सौ के क़रीब व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया। सरदार अपने भावनगर में यह सब देखकर चुप नहीं रह सकते थे। वह पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट के पास गये और उनसे कहा कि गिरफ़्तारी और लाठी-प्रहार लोगों को और अधिक उत्तेजित करेगा। आप नौजवानों को छोड़ दें, उनकी जिम्मेवारी मैं लेता हूं। सुपरिन्टेण्डेण्ट पुलिस यह खूब जानता था कि नौजवानों पर सरदार का कितना असर है। उसने नौजवानों को छोड़ दिया। सरदार ने दूसरे दिन नागरिकों की सभा की और नेताओं को भी समझाया।

उन्होंने नागरिकों को समझाया था कि आप लोग नेताओं की रिहाई के लिए सरकार पर दबाव डालें, जिससे अपने यहां शांति क़ायम हो। मैं जेल के नेताओं को समझाऊँगा और आप लोग दीवान को समझायें। निश्चय हुआ कि सरदार भी नागरिकों के साथ दीवान के पास जाकर जेल में नेताओं को समझाने के लिए उनसे आज्ञा माँगें। लोग दीवान के पास गये। दीवान ने कहा, आप लोग जा सकते हैं, लेकिन मैं स्वामीराव को इजाजत नहीं दूंगा। नागरिकों ने कहा, यदि स्वामीराव साथ नहीं जाते तो हमारा जाना व्यर्थ है। दीवान को झक मारकर सरदार को भी जाने की इजाज़त देनी पड़ी। वह नेताओं से मिले और सारी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति को समझाते हुए कहा कि आप लोग महात्मा जी के रास्ते को छोड़ रहे हैं। किन्तु दुर्भाग्य से वे न माने और रियासत से समझौता नहीं हो सका।

गिरफ़्तारी और नज़रबन्दी

सरदार भावनगर में एक बड़ी व्यायामशाला स्थापित करने की योजना में लगे थे। लेकिन १० अक्टूबर की रात को दो बजे अंग्रेजी एजेन्सी और रियासत के पुलिस के १०० सिपाहियों और पाँच इन्स्पेक्टरों ने उनके निवास स्थान को घेर लिया और भारत रक्षा क़ानून के अनुसार गिरफ़्तार कर एक मोटर पर बैठा कर ले गये। एक मोटर आगे चली और एक पीछे। सरदार को एजेन्सी के थाने सोनागढ़ में ले गये। थाने से उन्हें राजकोट जेल भेजा गया। कांग्रेसी नेताओं से न मिलने देने के लिये

नेताओं को जेल से निकाल कर बाहर के एक बंगले में बन्द किया गया और सरदार को जेल में डाल दिया गया।

पहली जनवरी १९४३ को सरदार को रियासती जेल से निकाल कर यरवडा (पूना) जेल भेज दिया गया। कॉमरेड डांगे भी इस वक़्त वहीं नज़रबन्द थे, इसलिए २०-२५ दिन तक दोनों साथ रहे। सरदार के पकड़े जाने की बात सुनकर सबको आश्चर्य हुआ, लेकिन सरकार निरंकुश ही नहीं, निश्चेतन भी है और उसके यहाँ 'अंधेर नगरी नाटक' कहीं भी खेला जा सकता है।

सरदार की अब फिर जेल वाली जीवन-चर्या शुरू हो गयी। सबेरे सात बजे उठकर स्नान और व्यायाम, जलपान के बाद पढ़ना, साढ़े बारह बजे खाना और थोड़ा विश्राम, फिर पढ़ना या कोई खेल। शाम को साढ़े-छ बजे खाना और आठ बजे ताले के भीतर बन्द।

अध्याय १७

शादी और मुक्ति

सरदार के तीन भाई बरमा में रहते थे, यह हम बतला चुके हैं। जब जापानियों ने बरमा पर हमला किया और मोन्येवा पर बम बरसाये, तब लोग जान लेकर उधर-उधर भागने लगे। सरदार के भाई बरमासिंह अपनी पत्नी को लेकर मोन्येवा से भाग निकले और जापानी सैनिकों से लुटते, मनीपुर पहुंचे। वहां से यह पटना आये, वहां आकर बीमार पड़ गये। सरदार को मालूम हुआ तो उन्होंने उन्हें भगवाननगर बुला दिया। अभी भी वह निर्बल ही थे कि सरदार जेल भेज दिये गये। सितम्बर में बरमा सिंह की बीमारी ने भयंकर रूप धारण किया, चारों ओर से दबाव पड़ा। इस लिए २७ अक्टूबर १९४३ को सरदार एक महीने के लिए पेरोल पर छोड़ दिये गये। अस्पताल के डाक्टरों ने बड़ी मेहनत की और बरमा सिंह बच गये।

शादी

सरदार पृथ्वी सिंह बहुत, सुन्दर और तरुण जवान थे। परदे से मुक्त बरमा सुन्दरियों ने उन्हें अपने प्रेम-पाश में बांधना चाहा, मगर उस वक्त वह इस लिए बच गये कि उनके मन में राजपूती का बहुत बड़ा अभिमान था। उसके बाद देश-भक्ति ने उनके मन के ऊपर अपना जादू फेंका। फिर शादी करने की फुर्सत किसे थी। शादी के लिए जितना दबाव पड़ा था, जो प्रलोभन और आकर्षण सामने रक्खे गये थे—उनके बारे में कुछ लिखना पाठकों के लिए अवश्य ही मनोरंजन की चीज हो सकती है और साथ ही सरदार के दृढ़ मनोबल का उससे भी पता लग सकेगा; किन्तु उन घटनाओं को लिखकर हम इस पुस्तक का विस्तार नहीं करना चाहते। हाँ, सरदार के सामने जिस तरह के प्रलोभन और आकर्षण आये थे और जिस तरह वह उनसे बचते रहे उसी तरह की एक पुरानी कथा हम यहाँ कहते हैं।

• • • •

पुराने जमाने में एक राजा था। वह अपनी प्रजा से बहुत प्रेम करता था और प्रजा भी उस पर प्रेम रखती थी! इस प्रजा वत्सल राजा के ऊपर एक दूसरे जालिम राजा ने आक्रमण किया। राजा मारा गया, रानी सती हो गयी। जालिम राजा प्रजा की छाती पर कोदों दलने लगा। प्रजा कराहने लगी। प्रजा-वत्सल राजा का एक छोटा सा पुत्र था। परिचारिकों ने जान बचाने के लिए उसे दूर देश में भेज दिया था। कुमार धीरे-धीरे बढ़ कर सयाना हुआ। उसे अपने पिता के मारे जाने के बारे में मालूम हुआ, देशवासियों को जालिम राजा के नीचे कराहने की बात मालूम हुई। देश में भी उसकी जवानी और सौन्दर्य को देखकर कितनी ही सुन्दरियां मुग्ध थीं, लेकिन कुमार ने प्रतिज्ञा की थी—मुझे अपनी जन्म-भूमि को मुक्त कराना है और जो प्रेम-बन्धन मेरे कार्य में बाधक हो सकता है, उसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

जन्म भूमि को मुक्त कराने के लिए वह जगह-जगह भटकता रहा और उसी प्रयास में एक दिन भेष बदल कर अपने देश में पहुंच गया। वहाँ जंगल में च्यवन ऋषि का आश्रम था। वृद्ध ऋषि दया और करुणा की मूर्ति थे। किसी को भी दुःखी देख उनका दिल द्रवित हो जाता था। वह अजात-शत्रु थे, कोई उनसे दुश्मनी नहीं करता था। च्यवन ऋषि को यह देख कर बहुत दुःख होता था कि जालिम राजा के दुश्शासन के कारण प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है। कुमार उनके आश्रम में भेष बदल कर आया था, किन्तु ऋषि को असली बात मालूम हो गयी। ऋषि का अस्त्र-शस्त्र पर विश्वास नहीं था, तो भी कुमार को वह इसलिए स्नेह की दृष्टि से देखते थे कि वह अपने देश का उद्धार करना चाहता है। च्यवन ऋषि के आश्रम में आत्मिक शान्ति की खोज के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। हिरण्यकश्यप के वंश में भी प्रह्लाद पैदा हो सकते हैं, इसी तरह जालिम राजा के घर में एक कन्या पैदा हुई जिसका स्वभाव पिता से बिलकुल उलटा था, जो मानव सन्तानों तो क्या पशु-पक्षी का भी दुःख नहीं देख सकती थी। बच्चों को भूखे, लोगों को नंगे, गांवों को उजड़े देख कर उसका हृदय विह्वल हो जाता था। जब इन सब का कारण उसका पिता मालूम हुआ तो कुमारी का चित्त और भी खिन्न हो गया। क्रूर होने पर भी पिता अपनी इकलौती पुत्री पर बहुत स्नेह रखता था। कुमारी ने पिता को समझाने की बहुत कोशिश की

लेकिन उसका कोई असर नहीं हुआ, वह बराबर उदास रहने लगी। किसी दिन च्यवन ऋषि की ख्याति अन्तःपुर तक पहुंची। कुमारी के रूप और गुण को देखकर कितने ही राजकुमार उसे अपनी पटरानी बनाना चाहते थे, मगर कुमारी इस अन्याय पूर्ण दुनियां से ऊब गयी थी और उसने आजन्म कुमारी रहने की प्रतिज्ञा की। च्यवन ऋषि के बारे में जानकर वह एक दिन महल छोड़कर आश्रम में चली गयी। यहाँ उसे आत्मिक शान्ति मिली, यद्यपि जब तब लोगों के कष्ट को सुनकर उसका चित्त विह्वल हो जाता।

गोधूलि की बेला थी। गायें जंगल की ओर से गांव को लौट रही थीं। उस दिन संयोग से कुमारी के साथ कुमार भी टहलने गया हुआ था। कुमारी आगे-आगे और कुमार पीछे-पीछे। एक बड़ी सींगोंवाला वृषभ आगे से दौड़ा आ रहा था। कुमार को शंका हुई और उसके स्वाभाविक दाक्षिण्य ने जोश मारा, पल मारते ही उसने कुमारी को पीछे खींचकर अपने को आगे कर दिया और बैल की सींग पकड़ दूसरी ओर ढकेल दिया। कुमारी थोड़ी देर तक गम्भीर चिन्तन में पड़ गयी, फिर उसने कहा "कुमार' स्त्री होते हुए भी मैंने आज तक कभी किसी पुरुष से रक्षित होने की इच्छा नहीं की और न यही पसन्द किया कि पुरुष मुझे कमजोर समझे और मदद करने के लिए अपनी बाँहों को मेरी ओर फैलाये। आज तुमने यह क्या किया?" कुमार यह कैसे बतलाता कि उसके दाक्षिण्य ने उसे बिना सोचे ऐसा करने के लिए मजबूर किया। उस दिन से कुमारी का कुमार के प्रति स्नेह बहुत बढ़ गया, लेकिन वह स्नेह था भाई-बहिन का स्नेह। वह उसे "मेरे प्यारे कुमार" कहकर संबोधित करती और कुमार भी "मेरी प्यारी बहिन" कहकर। कुमारी को बराबर च्यवन आश्रम में रहना पड़ता, लेकिन कुमार तो जन्म-भूमि को मुक्त करने लिए फांड बांधे हुये था। कुमारी उसे बराबर पत्र भेजा करती, जिसमें कभी "तुम्हारी" और कभी "सप्रेम तुम्हारी" लिखती। कुमार भी उसी तरह से अपना भाई का प्रेम प्रकट करता। कुमारी का वह साधारण स्नेह धीरे-धीरे उसी तरह प्रेम के रूप में परिणित हो गया कि वह उसे जान भी न पाई। वह कुमार को अपने समीप से समीपतम बनाना चाहती थी और इसी प्रयत्न ने उसे कहाँ से कहाँ पहुंचा दिया। कुमारी किस तरह देर तक दूर रहने पर अधीर हो

आती, किस तरह वह चिट्ठियों की प्रतीक्षा करती। इसे यदि आधुनिक चिट्ठी-पत्री के ढंग पर लिखा जाये तो वह कुछ इस प्रकार से आयेगा :—

"मेरे प्यारे भाई,

सप्ताह पूरा हो गया और तुम्हारे आने की जगह सिर्फ़ एक पत्र आया ··मैं इससे अधिक और नहीं कहूंगी—कि बहुत देर तक बाहर न रहो। मेरी कुटिया आधी से अधिक तैयार हो गयी .वहाँ तुम्हारे लिए एक कोना रहेगा। मैं इसका जिम्मा लेती हूँ कि जब तुम शान्ति चाहोगे तो कोई तुम्हे बाधा नहीं डालेगा..."

° ° °

"मेरे प्यारे भाई,

मुझे तुम्हारे पत्र से यह जानकर अत्यन्त खुशी हुई कि तुमने महर्षि के चरणों में बैठने का निश्चय किया है। भगवान अवश्य ही इसके लिये तुम्हें आशीर्वाद देंगे और यदि एक बहिन की प्रार्थना का उपयोग हो सकता है तो वह भी हाजिर है "

अब कुमारी के स्नेह ने नया रूप धारण किया। तब उसने लिखना शुरू किया :—

"प्रियतम कुमार,

······ भगवान ने इतने वर्षों के अस्पष्ट दर्द को एक जलती ज्वाला में परिणत कर दिया, लेकिन सबसे भारी अन्तर यह है कि अब मैं यह जानती हूँ कि क्यों यह दर्द और क्यों यह ज्वाला।

"आखिर मैंने तुम्हें पा लिया। यह जानकर अब मैं कमर बाँधकर खड़ी हो सकती हूँ और अपने सारे हृदय और आत्मा से काम में जुट सकती हूँ, जिसमें कि मैं उस आदर्श और उस आदर्श-सेवक के अधिक योग्य बन सकूं।"

"अपने हृदय की उदारता से मेरी निर्बलताओं और दुर्विचारों के लिए क्षमा करना। मैं उन्हें हटाने के लिए पूरी कोशिश करूंगी। मेरी यही प्रार्थना है कि भगवान की कृपा से मैं कभी बाधक न होऊँ और किस तरह तुम्हारे आदर्श की सेवा हो, इसे जान सकूं। भगवान तुम्हें प्रसन्न रक्खे। अब और सदा तुम्हारी।"

° ° °

"प्रियतम कुमार,

...भगवान मुझे बल और समझ दे रहा है और मेरे दर्द को आनन्द—गंभीर आनन्द—में परिणित कर रहा है......

......सो हम यहाँ हैं ! इस बोझ से घबड़ाओ नहीं ! मुझे अपने आदर्श की प्राप्ति के साधनों में से एक समझो ।

......मेरी कार्य क्षमता का जितना उपयोग हो सकता था, उसे कभी पूरा प्रयोग में नहीं लाया गया, क्योंकि वह क्षमता तब तक मूर्छित थी, जब तक कि तुमने आकर जगाया नहीं । सदा तुम्हारी..... "

० ० ०

"मेरे प्यारे कुमार, अत्यन्त प्यारे भाई,

तुम्हारा अनमोल पत्र आया । पाते ही मैं तुरन्त सीधे महर्षि के चरणों में गयी । वह अकेले थे । मैंने उसे उन्हें दे दिया । उन्होंने उसे सब पढ़ा फिर मेरी ओर देखते बोले, 'यह बहुत ही अच्छा पत्र है ।'

मुझे यह आशा करने का भी साहस नहीं होता कि तुम जवाब दोगे—बल्कि मुझे यह डर रहा है कि मैंने तुम्हें नाखुश किया है...... आज ही सबेरे जब मैं अकेले पहाड़ पर विचर रही थी, तो मेरे हृदय की वेदना ने मेरी आँखों में आँसू भर दिये । लेकिन अब तुम्हारा पत्र मेरे पास है और मैं समझती हूँ कि मेरा भाई मुझसे छीना नहीं जायेगा, बल्कि सदा मेरी बगल में रहेगा ।..... "

"महर्षि सब जानते हैं और वह हमें रास्ता दिखलायेंगे । कल मैं अकेली उनके साथ टहल रही थी और तुम्हारे बारे में उनसे बात कर रही थी । महर्षि के आशीर्वाद से दिन पर दिन सच्चा मार्ग हम लोगों के सामने खुलता जायेगा । .... "

० ० ०

"अत्यन्त प्यारे भाई,

यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि तुम जल्दी आ रहे हो ।

अब मैं अपनी कुटिया में हूँ, कुछ दिन के ही लिये । मैंने महर्षि से कह दिया है कि कुटिया उनकी—मेरे भाई की है और जब मैं काम करने बाहर जाऊंगी तो वह इसे ले लेंगे......"

सदा तुम्हारी प्यारी बहिन ..... ।

सरदार पृथ्वीसिंह और श्रीमती प्रभावती पृथ्वीसिंह
[विवाह के बाद—दिसम्बर १९४३]

सरदार पृथ्वीसिंह का पुत्र अजीत

"अत्यन्त प्यारे भाई,

····· क्यों मैं इस भू भाग को ज़्यादा पसन्द करती थी, इसे तब जाना जब कि मैंने तुम्हारे भीतर अपना जीवन पाया।

····· सप्रेम सदा तुम्हारी····· "

"मेरे प्यारे भाई कुमार,

···· मत कहो कि मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया। मेरे साथ अन्याय की कोई बात नहीं, किन्तु तुम्हें अपने साथ अन्याय नहीं करना चाहिये, वह मुझे बहुत पीड़ा देगा। भगवान ने तुम्हें शुद्धतम सोने में ढाला है और मेरे लिये असह्य होगा यदि कोई चीज़ उसे धूमिल कर दे। अपने लिये सच्चे बनो और मुझ पर अपने ही अस्तित्व के एक अंश के तौर पर विश्वास करो। मैं कभी यह सुनना नहीं चाहूँगी कि तुम अपनी आत्मा को हानि पहुँचाना चाहते हो—मैं जानती हूँ कि तुम इन सभी कठोर अभिलाषाओं से बिलकुल अपरिचित थे। तुम अच्छा ही अच्छा समझ रहे थे—और सो ही मैं भी समझ रही थी—लेकिन किसी फेर से सभी बातें उल्टी हो गयीं और मैंने उसे अपने हृदय और रक्त को देकर पूरा सहा ···· "

° ° °

"प्रियतम साथी,

··· जब तुम पिछले महीने यहाँ से गये तो मै कई दिनों तक सोचती रही, उसके बाद मुझे अपना रास्ता इस तरह साफ दिखलाई दिया—मुझे अब तपस्या के सारे वाह्य चिन्हों को छोड़ देना चाहिए और अपनी सारी शक्ति के साथ जन सेवा के लिए प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन यदि मैं इसमें सफल होना चाहती हूँ तो मुझे अपने स्वभाव के अनुसार काम करने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए। सालों पहले जब मै महर्षि के चरणों में आयी तो मैंने अपने को उनके हाथों में सौंप दिया और उन्होंने अपने पूर्ण वात्सल्य के साथ मुझपर पूरे तौर से अधिकार कर लिया, सिर्फ़ मेरे कामों पर नहीं बल्कि मेरे विचारों और चिन्तनों के ऊपर भी। यह ज़बरदस्त अनुशासन और शिक्षण, जिससे मैंने बहुत पाया, लेकिन इसने मेरे आत्म विश्वास और स्वरूप प्रकाश को ख़त्म भी कर दिया। मैं किसी काम को स्वतंत्र और निरंतर करने लायक नहीं रह गयी। महर्षि के पास आने से पहले मुझ में आत्म विश्वास था, उद्योग शीलता थी

और स्वतंत्र शक्ति थी। मैं उन सबको खो बैठी। सिर्फ़ इस वक़्त जब कि तुम मेरे जीवन में आये, मेरी स्वाभाविक शक्ति जाग उठी।"

"......एक ही तरह की प्रेरणा ने हम दोनों को घर से निकालकर अज्ञात दिशा की ओर फेंक दिया—जन्मभूमि की स्वतंत्रता का वही एक आदर्श आज हमारे हृदयों में भरा हुआ है। हमारे विचारों में सिर्फ़ यही एक अन्तर है, कि मैं अपने सम्पूर्ण हृदय और आत्मा से विश्वास करती हूँ कि हम दोनों के एक हो जाने ही में हमारी शक्तियों का पूर्ण तौर से उपयोग हो सकता है और तुम इससे भिन्न सोचते हो। जब तक तुम इस तरह समझते हो मैं बिना बहस के तुम्हारी इच्छा को स्वीकार करूंगी।" तुम्हारी सदा.........

कुमार को मालूम हो गया था कि यह उसी जालिम राजा की पुत्री है, जिसके दुःशासन से लोगों को मुक्त करने का उसने बीड़ा उठाया है। वह जानता था कि कुमारी साधारण स्त्री नहीं है, उसका हृदय परम शुद्ध है और वह चाहती है उनके काम में दिल से सहायता करना। लेकिन कुमार को यह भी विश्वास था कि जिस काम को वह करने जा रहा है, वह च्यवन आश्रम से पूरा नहीं हो सकता है और कुमारी के लिये च्यवन-आश्रम ही सब कुछ रह गया था।

कुमारी जितनी ही आशा लगाये कुमार के नजदीक आती थी, कुमार उसे उतना ही दूर दिखलायी पड़ता। जब उसके इष्ट-मित्र समझाना चाहते, तो वह कहती मैं जन्म-जन्मान्तर से उनकी रही हूं। इस बार भेंट तो हुई, मेरे हृदय ने अपने प्रियतम को पहिचान लिया, लेकिनप्रियतम मुझे भूल गये हैं। मेरा पुराना पाप या कोई श्राप है। इसके लिये मुझे प्रायश्चित करना होगा। एक बार कुमारी ने प्राण देने को ठान लिया। ऋषि और आश्रमवासी सभी चिन्तित हो गये। कुमार को बुलाया गया—ऋषि ने अपना फ़र्ज समझा कि कुमारी की प्राण रक्षा के लिये कुमार पर जोर दिया जाय। कुमार आये, लेकिन उनका एक ही जवाब था; मैं सिर्फ़ बहिन ही के तौर पर उसे ग्रहण कर सकता हूँ। कुमारी ने आत्महत्या को प्रियतम के लिये कष्टप्रद समझा उसका ख़याल छोड़ दिया, लेकिन वह भूले प्रियतम की स्मृति जगाने के लिए अपनी साधना में लगी रही।

कुमार से किसी ने कहा कि कुमारी उनके वियोग में सूख कर कांटा हो गयी है तो इसका उन्हें बहुत अफ़सोस हुआ। च्यवन ऋषि

ने कुमार को समझाया, "कुमारी के बारे में दुःख मानने की आवश्यकता नहीं है। वह तो मानती है कि पूर्वजन्म में तुम्हारे साथ वही सम्बन्ध था और भविष्य में भी वह रहेगा। इस जन्म में तुमको विस्मृत हुई है इसका उसे दुख है और सुख भी। इसे भी कुमारी ने आध्यात्मिक वस्तु बना रखा है और तपस्या करती है, पुराण पढ़ती है। ..."

कुमार ने एक बार कुमारी को समझाने की चेष्टा करते हुए लिखा—

"मेरी प्यारी बहिन,

..... इन तूफ़ानी दिनों में हर एक जन्म भूमि से प्यार करने वाले व्यक्ति का फ़र्ज़ है कि सब ओर से मन खींच कर सिर्फ़ देश की स्वतन्त्रता के लिए काम करे। जिस जीवन भर के स्वप्न के लिए मैं जिया और भीषण कष्ट उठाता रहा, उस स्वप्न को पूरा करने के सिवाय और किसी ख्याल को मैं अपने दिमाग़ में नहीं आने देना चाहता। देश की नाजुक अवस्था को क्या तुम नहीं देख रही हो ? अपनी जनता की सेवा को छोड़कर कैसे कोई दूसरा विचार तुम्हारे मन में आया और उसने तुम्हें पागल बनाया । कुमारी, प्रभु ने बहुत से गुण दिये हैं। स्वार्थी न बनो।"

इसी पुरानी कथा की तरह के प्रलोभन सरदार के जीवन में भी आये थे।

सरदार पेरोल के दिनों यरवदा से सीधे भावनगर चले गये। इधर वह कितने ही दिनों से सोच रहे थे कि अब समय आ गया है, जब कि हमारे काम के लिए विवाह बाधक नहीं साधक बनेगा। वह समझते थे कि अब वह जिस राजनीति में नंगे बदन हो कर पड़ रहे हैं, उसमें उनके वर्ग-शत्रु उनके विरुद्ध कोई भी हथियार उठा न रक्खेंगे। जब जेल जाने से पहिले वह भावनगर गये थे तब उनके एक मित्र परिवार की लड़की कुमारी प्रभापती चन्द्र शंकर दूबे अपने देश सेवा के काम के लिए सरदार से सलाह पूछने आयी। सरदार का प्रिय विषय था व्यायाम। उन्होंने कहा—

"तुम्हें स्त्रियों में व्यायाम का प्रचार करना चहिए।" लेकिन प्रभावती को अब तक साहित्य का शौक ज़्यादा था। दो घण्टे की बात चीत के बाद उन्होंने व्यायाम के उपयोग को समझा। वह कर्वे महिला विद्यालय की बी. ए. थीं। भावनगर राज्य ने ऐसी योग्य लड़की के लिए छात्रवृत्ति देना मंजूर किया और वह बम्बई के पास कांदेवली

के सरकारी शिक्षणालय में दाखिल हो गयीं। जेल में भी प्रभावती के पत्र सरदार के पास आते थे। उनसे स्नेह टपकता था। सरदार भी दोनों की समान धर्मिता को समझते थे। पेरोल पर जाते वक्त वह कांदेवली होते हुए भावनगर गये थे, उसी वक्त विद्यार्थी द्वारा संदेश भेज दिया था। भावनगर में प्रभावती ने आने के लिए पत्र भेजा। सरदार ने तार दे दिया। प्रभावती आ गयी। सरदार न साधारण तरह की शादी करना चाहते थे और न प्रेम के लिए लम्बे-चौड़े ताने-बाने की ज़रूरत समझते थे। उन्होंने सीधे सवाल किया—"तुम्हारे पत्रों में प्रेम की गन्ध आ रही थी, क्या यह सच है ?" "गन्ध पढ़ने में रही होगी"—कह कर प्रभावती चुप रही। सरदार ने कहा कि शादी करने के लिए मैं तै कर चुका हूं किन्तु तभी जब मेरे साथी आज्ञा दें। तुम भी अपने सम्बन्धियों से पूछ लो।

दुबे ब्राह्मण क्यों ऐसे विवाह के लिए सहमत होने लगे। सरदार बम्बई आये। पूरन चन्द्र जोशी ने शादी कर लेने की सम्मति दी। २७ नवम्बर १९४३ को जेल से लौटने की तारीख़ थी, उस दिन ब्याह की रजिस्ट्री करने का दिन निश्चित किया गया और साथ ही सरकार को पेरोल बढ़ाने के लिए लिखा गया। पेरोल एक महीने का और बढ़ गया। पंजाब सरकार ने भी जन्म भूमि देखने के लिए १५ दिन की इजाज़त दी और एक युग के बाद वह अपनी पत्नी के साथ लालडू गये। सरकार ने फिर दो महीने पेरोल के बढ़ाये और अन्त में फरवरी १९४४ को उन्हें छोड़ दिया।

आज सरदार पृथ्वीसिंह फिर उसी तरह तत्परता से देश के लिए काम कर रहे हैं। कभी आन्ध्र के किसान उस मूर्ति को साक्षात् देखते और उसके भाषणों को सुनते हैं, जिसके बारे में सैकड़ों कथाएँ आन्ध्र में मशहूर हैं। कभी वह गुजरात के अपने पुराने दोस्तों में जाते हैं और बंगाल की सहायता के लिए उन्हें दिल खोलकर रुपया देने के लिए कहते हैं। आज भी उनका शरीर उतना ही स्वस्थ और बलिष्ठ है, आज भी उनकी हिम्मत उतनी ही दृढ़ है और आज उनके बहुत से वे साथी और मित्र जो अगस्त १९४२ के दिनों में उनकी बात तक सुनने से इंकार करते थे, उनकी बात को समझने लगे हैं।

परिशिष्ट

१९४५ में गांधी जी और दूसरे कांग्रेसी नेता जेल से छूटे थे। गांधी जी बम्बई में बिड़लाभवन में ठहरे थे। सरोजनी देवी पहरे पर थीं। सरदार महात्मा जी से मिलने गये। सरोजिनी जी ने कहा—आपके लिए पहरा थोड़े ही है। मीरा बहिन, कन्नूभाई और दूसरे भक्त भी वहाँ मौजूद थे, उन्होंने सरदार से कहा—स्वार्थियों ने बापू को घेर रक्खा है। आश्रमवासी बापू के आदर्श से बहुत पतित हो चुके हैं, जो आश्रम कभी सारे भारत का हृदय-केन्द्र बनकर सब का संचालन कर रहा था, अब वह बिगड़ चुका है, यदि आप आकर उसे संभाल लें तो उसके सुधरने की आशा है। महात्मा जी के सामने फिर इसकी चर्चा हुई, उन्होंने कहा—हाँ आश्रम में आ जाओ, यह बड़ी अच्छी बात होगी, उनके जोर देने पर सरदार ने कहा—"आश्रम में आने में मुझे बड़ी खुशी होगी, पर अब तो मैं अपने मन से नहीं आ सकता, मुझे (कम्युनिस्ट) पार्टी से आज्ञा लेनी होगी और उसके ही अनुशासन में रहना होगा, मैं आपके प्रति अपार सम्मान रखते हुए भी आपका शिष्य या भगत नहीं हूं।" गांधी जी ने कहा—"सो कैसे हो सकता है, पहिले ही जैसे भावों के साथ आश्रम में आ जाओ।" सरदार उसके लिये तैयार नहीं हो सकते थे।

° • •

अभी तक जिस नीति के अपनाने के कारण कांग्रेसी देश-भक्त गालियां देते थे, उसी नीति को अब गांधी जी ने अपनाया था, इसलिए अपनी और अपनी पार्टी की स्थिति साफ करने के लिए सरदार ने गाँधी जी को १९४५ में निम्न पत्र लिखा—

महात्मा जी,

प्रणाम,

काफी अरसा बीत चुका है, मैंने आपकी सेवा में कोई पत्र नहीं लिखा और न ही अब आपके साथ मुलाक़ात करने की कोशिश की है। लेकिन आज कई नाजुक हालतों ने मुझे मजबूर किया है, इसलिए पत्र लिख रहा हूँ। अगर आप नज़दीक होते तो शायद मिलने की कोशिश भी करता।

आपके दिमाग़ पर हमेशा एक प्रकार का बोझा है, इसे मैं जानता हूँ। इस समय कई जटिल समस्याएँ आपके सामने खड़ी हैं, आपकी शारीरिक हालत भी अब पहले जैसी नहीं रही, इन सब बातों को जानते हुए भी मैं यह पत्र लिख रहा हूँ, क्यों कि मेरा मन काफ़ी आकुल है, मैं इस पत्र को लिखकर अपने मन की आकुलता को दूर करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे। यदि समय हो तो इस पत्र को पढ़ियेगा और उचित लगे तो जवाब दीजियेगा।

देश में एक अजब प्रकार की बेचैनी फैली हुई है। राजकीय दृष्टि से जाग्रत जनता अनेक हिस्सों में विभक्त हो पड़ी है। चारों ओर अविश्वास का वातावरण फैला है। हर एक पक्ष (दल) यह समझने लगा है कि दूसरा पक्ष हमें हड़पने के लिए तैयार खड़ा है। सभी पारस्परिक विश्वास को खो बैठा है। यह सत्य हक़ीक़त सबको साफ़ नज़र आ रही है कि इसकी तरफ़ आंखें बन्द करके बैठा नहीं जा सकता। जिस कांग्रेस को सबल और लोकप्रिय बनाने में लाखों ने अनेक प्रकार के बलिदान दिये, उसी कांग्रेस का विश्वास आज दूसरी सबल और लोकप्रिय संस्थाओं पर क्यों नहीं रहा ? और उनका भी विश्वास कांग्रेस पर नहीं रहा, इस हकीकत से इनकार करना अकलमन्दी नहीं है।

कांग्रेस में ऐसे जोशीले और जवाब देह कार्यकर्ता कम नहीं हैं, जो यह मानते हैं और तोड़फोड़ में हिस्सा लेने वालों की संख्या और चुनावों के आंकड़ों को पेश करके सिद्ध करना चाहते हैं कि कांग्रेस पहिले की निस्बत ज्यादा बलवान बनी है। लेकिन यह हकीकत नहीं है। क्या आज कांग्रेस का मजदूरों पर वैसा ही काबू है जैसा कि कभी था ? साफ देखने में आ सकता है जो मज़दूर व्यवस्थित रीति से संघटित है, उनकी बड़ी भारी शक्ति आज कांग्रेस के हाथ में नहीं है। किसानों का भी यही हाल है। विद्यार्थी-जगत भी आज दो हिस्सों में बंट गया है। हिन्दुओं का बहुत-सा हिस्सा आज हिन्दू सभा की तरफ अपना झुकाव दिखला रहा है। लीग का मुसलमानों में क्या स्थान है, इसे तो एक बाहोश आदमी जो रोजे रोशनी की तरह देख सकता है। इन सब बातों के बारे में क़ांग्रेस के ख़ास-ख़ास नेताओं ने जो रवैया अख़्तियार किया है, वह बहुत सी उलझनें पैदा करके रहेगा।

सैंकड़ों देश-प्रेमी वर्षों से बड़ी जाँफिशानी (त्याग) के साथ

मजदूरों को संगठित करने में अपना समस्त जीवन लगाते आ रहे हैं, जिसके कारण उन्होंने मजदूर समाज में आदर और मान प्राप्त किया है। उनकी इस मेहनत द्वारा जो मजदूर सचेत और संगठित बने हैं, उन पर कांग्रेस नेता अपना काबू जमाना चाहते हैं—उनके माननीय नेताओं के द्वारा नहीं, केवल अपनी युक्तियों और प्रति-युक्तियों के बल से। यही बात किसानों और विद्यार्थियों, अछूतों और मुसलमानों के बारे में है।

इन सब संघटित जमातों के बल का उपयोग उनके नेताओं का हार्दिक सहकार लेकर ही किया जा सकता है। लेकिन, प्रयास इससे उलटा हो रहा है जिसका परिणाम देश के लिए घातक होगा, क्योंकि इससे एक संघटित और सचेत शक्ति को बरबाद करने के सिवा और कोई फल नहीं होगा।

काँग्रेस एक पक्ष या दल नहीं है। पर, आज उसे यह रूप दिया जा रहा है। सब दलों और पक्षों को मिटा कर उसे बलवान बनाने का जबरदस्त प्रयास हो रहा है। इसका परिणाम यही होगा कि कांग्रेस की समस्त शक्ति अनेक पक्षों और दलों की शक्ति को तोड़ने में बरबाद होगी।

कुछ कांग्रेसी नेताओं में हिटलर (या रूस) की नकल करने की बू समायी है। वे उसकी कार्य-पद्धति को अंगीकार करना चाहते हैं। लेकिन यह बात भूल जाते हैं कि दोनों के काम का ढंग जुदा-जुदा हालतों में जुदा-जुदा रहा है। एक ने अपनी योजना के अनुसार उच्च और मध्यम वर्ग की अल्प लेकिन संगठित शक्ति के बल से सारे देश की शक्तिपर काबू जमाकर दुनियाँ भर में छा जाने का जबर्दस्त प्रयास किया, दूसरे ने समस्त देश की मेहनतकश जनता का उनके नेताओं द्वारा सहकार लेकर एक योजना बनायी और उसके बल का उपयोग अपने देश को सुरक्षित करके आगे बढ़ाने में किया। जुदा-जुदा रीति से जो प्रयास किया गया, उसका परिणाम देख रहे हैं।

देश को प्रगति की तरफ ले जाने के लिए हमारे सामने एक ही मार्ग है। देश भर की समस्त जागृत और संघटित शक्ति को सबके सहकार के बल से संघटित करने का प्रयास ही एक सुन्दर प्रयास होगा। इस प्रकार का प्रयास हमें सफलता के मार्ग पर ले जा सकेगा जुदी-जुदी संघटित शक्तियों को तोड़कर एक महान संघटन पैदा करने का प्रयास घातक साबित होगा।

कांग्रेस का कार्य आज तक किसी योजना के आधार पर नहीं चलाया गया। लेकिन आज कांग्रेस के अनेक नेता अपनी-अपनी योजना पेश कर रहे हैं। वह इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि योजना के बिना कार्य-सिद्धि न होगी। जेल की चहार दीवारी के भीतर बहुतों को निश्चित समय मिला, बहुतों ने इसका काफी लाभ उठाया। बहुत से दिमागों ने योजनाएं गढ़ीं। आज वह योजनाएं देश के सामने पेश हो रही हैं। इन योजनाओं के द्वारा वह देश की समस्त शक्ति पर काबू कर आगे बढ़ना चाहते हैं। इस बात को नजर-अन्दाज़ किया जाता है कि राष्ट्र के निर्माण करने की योजना का गढ़ना एक आदमी का काम नहीं, चाहे उसका दिमाग कितना उर्वर क्यों न हो। राष्ट्र के निर्माण करने की योजना राष्ट्र के उन हज़ारों कार्यकर्ताओं की सहायता से ही बननी चाहिये, जिन्होंने अपना समस्त जीवन राष्ट्र के निर्माण करने में लगाया है। रूसी जनता के नेताओं ने अपने राष्ट्र का निर्माण करने के लिए जब योजना तैयार की, तो राष्ट्र के समस्त कार्यकर्ताओं की सहायता से उसे तैयार करने में पांच साल लगे।

पिछले २५ सालों में देश भर में आपने एक प्रचण्ड शक्ति को जाग्रत किया है, लेकिन अब जब आपने परीक्षा ली, (तो) उसका क्या परिणाम पाया? १९२२ में आपको मालूम हो गया कि जिस शक्ति को जगाया गया है, उसे अपने काबू में रखकर उससे काम लेना आसान नहीं है। हजारों कार्यकर्ताओं को जेल जाना पड़ा, उन्हें अपनी शक्ति का परिचय देना पड़ा। अंग्रेजों को साफ मालूम हो गया कि इनमें वह ताक़त नहीं है, जो कि क्रान्तिकारियों में होनी चाहिए। १९३१ से १९३३ तक जो आन्दोलन आपने चलाया, उससे भी आपको मालूम हो गया कि जाग्रत जनता में किस-किस प्रकार की कमजोरियाँ होती हैं।

१९३७ में जबकि १९३५ के विधान को अमल में लाने का निश्चय किया, तो आपको साफ मालूम हो गया कि जिन देशभक्तों में जेलों में जाने और फांसी के रस्सों पर लटकने के सिवा और कोई मोह नहीं था, सत्ता हाथ में आते ही वह भी मोह वश हो गये और उन्होंने अपनी मनोदशा का कैसा परिचय दिया है।

१९४१ में आपने व्यक्तिगत सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू किया।

उस समय भी आपने अच्छी तरह देखा कि चन्द व्यक्तियों को छोड़ सत्याग्रहियों में कैसे अनमोल रत्न भरे पड़े हैं ।

१९४२ में जो महा आन्दोलन आपने चलाया और देश की जनता के सामने एक महान प्रोग्राम रक्खा, उस समय सारे जगत के सामने बड़ी भद्दी रीति से इस बात का प्रदर्शन हुआ कि देश की जनता के सामने कोई योजना नहीं और न ही योजना को अमल में लाने के लिए पूर्व तैयारी या अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि है ।

१९४२ में हुकूमत के सामने आपने जंग छेड़ी, पर योजना नहीं, पूर्व तैयारी नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि नहीं, दूसरे आज़ाद और गुलाम देशों की प्रजा क्या कर रही है, इसका ज़रा भी ख्याल नहीं । हिन्दू-मुस्लिम एकता की तरफ से आप निराश और दुखी होते हैं, आप यह निश्चय नहीं कर पाते कि वस्तुतः इस समस्या का समाधान क्या है ।

१९४४ में आप जेल के बाहर आते हैं । देसाई-लियाकत के मसौदे को आप का आशीर्वाद मिलता है । आपके सहयोगी मित्र भी जेल से बाहर आते हैं ।

१९४५ में, जबकि जर्मनी हार चुका है और जापान दुम दबा कर भाग रहा है, उस शिमला शैल पर से उसी विदेशी राष्ट्र के साथ मित्रता का रिश्ता जोड़ते हैं, जिसे उखाड़ फेंकना आपके जीवन का आखिरी मक़सद था । तीन साल के अरसे में कितना जबर्दस्त हेर-फेर दुश्मन दोस्त के रूप में नज़र आता है । उसके साथ मेल हो ही नहीं सकता, यह आपका निश्चित मत था, पर उसी के साथ फिर से मेल करने की तदबीरें आप सोचने लगते हैं और कोशिश करके मिलते हैं । जिनकी शक्ति को आप और आपके मित्र कोई महत्व नहीं देते थे, उनकी हस्ती मिटाने के लिए आप के सहयोगी मित्र अपनी तमाम शक्ति को उपयोग में ला रहे हैं ।

मैंने आपको बहुत नज़दीक और बारीकी से देखने की कोशिश की है । दो महान सद्गुण मैंने आप में देखे हैं—आप में दूसरों की शक्ति और गुणों को अच्छी तरह आसानी के साथ देख लेने की शक्ति है और अपनी कमज़ोरियों और भूलों को भी ।

१९४५ के आपके रवैये से साफ मालूम पड़ता है, कि १९४२ में भूलें आपने की हैं, अब उनको आपने समझ लिया है । आप के कार्य

में लोगों को पता चल गया है कि आपने अपनी भूलों को सुधारा है। लेकिन आपके शब्दों द्वारा अभी तक लोगों को यह मालूम नहीं हुआ। वह अभी तक अचम्भे में पड़े, कुछ समझ नहीं पाते। अभी तक लोगों के सामने यही कहा जाता है कि ८ अगस्त १९४२ के प्रस्ताव ब्रह्मा के हाथों से लिखे अक्षर के समान हैं। उनमें से एक मात्रा नहीं हटायी जा सकती। प्रस्ताव का उपयोग तो यही होता है कि जो भाव उसमें प्रदर्शित किये गये हैं, उन्हें अमली जामा पहनाया जाय। इस पर यह स्वाभाविक सवाल उठता है—क्या ८ अगस्त १९४२ के प्रस्ताव के अमली जामा पहनाने के लिए आप और आपके सहयोगी मित्र २५ जुलाई १९४५ को शिमला शैल पर जमा हुए थे ? देश की जाग्रत जनता इसके बारे में साफ तौर पर जानना चाहती है।

मैं तो यह साफ बात समझता हूं कि आपने अपनी भूलों को समझ लिया है। आप जो कुछ कर रहे हैं, उसे करने में आपने जबर्दस्त नैतिक हिम्मत दिखलायी है, किसी बात का ख्याल किये बिना आपने देश को गिरी हुई हालत से उठाने के लिए एक महान प्रयास किया है। इसके लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं।

१९४२ के आंदोलन के कारण जो अवस्था देश में पैदा हुई, अब मैं उसकी तरफ आपका ध्यान खींचने की कोशिश करता हूं। देश की भूखी और पीड़ित जनता आज बड़ी तंगहाली से गुजर रही है। पांच साल तक वह अपनी रगों का खून बहा कर जीवित रही। अब ऐसी हालत पैदा हो गयी कि यह तभी तक जीवित रह सकती है, जब तक कि उसकी रगों का खून बिल्कुल सूख नहीं जाता, ऐसी अवस्था में यह शोचनीय बात दीख रही है कि जनता के बहुत से माननीय तारनहार अपनी नीच मनोदशा का प्रदर्शन रहे हैं, उनकी तंगदिली, स्वार्थपरता और राजनीतिक भूलों के कारण देश में अविश्वास का वातावरण छा गया है। कांग्रेस के नेता सब दलों और पक्षों की सारी शक्ति को तोड़ कर सारे देश पर छा जाना चाहते हैं। इस पर छोटे-मोटे सभी दल और पक्ष अपनी रक्षा के लिए अपनी शक्ति को काम में ला रहे हैं। हो सकता है, कांग्रेस के नेता अपने मनोरथ में कामयाब हो जायें। इसका दूसरा नतीजा चाहे कुछ क्यों न हो, पर एक तो यह जरूर ही

होगा कि सब दलों और पक्षों की शक्ति के जुट जाने के साथ ही कांग्रेस की शक्ति भी टूट जायेगी।

अब मैं आप का ध्यान कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ खींचना चाहता हूं। १९४२ में कांग्रेस के नेताओं और पार्टी के नेताओं में राजनीतिक दृष्टि से एक बड़ा भारी मतभेद खड़ा हो गया। उसी के कारण ८ अगस्त के प्रस्ताव के उस हिस्से का उन्होंने सख्त विरोध किया, जो कि सामूहिक सविनय आज्ञा भंग की हिदायत करता था। देश के नेताओं के पकड़े जाने के बाद किसी महान कार्य को सफलता-पूर्वक पूरा करने के लिए तो खास प्रकार की शक्ति और योजना की जरूरत होती है, न करने के लिए किसी चीज की जरूरत नहीं होती। समझ में नहीं आती कि १९४२ का आन्दोलन कुछ करने के लिए था या न करने के लिए। राष्ट्र के नेताओं को पकड़ कर सरमायादारी अंग्रेजी हुकूमत ने लोकशाही जगत के सामने यह प्रकट करने की कोशिश की कि हिन्द के राजनीतिक नेता फासिस्टपक्षी हैं। आप लोगों के जेल चले जाने का दुष्परिणाम क्या हुआ? कांग्रेसपक्षी जनता ही मुसलमानों को, खास कर मुस्लिम लोगों को अंग्रेजों का हिमायती और देश का दुश्मन समझने लगी। हिन्दू जनता जिसे हिन्दुत्व प्रिय है, वह कांग्रेस और मुस्लिमलीग दोनों को अपना दुश्मन समझने लगी! उसके नेताओं ने लड़ाई में शरीक होने के लिए इस लिए आकांक्षा प्रकट की ताकि वह अस्त्र-शस्त्र की कला में प्रवीण होकर मुसलमानों के साथ अच्छी तरह से मुकबिला कर सकें।

कम्युनिस्ट पार्टी ने जगत भर की क्रान्तिकारी संस्थाओं के द्वारा यह समझाने की कोशिश की कि हिन्द के नेता फासिस्ट विरोधी हैं, उन्हें कैद में रखने का अब केवल एक ही नतीजा होगा कि लोकशाही विजय को सख्त धक्का पहुंचाया जाये। हिन्द के सरमायादारों, जागीरदारों और उनके अनुचरों ने, जापानी प्रोपेगंडा से उकसाये नौजवानों ने इस पार्टी को हद से ज्यादा बदनाम करने की कोशिश की:—"कम्युनिस्ट लोग विदेशी हुकूमत के एजेन्ट हैं, अंग्रेजी हुकूमत के जर-खरीद गुलाम हैं, देश और धर्म के दुश्मन हैं।"

१९४२ के आन्दोलन ने देश के राजनीतिक वातावरण को दूषित बना दिया। आप के आन्दोलन का देश भर में यह असर होगा, क्या

आप अन्दाजा लगा सके थे ? वह वातावरण कुछ करने के अनुकूल हुआ या न करने के, इसका अन्दाजा आप ही लगायें। उस आन्दोलन का जो भयंकर असर देश की समस्त जनता के ऊपर पड़ा, परिणामस्वरूप देश भर को सदमा पहुंचा है, उसका अन्दाजा लगाना मुश्किल है। हालत दिन पर दिन बिगड़ती जा रही है, उसे सुधारने का प्रयास नहीं होता।

कम्युनिस्टों का अपराध

रूस के युद्ध में शामिल होने के कारण इस युद्ध को लोक-युद्ध का नाम देकर लोगों को गुमराह करने की कोशिश की गयी। जिस पक्ष की हिमायत में अंग्रेजी हुकूमत खड़ी थी, उस पक्ष को जीत मिले, इसके लिए उन्होंने जबर्दस्त प्रयास किया। जो सैनिक इस पक्ष को जिताने में अपनी जानों को कुर्बान कर रहे थे, उनका हृदय दृढ़ रहे, उन्हें अन्न और वस्त्र बराबर मिलता रहे, देश की जनता को भी अन्न-वस्त्र मिले, इसके लिए उत्पादन बढ़ाने के लिए उन्होंने मजदूरों और किसानों को प्रेरित किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना आजादी नहीं मिल सकती, इस बात को समझाया, काला बाजार के काले और गोरे चोरों के खिलाफ एक बड़ी मुहिम खड़ा कर भूखों और नंगों को अन्न-वस्त्र दिलाने की कोशिश की। राष्ट्र के नेता फासिस्ट-विरोधी हैं, इस भाव को जगत भर में फैलाया। हिन्द में अगर राष्ट्रीय सरकार नहीं स्थापित होती, तो लोकशाही की जीत होनी मुश्किल है, इस ख्याल का प्रचार किया। अपने माननीय नेताओं को जेल से छुड़ाने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग किया।

ये हैं : हमारे अपराध, जिनके कारण हमें उस संस्था से धक्के मार कर निकाला जा रहा है, जिसे सबल बनाने के लिए हमने उसे अपने खून से सींचा। हमारे यही अपराध हैं न या और भी ? नीचता के साथ और नीच भावों से प्रेरित हम पर और भी इल्जाम लगाये गये हैं, जिनका जिकर मैं आगे चल कर करूँगा।

हमने इसे लोक युद्ध कहा, यह हमारा अपराध है। आप ने इसे १९४२ में शाही (साम्राज्यवादी) जंग कहा था। इसमें किसी रूप में शरीक नहीं होना चाहिए, यह आपका फरमान था। १९४५ जब

कि जर्मनी हार चुका था, उस समय देसाई-लियाकत समझौता के परिणाम स्वरूप जब आपके सहकारी मित्र जेलों से छूट कर बाहर आये और सैनिक वाइसराय के साथ बात-चीत करके लड़ाई में शामिल होने के इरादे का इज़हार करते हुए कहा, जब तक जापान हार नहीं जाता, तब तक अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ किसी प्रकार का आन्दोलन हमें नहीं खड़ा करना है। यह क़बूल करते आपने फरमान निकाला, फिर क्या तब यह जंग शाही (साम्राज्यवादी) नहीं रहा ? जिस हुकूमत को उखाड़ फेंकने के लिए आपने फरमान निकाला था। क्या उसी की जीत के लिए आपने जंग में शरीक होने की सलाह नहीं दी ? क्या आप जेल की यातनाओं से घबड़ा गये थे, या किसी और प्रलोभन में फँस गये ? ऐसा नहीं हो सकता। मेरी तो मान्यता है कि आपको अपनी भूल मालूम पड़ी। आपको अच्छी तरह से जम गया, कि जिस पक्ष में खड़े होकर अंग्रेज लड़ रहे हैं, उसी पक्ष की जीत में भारत का कल्याण है, इसीलिये आपको लगा कि जापान को हराना जरूरी है। नौजवानों में १९४२ से हमने अपनी समस्त शक्ति को इसी कार्य की सिद्धि में लगाये रक्खा। लोगों की मार, गालियां और ताने सहते रहे। क्या वह हमारा अपराध था ? १९४२ में अंग्रेजों के दुश्मन बनकर शान्ति से जेल जाकर आप बैठ जाते हैं तो आप लोगों के पूजनीय बनते हैं। १९४५ में जब उसी सरकार के दोस्त बनते हैं तो भी लोग आपके चरणों में झुकते हैं।

तोड़ फोड़ के कार्य की आपने निन्दा की और उसकी तरफ से लोगों को रोका। जो गुप्त रहकर तोड़ फोड़ का कार्य कर रहे थे, उन्हें प्रकट होने की हिदायत दी। इसे आपकी बुद्धिमत्ता कहा जाता और जब हम उन्हें उस तरह से रोकने का प्रयास कर रहे थे, तो वह हमारे लिये अपराध था।

जब काले बाजार के काले चोरों को दण्डित करने के लिए हम जनता को प्रेरित करते थे, तो कहा जाता था कि हम अंग्रेजों के गुलाम हैं, इसलिए उनके जुल्मों को छिपाने के लिए यह हमारा प्रयास है और हमारी यह कोशिश भी अपराध में गिनी जाती है, लेकिन जब पंडित जवाहर लाल नेहरू बाहर आकर काले बाजार के काले चोरों को फाँसी पर लटकाने की बात करते हैं, तो इसे तालियों से स्वीकार

किया जाता है। कुछ रोज पहले मौलाना अबुलकलाम आजाद ने अपने एक भाषण में फर्माया कि इस युद्ध में लोक शाही की जीत हुई है और इस जीत के लिए हमें खुशी है। जब यह लोकशाही की जीत है तो उस जीत को हासिल करने के लिए कम्युनिस्टों ने जो कुछ किया, क्या वह उनका अपराध था ? इस जीत को प्राप्त करने के लिये हिन्दुस्तान की डेढ़ करोड़ जनता ने बड़े जोर के साथ काम किया तो क्या यह उसका अपराध था ? हिन्द के बहादुर सिपाहियों ने जर्मनी और जापान को मार भगाने में जो वीरता जंग में सफलता पूर्वक लड़ने का कौशल दिखलाया, क्या वह उसके लिये प्रशंसा के पात्र नहीं हैं ? जिन किसानों ने ज्यादा अन्न पैदा कर और जिन मजदूरों ने कारखानों की उपज बढ़ाकर लोक शाही विजय को प्राप्त किया, क्या वह अपराधी हैं ?

हम पर इलजाम लगाया जाता है, कि १९४२ में हमने कांग्रेस के अनुशासन को भंग किया। हमने प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, उस पर अमल नहीं किया और उससे उलटे चलने के लिए देश को सलाह दी। मान लीजिये की हमने अनुशासन भंग किया। उसके लिए हमें सजा मिलनी चाहिये, लेकिन कभी ऐसा नहीं हुआ कि सेना की किसी ऐसी टुकड़ी को सजा दी जाये जो सेनापति के आदेश को तोड़कर किसी ऐसे मोर्चे पर डट गयी हो जहां पर विजय प्राप्त करने के लिये सारी सेना को आकर जुट जाने की जरूरत है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक नहीं बुलायी गयी। पहिले के प्रस्ताव को वापस नहीं लिया गया। वह तो प्रहका का अक्षर ही रहा, लेकिन कार्य कारिणी ने युद्ध में शामिल होने का इरादा प्रकट किया और यह भी कि जब तक जापान को न हरा दिया जाय, तब तक सामूहिक आन्दोलन बन्द रखा जाय, इसका क्या यह मतलब नहीं हुआ कि कानून बनाने वालों को कानून तोड़ने का हक़ है—"समरथ को नहिं दोष गुसाईं।"

पकड़े जाने से पहिले आपने देश वासियों के लिये अनेक हिदायतें दी थीं। आप अच्छी तरह जानते हैं कि उन पर देश भक्तों ने अमल नहीं किया। कांग्रेस को कार्य समिति की ओर से कई फरमान निकाले गये। गुप्त संगठन किये गये, तोड़-फोड़ करके जापान के आने के रास्ते को सुगम बनाने की कोशिश की गई। अभी भी ऐसे देश भक्त हैं, जिन्होंने आपके आदेश के अनुसार अपने को प्रकट नहीं किया है। क्या यह

अनुशासन भंग नहीं है ? आदमियों ने केवल अनुशासन भंग ही नहीं किया बल्कि देश को उल्टे मार्ग पर ले जाने का प्रयास किया। आप उनके मार्ग पर नहीं गये। आपने हमारा ही मार्ग स्वीकार किया है, फिर उनके ऊपर अनुशासन भंग का मुकदमा क्यों नहीं चलाया जाता ? बहुत से काँग्रेसी देश-भक्त व्यापारियों ने युद्ध को सफल बनाने के लिए युद्ध-सामग्री दी और करोड़ों रुपये कमाये। क्या यह अनुशासन भंग नहीं है ? क्या उन पर मुकदमा चलाया गया ? वह तो आज भी देश-भक्त हैं, कांग्रेस के आधार-स्तम्भ हैं। जिन्होंने अनुशासन भंग कर तोड़-फोड़ करके जापान के मार्ग का सुगम बनाने का प्रयत्न किया, उन पर अनुशासन भंग का मुकदमा नहीं चलाया जाता। उनको तो वीर का पद मिला है और आज वह कांग्रेस के सूत्र-धार बने हैं। यह कैसा तमाशा है ? कुछ समझ में नहीं आता। आपके अनुयायियों ने, उच्चकोटि के देश-भक्तों ने हम (कम्युनिस्टों) पर अनेक प्रकार के इलजाम लगाये। इलजाम लगाने वालों से क्या आपने सबूत माँगे ? क्या उन्होंने सबूत पेश किये ? क्या उन सबूतों को आपने मान्य किया। क्या उन सबूतों को आप जनता के सामने पेश कर सकते हैं ? आपके जगत् विख्यात दानवीर मित्र बिड़ला पर लोगों ने इलजाम लगाये कि वह काले बाजार के काले व्यापारी हैं। आप ने मांग पेश की कि सबूत पेश करो ? वैसे सबूत नहीं पेश हो सके, इसलिए दानवीर बिड़ला दानवीर रहे और आप उनके द्वार के याचक। दानवीर ने काला बाजार में काला क़हर मचाया कि नहीं, इसके लिए तो सबूतों की जरूरत थी लेकिन क्या आप इससे इन्कार करेंगे कि उन्होंने करोड़ों रुपये कमाने के लिए युद्ध सामग्री पैदा करके दी ? क्या यह कार्य काँग्रेस की नीति के अनुसार था ?

हमारे ऊपर तो इलजाम लगाना ही काफी है, इतने ही से हमें अपराधी ठहराया जा सकता है।

कम्युनिस्टों पर किस प्रकार के इलजाम लगाये जाते हैं, उनके सबूत में क्या क्या दलीलें पेश की जाती हैं और फिर किस तरह से और किस प्रकार इन्साफ़ किया जाता है, इसका एक नमूना मैं आपके सामने पेश करता हूं। बम्बई प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी चार सदस्यों को कमेटी से निकालने का विचार करती है। पाटिल साहब की तरफ से फरमान मिलता है कि अनुशासन (शास्ती) भंग का मुकदमा तुम पर क्यों

चलाया जाए ? इसके लिए तुम सबूत पेश करो। कम्युनिस्ट वक़्त पर हाज़िर होते हैं, वह माँग पेश करते हैं कि हम पर क्या-क्या इलज़ाम लगाये गये हैं। इसके बारे में उनको कोई लिखित काग़ज़ नहीं दिया जाता। वह कहते हैं कृपा कर आप लिखकर दीजिये कि हम पर क्या-क्या इलज़ाम हैं और साथ ही विचार करने के लिए कुछ समय दीजिये, जिससे हम उसका जवाब दें। बहुत हास्यजनक परिस्थिति पैदा हो जाती है। कमेटी के मेम्बर अपराधियों को सोचने का समय नहीं देते, न ही इलज़ाम लिखकर देते हैं। वे खुद विचार करने के लिए समय लेते हैं। कम्युनिस्ट अपराधियों को कुछ मिनटों के लिए बाहर भेजा जाता है, फिर वापस बुलाकर उनसे कहा जाता है कि "कुछ लिखकर नहीं दिया जायेगा, सोचने के लिए भी समय नहीं दिया जायेगा। इन-इन कारणों से तुम्हें बाहर किया जाता है। कबूल करो कि तुम कम्युनिस्ट नहीं हो, नहीं तो तुम्हारे खिलाफ़ कोई कारंवाई करने की जरूरत नहीं।" सत्ता के दुरुपयोग का क्या इससे बढ़कर और कोई दूसरा उदाहरण पेश किया जा सकता है ? यह है आपकी सत्य और अहिंसा की तालीम का फल।

कम्युनिस्टों के अपराध क्या हैं, यह मैं पहले कह चुका हूं। उनके अतिरिक्त अनेक निर्मूल इलज़ाम लगाकर कांग्रेस के बड़े-बड़े जवाब देह कार्य-कर्ताओं ने हमें जनता के सामने ज़लील करने की कोशिश की। "वह माँस खाते है, ब्राह्मणों के लड़के-लड़कियों को माँस खिलाते हैं, हिंसा का प्रचार करते हैं, ईश्वर को नहीं मानते। आपको रसपुटिन करते हैं।" समाचार-पत्रों में खूब नमक-मिर्च लगाकर लेख लिख जनता को कम्युनिस्टों के विरुद्ध करने की कोशिश की जाती है। सभा में उनके खिलाफ़ लोगों को भड़काया जाता है। कैसे भड़काया जाता है—पाटिल साहब कमातेपूरा के मजदूरों की एक सभा में फरमाते हैं:— "कम्युनिस्टांचे वर्तमान पत्र लोक युद्ध खपतें। कारण तरुण-तरुणियाँ पोरी लोक युद्ध विकण्या साठी जातात।" इत्यादि-इत्यादि। कितना बड़ा जवाब देह व्यक्ति और यह है उसका हमारी बेटियों और भाइयों के लिए उदगार।

अगर आप इसके बारे में न कुछ कहें न कुछ करें तो मजदूर जगत में अभी तक आपकी जो प्रतिष्ठा है, उसको भारी धक्का लगेगा, क्योंकि यह सब कुछ आपके नाम से हो रहा है। पाटिल इस प्रकार की बातें

करके हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन को दूषित बनायें, क्या यह भयंकर अपराध नहीं है ? कमाटीपूरा की मजदूर जनता को हम इसकी गवाही के लिए पेश करने को तैयार हैं। अगर आपकी नज़रों में यह अपराधी है, तो क्या अपराधी को दन्ड देने के लिए तैयार हैं ? मैं नहीं मानता कि आप इस बात की तरफ से आंख, कान और ज़बान बन्द करके बैठे रहेंगे। हमारी बात पर आपको विश्वास न हो, तो कमाटीपूरा के मज़दूरों से आप पूछें। अगर पाटिल की ज़बान से आपको संतोष हो जाये, फिर तो ख़ुदा ही खैर करे। लेकिन मैं इसे ख़ुदा पर छोड़ना नहीं चाहता, अगर ऐसा होता तो आपको लिखने की ज़रूरत नहीं थी। स्त्री जाति का अपमान और उनको बीच में लाकर उन भाइयों का अपमान, जो कि लोक-युद्ध खरीदते हैं, यह आपसे सहन नहीं होगा।

लालबाग की सभा के बारे में आपने सब कुछ जान लिया होगा, मुझे लिखने की ज़रूरत नहीं है। मैं तो केवल आपको इतना ही विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि कम्युनिस्ट और उनके पक्ष के मजदूर सभा में लाठी पत्थर लेकर नहीं गये, जब झगड़ा हुआ, तो उन्होंने उन लाठियों को इस्तेमाल किया, जो उनको मारने के लिए लायी गई थीं और अच्छी तरह से इस्तेमाल किया। बाहर से कम्युनिस्ट और उनके साथी मजदूरों पर निशाना-बाज़ लोगों के हाथों से पत्थर फिकवाये गये। कम्युनिस्ट लाठी पत्थर लेकर नहीं गये। मेरे सामने उनको सख्त हिदायत दी गयी थी कि वह किसी प्रकार से भी हमला न करें, लेकिन किसी के हमले का शिकार भी न बनें। अगर आपको मेरी सफाई पर विश्वास नहीं है, तो मैं मजबूर हूँ।

श्री शंकरराव देव आपके पक्के अनुयायी माने जाते हैं और सत्य अहिंसा के पुजारी भी। उन्होंने लालबाग की सभा के बारे में एक वक्तव्य दिया है। मैं शंकरराव देव को लालबाग के मजदूरों के सामने खड़ा करके पूछना चाहता हूँ, क्या उनके सामने खड़ा होकर वह यह कहने का साहस करेंगे कि कम्युनिस्ट उस सभा में गुण्डागीरी करने के लिए लाठी और पत्थर लेकर गये थे ? शंकरराव देव के सरासर झूठे वक्तव्य ने समाचार पत्रों के सम्पादकों पर भारी असर डाला और उन्होंने खूब खुलकर इसके बारे में लिखा। सभा के एक रोज बाद

रविवार के रोज "लोक युद्ध" बेचने वालों पर व्यवस्थित रूप से बुज-दिलाना हमले हुए और हुए भी ऐसे स्थानों पर जहाँ गुण्डों के अड्डे हैं। लोग खड़े हो तमाशा देखते रहे, जवान लड़कियों के सामने भद्दे इशारे किये जाते हैं, गालियां दी जाती हैं और लोग खड़े-खड़े हँसते हैं। नौजवान लड़कों और लड़कियों का अपराध यही है कि वह 'लोक युद्ध' बेचते हैं। कहा जाता है लोग अपने आप भड़क उठे, यह सरासर झूठ है। अगर देश-प्रेमी जनता भड़क उठी होती, तो वह लोक-युद्ध वालों का नामोनिशान मिटा देती, पी॰ सी॰ आफिस और सेंटर के आफिस पर धावा करके कम्युनिस्ट नेताओं का खात्मा कर देती, अगर क्रुद्ध जनता का हमला होता तो लड़कों का खात्मा हो गया होता। क्रोधित होकर जनता ने हमला किया कि नहीं इसे बताने के लिए मैं उदाहरण देता हूँ। रविवार की सुबह को कुछ गुण्डों ने फनस बाड़ी के नाके पर लड़कों से 'लोक-युद्ध' की कॉपियां छीन लीं, उनमें से एक लड़का भागकर सेंटर आफिस में खबर देने गया। छुट्टी का दिन होने के कारण वहां इक-बाल सिंह के सिवा और कोई नहीं था। वह घटना-स्थल पर पहुंचे, वहां लोग जमा थे, उन्होंने लड़कों के बारे में पूछा, इस पर उनके ऊपर कुछ आदमियों ने हमला किया। इकबाल सिंह कम्युनिस्ट पार्टी के सेंट्रल कमेटी के मेम्बर हैं, अमेरिका में इंजीनियर थे। उन्होंने मुकाबला किया। एक गाड़ीवाले के चाबुक से उन पर हमला किया गया। उसी चाबुक को छीनकर उन्होंने हमला करने वालों को पीटा। उस स्थान पर दो हजार आदमी जमा थे, एक आदमी को पिटते देखकर वह तमाशा देखते रहे। जवान दो हजार आदमियों के सामने खाली हाथों हाथ और लात से गुण्डों की मरम्मत करते अपने बल का परिचय दे रहा था। इससे आप अन्दाजा लगा सकते हैं कि जनता का इसमें कहां तक हाथ हो सकता है।

एक लड़की से "लोक युद्ध" की कापियाँ छीनने के लिए एक गुण्डा हमला करता है, लड़की कापियाँ नहीं छोड़ती, जब वह चाकू निकालकर हमला करने चलता है, तो रास्ते चलता एक आदमी चाकू के वार को अपने हाथ से रोककर लड़की को बचाता है। हमला करने वाला भागने लगता है लोग उसे पकड़कर पुलिस के हवाले करते हैं। क्या इसे आप क्रुद्ध जनता का हमला कह सकते हैं? लोक-युद्ध की कापियां संख्या में पहले से भी अच्छी तरह बिकती हैं।

कम्युनिस्टों पर राजद्रोही होने का आरोप लगाया जाता है, वह नैतिक दृष्टि से पतित हैं, इस तरह खुल्लमखुल्ला प्रचार किया जाता है, सभा में लोगों को भड़काया जाता है। समचार पत्रों में झूठे बयान देकर जनता को गुमराह किया जाता है, लाठियों और पत्थरों से हमले किये जाते हैं, गलियों में लड़के और लड़कियों पर गुण्डों से हमले करवाये जाते हैं, ताकि वह लोग "लोकयुद्ध" की कापियां बेचने के लिए गलियों में न निकला करें, कम्युनिस्ट पार्टी के कतिपय कार्यकर्ताओं और नेताओं को लोग अच्छी तरह जानते हैं, वह समय-समय पर गली-कूचों में अकेले निकलते हैं, पर किसी पर हमला नहीं हुआ। मैं भी अकेले ही फिरता रहता हूँ, कभी किसी ने मुझ पर हमला नहीं किया, इससे साफ मालूम होता है, यहां जनता के भड़कने का सवाल नहीं था, सवाल है लोकयुद्ध की बिक्री बन्द करने का, इसलिए गुण्डों का इस्तेमाल किया गया। मदनपुरा के पांच मुसलमान लड़के "कौमीजंग" बेचने के लिए निकले, गुण्डों ने उन पर सख्त हमला किया, पाँचों को सख्त चोट आयी। जब इस बात की खबर मदनपुरा की मुसलमान मज़दूर जनता को मिली, तो उनके भीतर आग भड़क उठी, अगर समय पर पूरी शक्ति से काम न लेते, तो यह मार पीट हिन्दू-मुसलमान झगड़े का रूप ले लेती, नतीजा क्या होता, यह आप स्वयं समझते हैं। कांग्रेसियों के खिलाफ़ मुसलमानों में पहिले ही से किस तरह की भावना है,इसे आप अच्छी तरह जानते हैं।

मैंने इतना लंबा-चौड़ा कच्चा-चिट्ठा लिखकर इस आशा से भेजा है कि आप देश की नाजुक हालत पर खूब गौर करें। हुकूमत ने हमारे ऊपर काफी मुसीबतें लाद रक्खी हैं, बोझ के मारे दम घुटा जाता है। इस पर भी अगर हम और मुसीबत मोल लेते जायें तो यह हमारी अक्ल का दीवाला ही है, सब कुछ देख-सुनकर मेरे दिल में दर्द पैदा हुआ और दुःखी मन को खोलकर आपको दिखाने की कोशिश की, मैंने अपना फर्ज़ अदा किया। जो बन पड़ता है, करता रहता हूं। आप देश के नेता हैं। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में कैसी शक्ति है, कैसे साधनों से संपन्न हैं किस प्रकार के व्यक्तियों के समूह के बल से कांग्रेस की शक्ति संगठित हुई है, मुझे इसका पूरा ज्ञान है।

कम्युनिस्टों की संख्या बहुत कम है। उनके पास ऐसी शक्ति नहीं है, कि लोगों को अपनी ओर झुका सकें। पर कम्युनिस्ट पार्टी अपनी

तरह की एक निराली शक्ति है, उसके वज़न का पता लगाना आसान काम नहीं है। जो उसे कुचलने पर तुले हुए है, समझ लें कि वह तबाही की राह पर हैं, झूठे इल्जामों को लगाकर कम्युनिस्टों को बदनाम करना, पत्थर और लाठियों से हमले कर भयभीत कर रोकने की कोशिश करना खतरे से खाली नहीं है, इससे राष्ट्र की मुक्ति का आन्दोलन आगे नहीं बढ़ सकता। इसके कारण वर्षों की अनथक मेहनत से जिस शक्ति को आपने पैदा किया है, वह बरबाद हो जायेगी। बहुत ही कटु सत्य मैंने आपके सामने बड़ी कठोरता से रक्खा। मुझे क्षमा करें, मुझे भूल से बचायें। मेरा यह प्रयास सिर्फ़ भूल से बचने और बचाने के लिए है। मेरे इस पत्र का जवाब आप दें या न दें, मेरे लिए इतना जानना ही काफी होगा कि मेरा पत्र आपको मिला और आपने इसके भाव को समझ लिया। प्रणाम

—पृथ्वीसिंह

० ० ०

१९४६ में सरदार अब भी अंबाला में ही रहते थे, पर सौराष्ट्र और बम्बई का संबंध बिल्कुल छूटा नहीं था। इसी समय (३० अक्तूबर १९४६ ई०) गांधी जी को उन्होंने अपना दूसरा पत्र भेजा था।

"· बीसवीं सदी में भारतमाता ने ऐसे अनेक पुत्र पैदा किये जिन्हें उनकी क़ुर्बानियों के कारण देश अभिमान के साथ याद करता है,लेकिन यह सौभाग्य आपका ही है कि जीते-जी आप अपनी आँखों से अपने प्रयास का फल देख रहे हैं। आपने अपनी जीवन-शक्ति से देश-प्रेम का पौधा लगाया, वह फूला-फला और फल लाया। जो फल आपकी मेहनत के कारण आया है, वह कितना रसभरा और जीवनदायक साबित हो गया, खासकर मेहनत कश जनता के जीवन में आपकी मेहनत का क्या परिणाम होगा, इसके बारे में चर्चा करने की इस स्थान पर जरूरत नहीं है। फल जरूर आया है और यही एक बड़ा कारण है कि देशवासियों के दिल आपके कदमों में झुक जाते हैं।"

आपका जीवन आपकी अपनी नजरों में एक सफल जीवन साबित हुआ है। यही एक कारण है कि अपने जीवन को और ज्यादा सफल और उपयोगी बनाने के लिये आपके मन में यह लालसा लगी है कि मैं सवा

सौ बरस तक जीऊँ। इसी वजह से देश के नर-नारी हर साल प्रार्थना करते हैं कि हम आपकी छत्रछाया में आगे से आगे बढ़ते जायें।

सरसरी नजरों से देखने पर सभी को यही नजर आयेगा, जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया। इतना लिखने के बाद मैं अपने भावों को आपके सामने पेश करना चाहता हूँ। आपने जीवन के सर्व प्रकार के भोगों को भोगा, सब रसों को चखा, बड़े से बड़े मान के आप पात्र बने और अनेक बार अपमान को भी सहन किया। इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ। क्या आप अपने जीवन को सफल जीवन समझते हैं ? वह क्या चीज है जिसके लिए हमारे देशवासी हर साल प्रार्थना करते हैं कि आप सदा जीवित रहें ? किस मनोकामना की पूर्ति के लिए आप सवा सौ वर्ष तक जीवित रहना चाहते हैं ?

आपने अंग्रेजी सरकार को बदी का अवतार समझा था। आपकी पवित्र आत्मा ने उस बदी के अवतार के साथ सहकार करने से इनकार किया था। क्या आज उसकी बदी में कमी आयी है या आपकी पवित्रता में या आपके पैमाने में कुछ फर्क पड़ा है ?

आप एक सच्चे साधक बने थे, सत्य और अहिंसा को आपने साधना चाहा था। इतना ही नहीं,आपकी तो यह भी अभिलाषा थी कि आप जन-साधारण को इस लायक बनायेंगे कि वे सत्य और अहिंसा को साध सकें। क्या आपकी यह मनोकामना पूरी हुई ? जो लक्ष्मी-पुत्र आपके कदमों पर लाखों और करोड़ों की थैलियाँ न्योछावर करते हैं, क्या वही लाखों और करोड़ों नर-नारियों को अपने पैरों तले नहीं कुचलते ? चुनावों के समय आपकी वफादारी का दम भरने वाले किस प्रकार के इखलाक (चरित्रबल) का सबूत देते हैं, अपने हरीफों (प्रतिद्वन्द्वियों) को पछाड़ने के लिए किस प्रकार की नीच चालबाजियों से काम लेते हैं, क्या किसी ने आज तक आपका ध्यान इस तरफ खींचा ? जो आज किसी अधिकार-पद पर पहुंचे हैं या जो जीवन-पोषक और जीवनोपयोगी पदार्थों के मालिक बनकर खड़े हैं, उनमें कितने हैं जिन्होंने आपके सत्य और अहिंसा के मन्त्र का जाप करके उसे जीवन में अपनाया ? क्या आपका ध्यान कभी इस तरफ नहीं गया ? क्या यह हालत सन्तोष जनक है ? क्या आपके मन में यह ख्याल अभी तक कायम है कि जन साधारण सरमायादारी (पूंजीवाद) दुनिया में सत्य और अहिंसा को अपना सकते हैं ? २७ वर्षों

में आपने वह कौन-सी चीज़ देखी, जिसके कारण आप उस उम्मीद पर कायम हैं।

१९४२ की जगे-आजादी (स्वतन्त्रता युद्ध) की लहर के समय क्या आपके भक्त-जनों ने आपके और कांग्रेस के नाम का जप करते करते बमों को नही बनाया ? क्या पुलिस के खिलाफ़ शक्ति का उपयोग नहीं किया? जिन-जिन उपायों को काम में लाया गया, क्या आपने उनके खिलाफ़ समय पर आवाज़ उठायी ? कलकत्ता, बम्बई और आज जो बंगाल में हो रहा है और हुआ है, उसे किस नाम से पुकारा जाये ? यह तो एक ऐसी वहशत (जंगलीपन) है, जिसकी मिसाल इतिहास में नहीं मिलती। क्या यह सब कुछ इसी हिन्द में नहीं हुआ, जिसमें २७ वर्षों से आप प्रेम-भाव और अंहिसा का प्रचार कर रहे हैं ? जो वहशत पिछली लड़ाई में हमने यूरोप के मैदान में देखी है, वह तो इसके मुकाबले में तुच्छ मालूम पड़ती है, क्योंकि वहाँ वह सब संहार मशीनों द्वारा किया गया। कौन मर रहा है, कैसी मौत मर रहा है, इसे मशीन चलाने वाला नहीं देख पाता, लेकिन यहाँ पर तो शिकारी अपने शिकार को सामने आँखों से देखता है, ज्यादा से ज्यादा सासत देने वाले उपायों को इस्तेमाल कर अपने हरीफ (शत्रु) की जान लेता है। खूबी यह है कि उसे मारने वाला हरीफ समझ लेता है, उसकी मासूमियत और बेगुनाही का उसे जरा भी ख्याल नहीं आता। जिस देश के लोग अपने मासूम और बेगुनाह देशवासियों पर इस प्रकार के अत्याचार कर सकते हैं, क्या कभी ऐसे मनुष्यों से आशा की जा सकती है कि वे आपके मंत्र—सत्य और अहिंसा-को अंगीकार कर सकेंगे ? आप सत्य के साधक हैं, इस मार्ग से आप कभी हट नहीं सकते। मैं तो आपके सामने असली हकीकत को रखकर आपसे पूछना चाहता हूँ कि २७ साल में आपको किस प्रकार की काम-याबी हुई ? मैं इसी बात को दूसरे रुख से देखने की कोशिश करता हूँ। हिन्दू-मुसलमानों के दंगों में जो एक दूसरे का गला काटने में लगे हैं, हो सकता है उनमें से एक भी ऐसा न हो, जिसने कभी भी आपके भक्त होने का दम भरा हो, इसलिए वह ऐसी वहशत कर सकते हैं। सज्जनता की उनसे आशा नहीं की जा सकती, लेकिन जो आज तक आपके भक्त होने का दम भरते रहे और आज भी बड़े फ़ख्र के साथ भक्त होने का दावा करते हैं, जब ऐसे भक्त-जन सत्ताधारी बने और परदेशी हुकूमत की भारी

मशीन जब उनके हाथ में आयी, तो उन्होंने क्या कर दिखाया ? जब एक सत्ताधारी शान्त चित्त से सोचकर किसी को गोली का निशाना बनाने का हुक्म देता है, चाबुक से चमड़ी उखाड़ने और लाठियों से सिर फोड़ने का फरमान जारी करता है तो इस किस्म की हिंसा को किस नाम से पुकारा जायेगा ? तैश (क्रोध) में आकर जब एक आदमी हिंसा करता है, तो वह बेवकूफ और पागल की हिंसा होती है और योजना पूर्वक जो हिंसा की जाती है वह जालिम की हिंसा होती है। पागल और अक्लमन्द दोनों हिंसा के मार्ग से जा रहे हैं। आपके भक्त सत्ताधीशों ने बम्बई और मद्रास के प्रांतों में योजना पूर्वक गोली चलाने का हुक्म नहीं दिया ? क्या आप इस प्रकार की हिंसा को एक जालिम की हिंसा न कहेंगे ? पर सत्ताधीशों की वहशत के खिलाफ आपने न एक हरफ लिखा और न एक शब्द कहा। क्या हम इससे यह नतीजा निकालें कि जो हिंसा आपके भक्त-जनों की तरफ से की जाती है, उसे हिंसा नहीं कहा जा सकता ? इन सब बातों का उल्लेख करने से मेरा यही मतलब है कि २७ वर्ष में लोगों ने सत्य और अहिंसा को लेशमात्र भी नहीं अपनाया। यदि लोगों ने अपनाया है, तो किस माने में ? क्या आपको इससे सन्तोष है ?

हिन्दू मुस्लिम एकता :—इसकी सिद्धि के लिए आपने सिर की बाजी लगा दी, पर क्या परिणाम हुआ ? आज हिन्दू मुसलमान एक दूसरे को जितना जानी दुश्मन समझते हैं, उतना पहिले कभी नहीं समझते थे। उनका एक दूसरे के साथ न मेल-जोल था, खाना-पीना भी एक साथ न था. आपस में रिश्ता न था, पर इससे ज्यादा कुछ फ़र्क नहीं था। आज एक हिन्दू एक मुसलमान बच्चे के जिन्दा रहने में अपनी मौत समझता है और वैसे ही मुसलमान भी। क्या इतने सालों की आपकी मेहनत का यही फल है ? मुल्क और आजादी का दुश्मन गुलामी की बेड़ियों में जकड़ने वाला, आज हिन्दू-मुस्लिम दोनों को भड़काकर दोनों की आड़ लेकर उनके पीछे खड़ा हो तमाशा देख रहा है।दोनों को एक दूसरे के सिवाय और कुछ नजर नहीं आता। दोनों ने अंग्रेजों को अपना सहारा और रक्षक मान लिया है। आपसी अविश्वास के कारण जिस परिमाण में दुश्मनी बढ़ती है, उसी परिमाण में अंग्रेजों की जड़ें हिन्द में मजबूत होती जाती हैं।

इस सच्चाई को मानने से कोई इन्कार नहीं करेगा कि अंग्रेज (आज) पहिले से बढ़-चढ़कर शैतानी कर रहे हैं और कुछ स्वार्थी मुस्लिम लीडर उनके हाथ की कठपुतली बने हुये हैं। यह बात मानते हुये मैं आपसे सवाल करना चाहता हूँ—क्या हिन्दू-मुस्लिम सवाल को हल करते समय आपने या आपके सहकारी मित्रों ने कोई ऐसी ग़लती नहीं की जिसका यह नतीजा हुआ ? यदि गलती की, तो क्या उसे कभी स्वीकार किया या उस गलती को सुधारने का प्रयत्न किया ? क्या यह सच्चाई नहीं है कि आप इस सवाल का कोई हल नहीं निकाल सके ? आप अपनी कोशिश में नाकामयाब रहे, क्योंकि यहाँ पर अंग्रेज मौजूद हैं या आपको इसका हल सूझा ही नहीं ? अगर इसका कोई हल नहीं सूझता तो क्या हम ग़ुलामी के फन्दे से निकल सकते हैं ?

कांग्रेस और मुस्लिम लोग दोनों ने अंग्रेजों की छत्र-छाया में जो हुकूमत की बागडोर संभाली है, क्या इसी का नाम आजादी है ? २७ वर्षों से आप सत्य और अहिंसा के प्रचार में लगे रहे। हिन्दू मुस्लिम को आपने भाई-भाई के नाते जोड़ना चाहा, पर आज न लोगों में सत्य रहा, न अहिंसा और न ही परस्पर प्रेम—इन तीनों का अभाव है। इसका क्या कारण है ? आप २७ वर्ष से हकीम बनकर खड़े हैं और बीमार बीमारी के मारे तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ रहा है। आपने अपने इलाज में आज तक कहीं ग़लती नहीं देखी, क्या यह हकीकत नहीं है ? अब भी आप बीमार की नाड़ी पकड़े खड़े हैं सो किस उम्मीद पर ? क्या समय नहीं आ गया है कि आप उसे खुदा के या किसी दूसरे के रहम पर छोड़ दें ? हकीम की वह दवा किस काम की, जिसे न बीमार खाना चाहता हो और न खाकर हज़म कर सकता हो ?

अछूतों का सवाल

इस सवाल को हल करने के लिए आपने अपनी काया तक को निचोड़ डाला। लेकिन फल क्या हुआ ? इसमें कोई शक नहीं, करोड़ों अछूत अपने सिर हृदय से आपके क़दमों में झुकाते हैं। इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि करोड़ों अछूत आपके दुश्मन बन गये हैं। आपसे उन्हें कोई आशा नहीं है। अछूत इस प्रकार दो हिस्सों में कैसे बंटे ? क्या उनकी आँखें और दुःख एक प्रकार के नहीं हैं ? आपका आदेश था

कि सदियों से सताये जाते इन मजलूमों को प्रेम भरी निगाह से उठाकर भाई समझकर छाती से लगा लो। इस आदेश का कैसा पालन हुआ? पिछले चुनाव में कितने जालिमाना तरीके से एक अछूत पीटा गया, क्या आपका ध्यान किसी ने इस तरफ खींचा? २७ वर्ष से आप इस सवाल के हल में लगे हैं लेकिन अभी तक इसका हल नहीं मिला। क्या इससे आपको सन्तोष है? क्या इस सवाल का यही हल था? जो आपको सूझा। इस सवाल का हल ढूंढने में आपके विचार में क्या कोई फेर-फार नहीं आया? क्या इसके हल की कोशिश आप उसी तरह करते रहेंगे, जैसे कि आज तक करते आ रहे हैं?

चरखा और खद्दर

गुलामी के कारण देश का शोषण बढ़ा, देश गरीब बना, हर प्रकार की उत्पादक शक्ति घटी। मनुष्य और पशु दोनों की शक्ति में कमी आयी। इसका असर यहाँ तक पड़ा कि धरती माता की भी शक्ति क्षीण हो गयी। देश की इस प्रकार की दर्दनाक हालत देखकर आपने एक ही इलाज बताया। चरखा कातो, खद्दर पहिनो। हजारों ने आपकी इस आवाज को सुना, माना। जिन्होंने कभी एक तिनके के दो नहीं किये, जो रेशम तथा मखमल में लोटते रहे, वह भी चरखा कातकर खद्दर पहिनने लगे। देश भर के लीडरों ने आपकी आवाज मान ली। लाखों भावुक लोगों ने चरखे खरीदे, क्यों कि आपने देश को यकीन दिलाया था:— 'चरखे और खद्दर के जोर से हम एक वर्ष के अन्दर ही स्वराज ले लेंगे।' आपकी इस बात ने लोगों पर जादू का सा असर किया। बड़े-बड़े माननीय स्त्री पुरुषों ने अपने कन्धों पर खद्दर की गठरियाँ लाद कर राष्ट्रीय सप्ताह और आपके जन्म दिन पर बेचने के लिए फेरी निकाली। तरह-तरह की युक्तियों से खरीददारों के मन को लुभाकर हर साल लाखों का खद्दर बेचा। जो खद्दर पहिनें और दूसरों को पहिनने के लिए प्रेरित करें उन्हें आप देश प्रेमी समझते हैं। यह बड़ी कुरबानी समझी जाती है।

आर्थिक दृष्टि से जब आप इस तरफ ध्यान देंगे और उसी दृष्टि से तोलेंगे, तो आपको ज्ञात होगा कि इतने बड़े प्रयास का फल क्या मिला? १९४२ से पहिले चरखा संघ के द्वारा हर साल एक करोड़

से ज्यादा मूल्य की खादी फरोख्त नहीं हुई। यह है बीस बरस की मेहनत का नतीजा। चरखे और खद्दर की आपने एक फिलासफी रची। उसके प्रचार से आपका केवल यही मतलब था कि देश-वासियों के समय का सुन्दर उपयोग हो। आप तो इसके द्वारा समाज का सारा ढाँचा बदल देना चाहते हैं। इस कार्य की सिद्धि के लिये आपने अपनी पूरी शक्ति लगायी। पर परिणाम क्या हुआ? क्या हिन्द के पढ़े-लिखे समाज ने इसे अपनाया। आपकी जय बोलने वाले मजदूरों, दूकानदारों, स्कूलों और कालेजों के लड़कों ने क्या इसे स्वीकार किया? जिन लक्ष्मी-पुत्रों ने चरखे के प्रचार के लिए लाखों की थैलियाँ आपके कदमों में चढ़ाईं क्या उन्होंने कपड़े के कारखानों को ज़ोर से चलाने के लिए लाखों नर-नारियों की सहायता और करोड़ों रुपयों के बल से मिलों को चलाने की कोशिश नहीं की? कामयाबी ने किसका साथ दिया? जिस तरफ लाखों कुशल, चतुर व्यापारी असंख्य दलालों के साथ काम में लगे हों और जिनके लाखों लक्ष्मीपुत्र सहायक हों, उसने उनका साथ दिया। भावना के वशीभूत हो कुछ भावुक स्त्री पुरुषों की मदद से हजारों और लाखों रुपयों के बल से जो सफलता प्राप्त करनी चाहते हों और जिनके पोषक वह हों जिन्हें सूखी रोटी का टुकड़ा भी नहीं मिलता, उन्हें कामयाबी नहीं मिली।

अंग्रेजी हुकूमत ने चालबाजियों से और अनेक प्रकार के फरेबों से हिन्द में कपड़े के कारखानों के बढ़ने का काम बड़ी कठोरता से रोका, फिर भी नतीजा क्या हुआ? क्या कारखाने पहले से ज्यादा नहीं हुए? क्या उनकी पैदावार पहिले से ज्यादा नहीं बढ़ी? क्या चरखे और खद्दर में इसी तरह से वृद्धि हुई?

आप के भक्त-जन सत्ताधीश बने हैं, वह हुकूमत के बल को इस तरह लगा कर चरखे और खद्दर का प्रचार बढ़ा सकते हैं और बढ़ायेंगे भी, इसमें शक नहीं, लेकिन वह तो हुकूमतों के बल के उपयोग का नतीजा होगा। हुकूमत के फरमान के सामने सिर झुका कर लोग घर-घर चरखा चलाने लगें, इसका अर्थ तो यह हर्गिज नहीं होगा कि लोगों ने चरखे और खद्दर की आपकी फ़िलासफी स्वीकार कर ली। मद्रास प्रान्त में आप के एक भक्त ने हुकूमत के बल से मिल उद्योग को रोक कर चरखे और खद्दर को बढ़ाने की कोशिश की। वह अपने मनोरथ में कामयाब

होगा या नहीं, यह तो समय बतलायेगा। एक बात तो जरूर होगी:—मद्रास प्रान्त में जितने भी कपड़े के कारखाने हैं वह जरूर ज्यादा से ज्यादा नफा कमायेंगे, अपने कारखानों की पैदावार को ज्यादा से ज्यादा बढ़ा कर बाजार पर कब्जा जमायेंगे, पर देश की भूखी-नंगी जनता जिन्दा रहने के लिए हाथ पैर जरूर मारेगी। ऐसी हालत में जिस किसी के हाथ चरखा लगा, वह उसे कभी नहीं छोड़ेगा। हिन्द के लाखों नर-नारी जो आज चरखा कातने में और जुलाहे कपड़ा बुनने में लगे हैं, उन्हें अगर कोई यह उम्मेद दिला दे कि तुम्हें अच्छी हालत में इससे अच्छा और ज्यादा मजदूरी दिलाने वाला काम मिल सकता है, तो क्या वे चरखों और खड्डियों को लेकर बैठ रहेगे ?

खद्दर पहिनना आज लक्ष्मी पुत्रों के लिए एक फैशन और हुकूमत की वफादारी की वर्दी बन गया है। क्या आपने बम्बई शहर के खद्दर भंडारों को कभी देखा ?। कैसी सुन्दर रीति से रंग-बिरंगा बना कर खद्दर को सजा कर रक्खा जाता है। और खद्दर बेचने वाले सुशील और चतुर स्त्री-पुरुषों को कितने पर रखा गया है ? चरखा कातने और कपड़ा बुनने का कार्य करने वालों को मुश्किल से एक रुपया रोज मिलता है और ५-६ घन्टे बेचने वालों को कम से कम ४-५ रुपये रोज दिया जाता है। देख-रेख करने वालों को ३०० रुपया मासिक तनख्वाह और हिसाब की पड़ताल करने वालों को ५०० रुपये महीना मिलता है। किस प्रकार के लोग उन खद्दर भंडारों में आ कर उसे खरीदते हैं, सूत कहां से लाते हैं इसका पता लगाने पर मालूम होगा कि खद्दर का प्रचार किन में और कैसे हो रहा है।

क्या २७ वर्षों में आप यह नहीं देख पाये कि आप के चरखे और खद्दर की फिलासफी को हिन्द की जनता ने नहीं अपनाया ? क्या इसमें लोगों का कसूर है ? क्या आप अपने उसी हठ पर कायम हैं कि चरखे और खद्दर के अपनाने के सिवाय हिन्द का कल्याण नहीं है ? क्या आप अब तक यही मानते हैं कि जो लक्ष्मी पुत्र आप को चरखे और खद्दर के प्रचार के लिए लाखों की सहायता करते हैं, वह इस लिए कि चरखे और खद्दर का प्रचार चाहते हैं, इसमें क्या उनका और कोई उद्देश्य नहीं है ? अगर वह कांग्रेस की हुकूमत के बल पर चरखे और खद्दर का प्रचार करना चाहें, तो क्या आप उसे पसन्द करेंगे ? अगर

बेकार और नंगे लोग चरखा कातने और खद्दर को पहिनने के लिए मजबूर हों, जिससे चरखों की संख्या और खद्दर की पैदावार बढ़ जाये, तो इसका यह अर्थ नहीं कि लोगों ने आप की फिलासफी मान ली।

गाय को माता समझने व कहने वाले हिन्दुओं ने ज्यादा दाम के लोभ में लाखों गायों और बछड़ों को अंग्रेजों के कसाई खानों में बेचा है, अंग्रेजी हुकूमत ने किसी के गाय-बैल को कोई जबर्दस्ती नहीं छीना। अगर बैलों की जगह मशीनों ने न ली, तो जमीन की पैदावार पर इसका कितना भयंकर असर पड़ेगा ? क्या आप ने कभी इस बात पर ध्यान दिया ? जनता का खून चूसने वाली हुकूमत देश में शान्ति के साथ राज करती रहे, तो क्या आप चरखे ओर खद्दर के प्रचार से लोगों को गरीबी से बचा सकेंगे ?

(१) बदी के अवतार अँग्रेज़ी सरकार से सहयोग नहीं करना,

(२) सत्य और अहिंसा के बल से दुनियां से बदी की जड़ मिटा देना, हाकिम और महकूम (शासित) का भेद मिटा कर मानवता का पाठ पढ़ाना,

(३) धर्म और जाति के नाम पर मनुष्य-मनुष्य के बीच जो वैर-जहर भर कर एक दूसरे का दुश्मन बनाया जाता है—उसकी जगह प्रेम-भाव पैदा कर मानवता के नाते एक दूसरे को भाई-भाई के रूप में मिला देना,

(४) तीन सदियों से जो अछूत अनेक प्रकार के सामाजिक ज़ुल्म का शिकार बन रहे हैं, उन्हें प्रेम भरी निगाह से उठा कर छाती से लगा लेना,

(५) चरखा-खद्दर के प्रचार के बल से अपने समाज के सारे ढाँचे को बदल देना—इन सब बातों में वह कौन सी बात है, जिसमें आप को कामयाबी हुई ?

देशवासियों ने आपको "महात्मा" की पदवी दे बड़े भक्ति-भाव से पूजा की, लाखों-करोड़ों ने आपके चरणों की रज लेकर अपने सिर पर चढ़ाया, आपकी मूर्ति बना कर खड़ी की, लेकिन आज हिन्द की चालीस करोड़ जनता में से कितने निकलेंगे, जिन्होंने अपने जीवन को आपके आदेशानुसार ढालने की कोशिश की ? हर साल करोड़ों नर-नारी प्रार्थना करते हैं कि आप सदा जीवित रहें, इसमें उनका क्या स्वार्थ है ? क्या वे

इस लिए प्रार्थना करते हैं कि आप एक भले आदमी हैं या उनकी केवल यही इच्छा है कि आप जैसे एक सन्त की पूजा करनी चाहिए ? क्या वे हर साल आप के बताये मार्ग पर चलने का इरादा ज़ाहिर करते हैं ? क्या हिन्द की भोली-भाली जनता से आपने कभी पूछा कि तुम किस बात के लिए प्रार्थना करते हो कि मैं सदा जीवित रहूं ? क्या इस लिए कि जिस हुकूमत को आप बदी का अवतार समझ कर देश से बाहर निकालना चाहते हैं, आप की इच्छानुसार कार्य न करके उसके साथ सह-कार करने के लिए आपको मजबूर किया जाये ? जो मार्ग आज तक आप दिखाते आये, उनमें से किसी पर भी लोगों ने चलना नहीं चाहा, लेकिन फिर भी वह चाहते हैं कि आप सदा उनके बीच रहें। तो जो मान वह आप आप के लिए दिखलाते हैं, उस मान को सरल भाव से स्वीकार कर क्या आप अपने आप को धोखा नहीं देते ? ऐसा करने से आप और उनका क्या लाभ है ?

क्या आप का बतलाया मार्ग कठिन है ? क्या लोग उस पर चलना नहीं चाहते या चल नहीं सकते ? क्रोध नहीं करना, अपने ऊपर अंकुश रखना, प्रेम-भाव से रहना आप इस प्रकार की तपस्या में लगभग चालीस साल से लगे हैं, स्वय आपने इसके बारे में कितनी सफलता प्राप्त की ? आप फरमाते हैं कि २ अक्तूबर १९४६ के दिन आपने अपने ऊपर से काबू खोया, क्यों कि एक ऐसी चीज आपके सामने आयी जिसे आप पसन्द नहीं कर सके। आप का २४ घन्टे का जीवन एक खास प्रकार का नियम-बद्ध जीवन रहता है। कभी-कभी ही ऐसा होता है, जब आपको ऐसी चीज देखनी पड़ती है जिसे आप देखना सुनना नहीं चाहते और जब कभी वह आ जाती है, तो आप काबू खो बैठते हैं। तब उन बेचारों का क्या हाल होगा, जिनकी आँखों के सामने ऐसी हजारों चीजें आती रहती हैं और अप्रिय बातें सुननी पड़ती हैं ? अपनी इस प्रकार की जिन्दगी का उनके ज्ञान-तन्तुओं पर क्या असर पड़ता होगा ? आप किस आधार पर उनसे यह आशा रखते हैं कि वह सत्य और अहिंसा के नियमों का पालन कर सकेंगे ? अक्तूबर १९४६ के रोज अपने अपने ऊपर से काबू खोकर लोगों को भला-बुरा कहा। आप महात्मा हैं, आपकी सब बातों को पी गये, क्रोध एक प्रकार की बीमारी है जो आपको लग चुकी थी। वह बाबू राजेन्द्र प्रसाद को नहीं लगी, अगर लग जाती और वह भी बेकाबू हो जाते, तो नतीजा क्या

होता ? लेकिन राजेन्द्र बाबू सब पी गये और किस्सा वहीं खतम हो गया। पर साधारण समाज आप जैसे महात्मा और राजेन्द्र बाबू जैसे भक्तों से नहीं बना है। समाज में तो लोग गुस्से का जवाब गुस्से से देते हैं, जिसके भयंकर परिणामों को उन्हें भुगतान पड़ता है।

देश की राजनीतिक अवस्था

आपके बताये मार्ग पर चलकर देश न आगे बढ़ा और न दूसरे मार्ग पर आपने लोगों को चलने दिया, लेकिन देश आगे बढ़ा जरूर है, देश को कुछ मिला है। वह किसके बल से ? हमने अपने बल से तो कुछ नहीं लिया, यह बात साफ है। तो क्या अंग्रेजों ने सद्भावना से या स्वार्थ वश होकर कुछ दिया ? उन्होंने अपनी जड़ को उखाड़ने या मजबूत करने के लिए दिया ? पंडित नेहरू ने अपने एक भाषण में फरमाया है कि हिन्द में अंग्रेजों ने जो राज-विधान बनाया है, वह जनता का पोषण नहीं, बल्कि शोषण करने के लिए ही। अंग्रेजी हुकूमत ने अपने राज-विधान के अधीन रखकर आपको राज-विधान का एक खोखला ढाँचा दिया। उसी ढाँचे के अन्दर अपने को रखकर आजकल आप देश का भावी निर्माण करना चाहते हैं, क्या इसमें आप को कामयाबी होगी ?

प्रान्तों और केन्द्र में भिन्न-भिन्न दलों के साथ मुकाबला करके, चुनाव में जीत हासिल करके जो लोग आये हैं, उनके बारे में आपको यह तो शायद मालूम होगा ही कि किस प्रकार की नीच चालों को काम में लाकर उन्होंने चुनाव में कामयाबी हासिल की और कितना धन खर्च किया। अनेक कपट भरी चालों से और हजारों रुपयों के बल पर उन्होंने चुनाव जीते। इस प्रकार उन आदमियों का चुनाव हुआ है, जिन्हें हिन्द का विधान बनाना है। जिन्होंने जनता का खून चूसकर जमा किये धन को चुनाव जीतने में खर्च किया, जिनके दिलों में मेहनत-कश जनता के लिए कुछ भी दर्द नहीं, क्या ऐसे आदमियों से आप यह आशा कर सकते हैं कि वे ऐसे कायदे क़ानून बनायेंगे, जिनसे पीड़ित जनता को लाभ होगा ?

दुनियाँ की तमाम सरमायादारी (पूंजीवादी) ताकतें रूस को मिटाना चाहती थीं, पर वह मिटा न सकीं। अब वह फिर जोरों से

उसी कोशिश में लगी हैं। हिन्द के राजा-महाराजा, जागीदार-ज़मींदार सरमायादार हुकूमतों का साथ देने पर तुले हैं, देश के माननीय लीडर भी उसी कोशिश में लगे हैं। खूबी तो यह है कि पट्टाभि जैसे आपके भक्त-जन भी प्रखरता के साथ उसमें शामिल हैं। ...

..... वह चाहते हैं कि अंग्रेज़ों की पूरी फौजी ताकत हिन्द में उनके भले के लिए बनी रहे। अंग्रेज अपनी फौजों को ज़्यादा से ज़्यादा मजबूत बनाना चाहते हैं। अगर अँग्रेज़ों की फौजी ताकत बढ़ती और मज़बूत होती गयी, तो क्या इससे हमारी गुलामी की बेड़ियां और मजबूत बनेंगीं, या टूटेंगीं? हिन्द की रक्षा के लिए रूस के मुकाबले में देशवासियों को कौन सा मार्ग अपनाना होगा, हिंसा का या अहिंसा का? और उसमें आपका क्या स्थान होगा?

आपके भक्त देश के लीडरों पर जो इल्ज़ाम अंग्रेज़ अफ़सर लगाया करते थे और जिस तरह उन्हें सज़ाएं दिया करते थे, क्या आज सत्ताधारी कांग्रेस लीडर उसी क़िस्म के इल्जाम लगाकर कम्युनिस्टों को जेलों में नहीं भेजते हैं? ज़ालिम (अंग्रेज़) हुकूमत के सामने जनता के मुज़ाहिरे (प्रदर्शन) करके गोली का शिकार बनाया करते थे, आज क्या किसानों और मज़दूरों के मुज़ाहिरों को सख्त अपराधी कह-कर गोली का निशाना नहीं बना रहे हैं? क्या यह सब कुछ आपके जीते जी आपकी आंखों के सामने नहीं हो रहा है? आपके भक्त-जनों के हुक्म से जब हिन्द के नंगों को गोली का निशाना बनाया जाता है, तब आपका मन क्या कहता है? क्या आपने इसके खिलाफ कभी अपनी आवाज़ बुलन्द की?

पट्टाभि सीतारमैया ने अपने एक बयान में फरमाया है कि अंग्रेज़ तो हमारे कहने से हिन्द को छोड़कर चले जाने वाले हैं। अब अगर हमें किसी से लड़ना है, तो वह हिन्द के कम्युनिस्टों और उनकी हुकूमत से। इसके लिए हर हिन्दी को सिपाही और हर घर को किला बनाना पड़ेगा। क्या आपका भी यही मत है? पट्टाभि बड़े देश-भक्तों में गिने जाते हैं, बड़े बुद्धिमान और तजुर्बेकार हैं, आप हमेशा उनको सलाह मशविरा के लिए बुलाया करते हैं। अगर आपका मत उनसे नहीं मिलता तो आपने क्यों कभी मुनासिब नहीं समझा कि इस किस्म के बयानों के बारे में कुछ अपनी राय प्रकट करते? क्या हिन्द भी उसी मार्ग

से जायेगा, जिससे चीन जा रहा है ? क्या आप जैसे महान योग्य पुरुष उसे उस मार्ग पर जाने से रोक नहीं सकेंगे ?

आज तक आप देशवासियों को ऐसा मार्ग बतलाते आये हैं, जिस पर वे न जा सके, न जाना चाहे और न ही जाने की शक्ति रखते हैं, इतने लम्बे ऐसे तजुर्बे के बाद भी आपने अपना ढंग नहीं बदला। आप बगाल की पीड़ित बहिनों को राय देते हैं कि विष खा लो। अगर हमारे देश के भाई-बहिनों में यह शक्ति होती कि वह अपनी लाज बचाने के लिए विष खालें, तो वह गुलाम ही क्यों होते ? क्या आपने अपने जीवन के लम्बे तजुर्बे में इस बात को नहीं देखा कि जीवित रहने का मोह बहुत भारी मोह है, हर एक व्यक्ति किसी न किसी लालसा की पूर्ति के लिए जीवित रहना चाहता है।

महात्मा जी, आप बुरा न मानें, जो कुछ मैंने लिखा, उसमें मैंने आपके जीवन का पहलू आपके सामने रखा है, जिसे आप शायद न देख सकते हों। मैं आपका भक्त नहीं हूँ, पर मेरे मन में आपके लिए भारी मान है। अगर ऐसा न होता, तो इतना काग़ज़ काला करके आपके सामने आपकी सेवा में पेश न करता।

मैं अपने ढंग से देश की सेवा में लगा हूं। मजदूरों और गरीब किसानों के जीवन को सुखी बनाना मैंने जिन्दगी का लक्ष्य बनाया है। आज तक मेरे दिल में यह ख्याल रहा करता था कि शायद सेवा करते-करते मुझे अंग्रेज़ी हुकूमत की गोली का निशाना बनना पड़े या उनके जेलों में पड़े रह कर जीवन बिताना पड़े। आज ढंग बदला है, मुझे वही गोली और जेल नजर आता है लेकिन उनके हाथों से जिन्हें मैं किसी समय अपना साथी समझता था, जिनकी तरफ सम्मान के भाव से देखा करता था और जीवन में उच्च दिशा प्राप्त करने के लिए प्रेरणा लिया करता था।

खैर, जमाना रंग बदलता है और लोग उसके साथ ही अपना रंग भी बदल लेते हैं। मैं अपने ऊपर आज तक काबू जमा कर बैठा हूं। मैं हिन्द के मजदूरों का हामी और समर्थक बनकर खड़ा रहूंगा। ज़ालिम की चमड़ी का रंग और उसका नाम बदल जाने के साथ मेरी जिन्दगी का लक्ष्य नहीं बदल सकता। यहाँ जो कुछ मैंने आप को लिखा है, उसका मतलब केवल यही है कि आपकी जैसी महान शक्ति का देश के लिए

पूरा-पूरा उपयोग हो सके। मैं तो देश का एक नाचीज़ (तुच्छ) छोटा सा सिपाही हूं। छोटा हो कर भी यह इच्छा तो है कि भूल का शिकार बन कर मैं कहीं देश का बुरा तो नहीं कर रहा हूं। यदि यह मालूम हो जाये तो क्या ही अच्छा !

—पृथ्वी सिंह
३०-१०-४६

महात्मा गांधी द्वारा बाबा जी के पत्र का उत्तर

पूना—१७-११-४६

भाई पृथ्वी सिंह,

आप का पत्र अथ से इति तक पढ़ गया हूं। दस्तख़त तो आप के हैं, लेकिन भाषा आप की नहीं है, न अक्षर आप के हैं। मैंने जोशी जी को तो लिख ही भेजा है। मैं हक़ीक़त जान नहीं सकता हूं। ईश्वर जो मुझे बतायेगा, सो मैं करूंगा।

आपका
—मो० क० गांधी

आप लिखते हैं कि नाथ जी को पत्र बतलाया है। अगर वे सब हक़ीक़त के साक्षी हैं तो किशोर लाल जी को भी लिखें, वो शायद तहक़ीक़ात करें, अगर नाथ जी मांगेंगे, तो करेंगे। ऐसी मेरी मान्यता है।

—मो० क० गांधी